एम. ए. (हिन्दी)

सत्र - III (CBCS)

प्रश्नपत्रिका क्र. 11

विविध विमर्श एवं साहित्य

VARIOUS DISCOURSE AND LITERATURE

विषय कोड: 99493

© UNIVERSITY OF MUMBAI

डॉ. सुहास पेडणेकर
कुलगुरू
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक रविन्द्र कुलकर्णी
प्रभारी कुलगुरू
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक प्रकाश महानवर
संचालक
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्रकल्प समन्वयक : **प्रा. अनिल आर. बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक
इतिहास विभाग एवं कला शाखा- प्रमुख,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यास समन्वयक : **श्री. अनिल गो. चौधरी**
सहायक प्राध्यापक,दूर व मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विश्वविद्यालय, कलिना, सांताक्रुज (ई), मुंबई - 400 098

संपादक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहायक प्राध्यापक
सहायक प्राध्यापक,दूर व मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विश्वविद्यालय, कलिना, सांताक्रुज (ई), मुंबई - 400 098

लेखक : **डॉ. गौतम सोनकांबले**
सहयोगी प्राध्यापक
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पाटकर वर्दे महाविद्यालय,
एस. व्ही. रोड, गोरेगांव (वेस्ट), मुंबई - 400 062

: **डॉ. अनंत द्विवेदी**
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, के. जे. सोमैया कला, वाणिज्य महाविद्यालय,
विद्याविहार, मुंबई - 400 077

: **श्री. अनिल गो. चौधरी**
सहायक प्राध्यापक,दूर व मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विश्वविद्यालय, कलिना, सांताक्रुज (ई), मुंबई - 400 098

जून २०२२, मुद्रण - १

प्रकाशक : **संचालक, दूर आणि मुक्त अध्ययन संस्था.**
मुंबई विद्यापीठ,
विद्यानगरी, मुंबई- ४०० ०९८.

अक्षर जुळणी आणि मुद्रण
मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय
विद्यानगरी, मुंबई

अनुक्रमणिका

अध्याय क्र.	नाव	पृष्ठ क्र.
१	झूला नट : मैत्रेयी पुष्पा	1
२	'झूला नट' उपन्यास में पात्र-योजना	१५
३	'झूला नट': परिवेशगत यथार्थ, ग्रामीण स्त्री-वर्ग की नव्य-चेतना, वैचारिक संघर्ष और आँचलिक महक	३०
४	दलित साहित्य की पृष्ठभूमि	४३
५.	ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व और कृतित्व	५५
६.	अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि 1. जो मेरा कभी नहीं हुआ, 2. जाति, 3. अंगूठे का निशान	६५
७.	अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि १. काले दिनों में, २. विस्फोट, ३. मकड़जाल, ४. जहर	७७
८.	अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि १. कथावाचक, २. शब्द चुप नहीं है, ३. अब और नहीं	८९
९.	धूणी तपे तीर : हरिराम मीणा	१०१
१०.	'धूणी तपे तीर' उपन्यास में पात्रों का चरित्र-चित्रण	११५
११.	'धूणी तपे तीर' में चित्रित आदिवासी जीवन और समस्या	१२४
१२.	'धूणी तपे तीर' की भाषा-शैली	१३७

एम. ए. (हिन्दी)
सत्र - III (CBCS)
अभ्यासपत्रिका क्र. - 11

विविध विमर्श एवं साहित्य
VARIOUS DISCOURSE AND LITERATURE

SYLLABUS

Semester - III(तृतीय सत्र)

Course Code : PAHIN 111

प्रश्न पत्र - ११

विविध विमर्श एवं साहित्य

(Various Discourse and Literatutre)

कुल श्रेयांक**(Credit) = 6**

पाठ्य पुस्तकें

इकाई एक और दो **श्रेयांक - २**

१. झूला नट - उपन्यास (स्त्री विमर्श) - मैत्रेयी पुष्पा
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली

इकाई तीन **श्रेयांक - २**

२. अब और नहीं - कविता संग्रह (दलित विमर्श) - ओमप्रकाश वाल्मीकि
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली

चयनित कविताएँ :- (जो मेरा कभी नहीं हुआ, जाति, अँगूठे का निशान,
काले दिनों में, विस्फोट, मक़ड जाल, ज़हर, कथावाचक,
शब्द चुप नहीं हैं, अब और नहीं) = कुल १० कविताएँ

इकाई चार **श्रेयांक - २**

३. धूणी तपे तीर - उपन्यास (आदिवासी विमर्श) - हरिराम मीणा
साहित्य उपक्रम

संदर्भ ग्रंथ : (प्रश्न पत्र - ११)

१. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास - डॉ. सुमन राजे
२. हिंदी उपन्यास का स्त्री - पाठ - डॉ. रोहिणी अग्रवाल
३. स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प - डॉ. रोहिणी अग्रवाल
४. हिंदी कथा साहित्य का पुनर्पाठ - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय
५. आवाँ विमर्श - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय
६. चित्रा मुद्‌गल के कथा साहित्य में संघर्ष और संचेतना - अंजु दुआ जैमिनी
७. स्त्री - विमर्श की उत्तर गाथा - अनामिका
८. भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास - मोहनदास नैमिशराय
९. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१०. दलित साहित्य : अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ - ओमप्रकाश वाल्मीकि
११. मुख्यधारा और दलित साहित्य - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१२. मात्र देह नहीं है औरत - मृदुला सिन्हा
१३. आदिवासी लेखन : एक उभरती चेतना - रमणिका गुप्ता
१४. आदिवासी साहित्य यात्रा - सं. रमणिका गुप्ता
१५. स्त्री - विमर्श का कालजयी इतिहास - सं. संजय गर्ग
१६. अस्मिता बोध के विविध आयाम - कविता भाटिया
१७. हिंदी साहित्य में वर्णित सांप्रदायिकता का स्वरूप - डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर
१८. पिंजरे के परिदृश्य का बाहर का आत्मकथन - डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर
१९. भूमंडलीकरण और हिंदी कहानी - डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर
२०. दलित साहित्य संवेदनाओं का अनुशीलन - डॉ. हणमंतराव पाटील, डॉ.सचिन गपाट
२१. इक्कीसवींसदी के प्रथम दशक की आंबेडकरवादी कविता का अनुशीलन- -डॉ.प्रकाश कृष्णदेव धुमाल
२२. कथाकार जगदीशचंद्र - डॉ. संतोष मोटवानी
२३. स्त्री अस्मिता और समकालीन साहित्य - सं. डॉ. अनिल सिंह

१

झूला नट : मैत्रेयी पुष्पा

इकाई की रूपरेखा

१.० इकाई का उद्देश्य
१.१ प्रस्तावना
१.२ मैत्रेयी पुष्पा का लेखकीय व्यक्तित्व
१.३ 'झूला नट' उपन्यास का कथासार
१.४ 'झूला नट' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ
१.५ 'झूला नट' में चित्रित ग्रामीण समाज
१.६ सारांश
१.७ वैकल्पिक प्रश्न
१.८ लघुत्तरीय प्रश्न
१.९ बोध प्रश्न
१.१० अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

१.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई एम.ए. (हिंदी) सेमेस्टर तीन के प्रश्नपत्र ग्यारह से संबंधित है। इस इकाई के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री-विमर्शात्मक औपन्यासिक कृति 'झूला नट' का अध्ययन सम्मिलित है। 'झूला नट' उपन्यास १९९९ में प्रकाशित हुआ था। यह कृति मैत्रेयी पुष्पा की प्रतिनिधि औपन्यासिक कृति है। इस कृति में बुंदेलखंड के अंचल में बसे गांव की कथा कही गयी है। बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचल में स्त्री जीवन की विविध विसंगतियों का चित्रण इस कृति में किया गया है। इस इकाई के अंतर्गत 'झूला नट' उपन्यास के विविध संदर्भों का अध्ययन किया गया है, जैसे उपन्यास का कथासार, झूला नट उपन्यास में चित्रित समस्याएं एवं उपन्यास में चित्रित ग्रामीण समाज आदि। इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र 'झूला नट' उपन्यास की संवेदना को भली-भांति समझ सकेंगे।

'झूला नट' उपन्यास का समेकित अध्ययन कई इकाइयों में विभाजित करके किया गया है। इस इकाई में जहां उपन्यास की मुख्य संवेदना पर दृष्टिपात किया गया है वहीं, अन्य इकाइयों में पात्र-योजना, परिवेशगत यथार्थ, औपन्यासिक शिल्प तथा अन्य संदर्भों की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

१.१ प्रस्तावना

मैत्रेयी पुष्पा हिंदी की अत्यंत समर्थ कथाकार हैं। सन १९९० के बाद आयी साहित्यकारों की पीढ़ी में उनका अन्यतम स्थान है। उनके सभी उपन्यासों में स्त्री जीवन की विभिन्न विसंगतियों का चित्रण किया गया है। 'झूला नट' उपन्यास शीलो के जीवन की व्यथा-कथा को प्रस्तुत

करने वाला उपन्यास है। बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचल पर आधारित यह उपन्यास अपने परिवेश में स्त्री जीवन की विविध विसंगतियों को तो व्यक्त करता ही है, साथ ही बदलते समय संदर्भों में स्त्री के सशक्त होते रूप को भी प्रस्तुत करता है। अनपढ़ और निरक्षर होने के बावजूद शीलो अपने जीवन में आयी हुई विसंगतियों का न केवल सशक्त ढंग से मुकाबला करती है बल्कि पुरुष सत्तात्मक सोच को कड़ी चुनौती भी देती है। अपने जीवन की लगाम किसी पंचायत को न देकर खुद अपने हाथ में रखती है। अपने जीवन से जुड़े हुए फैसले खुद करती है। और उसके जीवन में विसंगतियों के जिम्मेदार उसके पति सुमेर से वह बदला भी लेती है।

शीलो के रूप में इस उपन्यास में एक ऐसी स्त्री चित्रित है, जो अपने जीवन में आयी हुई विसंगतियों को भाग्य समझकर स्वीकार नहीं करती बल्कि उनसे लड़ती है, कड़ा संघर्ष करती है और अंत में विजयी भी होती है। उपन्यास में शीलो का रूप काल्पनिक नहीं है बल्कि यथार्थ के कठोर धरातल पर आधारित है। यह बदलते समय का यथार्थ है। यह बदलते भारत की तस्वीर है। स्त्रियां अब निर्णय लेना जानती हैं। वे किसी भी बात को अकारण स्वीकार करने को तैयार नहीं है। यह उपन्यास एक मानसिकता का खुलासा करता है, जो अब स्त्री समाज में केंद्र में है। यह उपन्यास हिंदी के स्त्री-विमर्शात्मक साहित्य को एक नई ऊंचाई देने का काम करता है।

शीलो, सरसुती, बालकिशन और सुमेर जैसे पात्रों पर केंद्रित झूला नट उपन्यास में केवल एक समस्या को लेकर ही विचार-विमर्श नहीं किया गया है बल्कि यह उपन्यास व्यापक अर्थों में उस पूरे अंचल कि ग्रामीण संस्कृति को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करता है। 'झूला नट' को एक स्त्री विमर्शात्मक रचना माना जाता है, पर रचना को पढ़ते हुए यह महसूस होता है कि यह उपन्यास एक तरफ जहां स्त्री संदर्भों को सशक्त ढंग से हमारे सामने रखता है वहीं दूसरी तरफ संपूर्ण ग्रामीण जनजीवन भी इसके केंद्र में है। जिसका सूक्ष्म चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। उपन्यास को पढ़ते हुए व्यापक जन जीवन के संदर्भ में कई तरह के प्रश्न मन में उत्पन्न होते हैं। वास्तव में व्यापक जीवन-बोध को समेटे हुए यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है।

१.२ मैत्रेयी पुष्पा का लेखकीय व्यक्तित्व

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म ३० नवंबर १९४४ को अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा नामक गांव में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा खिल्ली (जिला झांसी, उत्तर प्रदेश) से हुयी। स्नातक एवं स्नातकोत्तर की शिक्षा उन्होंने बुंदेलखंड महाविद्यालय, झांसी से पूरी की। उनके जीवन के निर्माण में उनकी मां का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान था, जो चाहती थी कि मैत्रेयी पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर बने। इनकी मां ने स्वयं के प्रयासों से अपने को निर्मित किया था। जीवन के कठोर धरातल से उनका सामना हुआ और उसी सब से प्रेरणा लेते हुए मैत्रेयी का पालन-पोषण उन्होंने अत्यंत अनुशासित वातावरण में किया। उनका अपना जीवन एक पुरुषसत्तात्मक समाज को चुनौती देता था और संघर्ष करने का संस्कार मैत्रेयी को उन्हीं से मिला। मैत्रेयी को स्वयं बचपन में पुरुषसत्तात्मक विकृत-सोच का जमकर मुकाबला करना पड़ा परंतु उन्होंने हार नहीं मानी और अपने जीवन की इबारत खुद लिखी।

मैत्रेयी पुष्पा हिंदी की ऐसी लेखिकाओं में सम्मिलित हैं जिन्होंने लगातार प्रासंगिक लेखन किया। सन १९९० के बाद सक्रिय हुई पीढ़ी में संभवत: वे सर्वाधिक उर्वर और समृद्ध लेखिका हैं। उन्होंने साहित्य की कई विधाओं में लेखन कार्य किया है। उनके कई कहानी-संग्रह 'चिन्हार'

(१९९१), 'ललमनियाँ' (१९९६), 'गोमा हंसती है' (१९९८) उपन्यास - 'स्मृतिदंश' (१९९०), 'बेतवा बहती रही' (१९९४), 'इदंनमम' (१९९४), 'चाक' (१९९७), 'झूला नट' (१९९९), 'अल्मा कबूतरी' (२०००), 'अगनपाखी' (२००१), 'विजन' (२००२), 'कस्तूरी कुंडल बसे' (२००२), 'कही ईसुरी फाग' (२००४), 'त्रियाहठ' (२००६) आदि प्रकाशित हैं। इस तरह अपने उपन्यासों और कहानी संग्रहों से उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को अत्यंत समृद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन दोनों विधाओं के अतिरिक्त उनकी कुछ कविताएं, नाटक 'मंदाक्रांता' (२००६), लेखसंग्रह 'खुली खिड़कियाँ' (२००३), 'सुनो मालिक सुनो' (२००६) आदि प्रकाशित हैं। मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य उनके देखे-सुने और भोगे हुए अनुभवों पर आधारित है। वह जीवन के कठोर यथार्थ पर आधारित है। स्वयं मैत्रेयी पुष्पा का जीवन भी सीधी सरल रेखा में नहीं चला। उन्होंने अपने जीवन में कई तरह की विपरीत परिस्थितियों का सामना किया। उनकी रचनाएँ उनके इन्हीं देखे-सुने और भोगे गए अनुभवों पर आधारित हैं। उनमें यथार्थ एक नए रूप में प्रस्तुत है।

मैत्रेयी पुष्पा के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने कथा-साहित्य में विपरीत परिस्थितियों में संघर्षरत पात्रों को चित्रित किया है। उनके स्त्री-पात्र हारे हुए पात्र नहीं है बल्कि कठिन से कठिन स्थितियों को बदलने वाले पात्र हैं। हिंदी में उपन्यास और कहानी के जन्म के समय से ही स्त्री जीवन की समस्याएं कथा-साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा रही हैं। प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल जैसे कथाकारों ने स्त्री और उसके जीवन को आधार बनाकर प्रभूत मात्रा में साहित्य रचा है। इन सभी के साहित्य में सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं के पाश में फंसी हुई स्त्री चित्रित है, जो प्रतिरोध करना नहीं जानती। वह यथास्थिति के साथ जीने और मरने को विवश है। परंतु मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में चित्रित स्त्री पात्र न केवल रूढ़ियों और परंपराओं के षड्यंत्र को समझते हैं बल्कि उस जाल को काट फेंकने का माद्दा भी रखते हैं। 'झूला नट' उपन्यास की नायिका शीलो अनपढ़ और गंवार है परंतु व्यावहारिक बुद्धि से संपन्न है। अपनी ससुराल में जहां पहले वह असामान्य स्थितियों को सामान्य बनाने का यत्न करती दिखाई देती है वहीं बाद में यह समझ जाने पर कि स्थितियां हाथ से निकल चुकी है और उसका वैवाहिक जीवन अब सामान्य स्थिति में नहीं आ सकता, वह स्वयं अपने भावी जीवन का निर्माण करती है। अपनी विवशता को सबलता में परिवर्तित करती है। अपनी व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग करते हुए वह सुमेर से बदला लेती है। गांव से बिना कुछ हासिल किये, सुमेर का पलायन दरअसल पुरुषसत्तात्मक सोच की हार है और बदलते संदर्भों में सशक्त होती स्त्री की पहचान है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में उनके स्त्री पात्र ऐसी ही सशक्त स्थितियों को अभिव्यक्त करते हैं। स्त्री के इस रूप को रचना मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की विशिष्टता है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में बुंदेली और ब्रज ग्रामीण संस्कृति का यथार्थपूर्ण चित्रण हुआ है। दरअसल इन्हीं सबके बीच उन्होंने अपने जीवन का ज्यादातर समय व्यतीत किया था। यही उनके अनुभव प्रमाणिकता पाते थे और जीवन को खट्टे-मीठे अनुभव यहीं से मिले थे। यद्यपि उनके जीवन का एक बड़ा हिस्सा महानगर में भी बीता है परंतु उनके कथा साहित्य में जितना सार्थक और स्वाभाविक चित्रण ग्रामीण संस्कृति से जुड़कर हुआ है, वह महत्वपूर्ण दस्तावेज है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर बदलते हुए समाज के कई संगत और असंगतिपूर्ण चित्र देखने को मिलते हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, स्वयं लेखिका का जीवन भी ऐसे अनेक दृश्यों से भरा हुआ है। उनका अपना अनुभव जगत समाज की कड़वी सच्चाई से परिचित है। यह कड़वी सच्चाई विभिन्न रूपों में उनके उपन्यास साहित्य

में यथार्थपूरक ढंग से उभर कर आई है। मैत्रेयी पुष्पा का लेखन जिस तरह से असंगतियों को सामने लाता है, वह पाठकों को चमत्कृत कर देता है। यथार्थ की एक नई तरह की अभिव्यक्ति उनके साहित्य में देखने को मिलती है।

१.३ 'झूला नट' उपन्यास का कथासार

'झूला नट' उपन्यास बुंदेलखंड की ग्रामीण संस्कृति को समेटे हुए स्त्री संघर्ष की विडंबना की अद्भुत गाथा है। इस उपन्यास में शीलो, सरसुती, बालकिशन, सुमेर आदि पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री जीवन के जटिल और विडंबनापूर्ण यथार्थ का चित्रण किया है। ग्रामीण जीवन के अपनी तरह के सरल और जटिल जीवनमूल्य हैं। हम जानते हैं कि परिवेश चाहे ग्रामीण हो या शहरी, स्त्री, समाज में दोयम दर्जे में ही पदस्थ है और उसके जीवन का मान-अपमान, सुख-दुख सभी कुछ पुरुषों की इच्छा से ही संचालित है। हजारों वर्षों से स्त्री इसी क्रम का अनुसरण करती चली आयी है परंतु समय के साथ इस क्रम में कुछ व्यतिक्रम भी उत्पन्न हुए हैं, जो धीरे-धीरे स्त्री चेतना के प्रबुद्ध होते जाने का संकेत हैं। इस उपन्यास में शीलो के माध्यम से उपन्यास लेखिका ने स्त्री विमर्श की एक अद्भुत गाथा कही है।

उपन्यास की मुख्य कथा शीलो, सरसुती, बालकिशन और सुमेर के बीच घटती है। कथा का सारांश यह है कि शीलो का विवाह सुमेर के साथ संपन्न होता है और वह विदा होकर अपनी ससुराल आती है। ससुराल में आते ही उसके साथ ग्रामीण मान्यताओं के अनुसार कुछ अनिष्ट घटना शुरू होता है। दरअसल शीलो के एक हाथ में छः उंगलियां होती हैं जिसे ग्रामीण मान्यता के अनुसार ठीक नहीं समझा जाता है। गलती से शीलो के देवर बालकिशन के द्वारा मुंह-दिखाई की रस्म के दौरान यह बात कह दी जाती है। पूरे गांव के लोग यह बात सुनते हैं और शीलो की सास, सरसुती इस बात को यों ही टाल देती है। इसके बाद उपन्यास कुछ इस तरह आगे बढ़ता है कि सुमेर जो कि पुलिस विभाग में सरकारी नौकरी करता है और उसकी पोस्टिंग शहर में है, वह विवाह के बाद शीलो को गांव में छोड़कर चला जाता है। वास्तविकता यह है कि वह विवाह से संतुष्ट ही नहीं है। उसके पिता ने बचपन में ही यह विवाह तय किया था। सुमेर के पिता की मृत्यु के बाद सरसुती अपने पति के वचन को पूरा करती है। और दूसरा यह भी कि सुमेर की नौकरी के लिए शीलो के पिता कुछ पैसे भी खर्च करते हैं। इन सबके चलते दबाववश सुमेर विवाह तो कर लेता है परंतु पहले दिन से ही उसे यह स्वीकार नहीं होता। नौकरी पाने के बाद उसे अपने पत्नी के रंग-रूप, हर चीज में कमी दिखाई देने लगती है और अंततः विवाह हो जाने के बाद भी शीलो अविवाहित स्थिति में ही बनी रहती है।

कुछ समय तक विवाह के संदर्भ में यह अनिश्चय की स्थिति बनी रहती है और सरसुती, शीलो सभी को लगता है कि समय के साथ यह समस्या सुलझ जाएगी। परंतु ऐसा होता नहीं है। सुमेर एक-दो बार गांव तो आता है परंतु शीलो के पास नहीं जाता और जैसा कि ग्रामीण समाज में होता है कि विपरीत परिस्थितियों में देवी-देवताओं के सहारे अपने को छोड़ देते हैं, ऐसा ही शीलो, सरसुती और बालकिशन भी करते हैं। शीलो की पीड़ा को उसकी सास सरसुती और देवर बालकिशन पूरी मानवीयता के साथ महसूस करते हैं। वे चाहते हैं कि दोनों पति-पत्नी का जीवन सामान्य स्थितियों में आ जाए और इसके लिए वे हर तरह का जतन करते हैं। चंपादास बैद के परामर्श पर शीलो देवी-देवताओं की हर तरह की आराधना - व्रत सभी कुछ अपनी दिनचर्या में अपना लेती है। वह कठिन से कठिन साधना करके अपने पति को वापस पाना चाहती है और सभी साधनाएं पूरी लगन से करती भी है। चंपा दास पूरे दावे से सरसुती

को समझाते हुए कहता है, "बहू से महामाई के मंदिर तक और मंदिर से शिवाले तक ब्रह्म बेला में पेड़ भरवाओ (पेट के बल लेट-लेटकर पहुंचना)। पाँच गाय, तीन कुत्तों की रोटी नित नियम से निकाली जाएं। तुलसी का चौरा और पीपल का पेड़ ढारे। घर में सुंदरकांड का पाठ करो। साला सुमेर क्या, सुमेर का बाप चला आएगा परलोक से। तप की माया, देवी - देवता का सिंहासन हिला दे, आदमी की क्या बिसात ?" परंतु सुमेर का मन नहीं फिरता। शीलो तो शीलो, सीधा-साधा बालकिशन भी अपने परिवार पर आए इस संकट को सहन नहीं कर पाता। व्यथित रहता है और चाहता है कि जल्द से जल्द स्थितियां सामान्य हो जाएँ और इसके लिए वह भी तमाम देवी देवताओं की मनौतियाँ मानता है। तमाम साधनाएं अपनाता है। परंतु स्थितियां और बद से बदतर होती जाती हैं। सुमेर, शीलो की तरफ से अनमना ही बना रहता है।

शीलो के वैवाहिक जीवन में उत्पन्न हुई इन असामान्य स्थितियों की जिम्मेदार वह नहीं है, न ही उसने सुमेर को विवाह के लिए किसी प्रकार भी विवश किया है। वह इन सारी स्थितियों को भाग्य समझकर ठीक करने के जतन में जुट जाती है और ठीक करने में असफल ही रहती है। दूसरी तरफ उसकी सास सरसुती उसकी व्यथा को समझती है। वह अपने बेटे की मक्कारी को भी भाप लेती है, पर उससे मुंह भी नहीं फेर पाती, आखिर सुमेर परिवार की शान है। पुलिस विभाग में नौकरी होने के कारण गांव-खेड़े में परिवार की इज्जत का कारण है। और फिर घर का बड़ा भी है। सरसुती शीलो के साथ पूरी सहानुभूति रखती है खुद भी तमाम मनौतियाँ मानती है कि लड़का फिर जाए, लौटकर शीलो को अपना ले। सरसुती स्वयं विधवा है और इसीलिए वह शीलो का दुख समझती है। परिवार में जब तक यह खबर नहीं होती कि सुमेर ने दूसरा विवाह कर लिया है, तब तक उम्मीदें जिंदा रहती हैं कि शायद वह शीलो को अपना लेगा परंतु जब सुमेर शहर में एक दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है तो सारी उम्मीदें समाप्त हो जाती हैं। शीलो भी इस खबर को सुनकर बहुत दुखी होती है परंतु वह अपने आक्रोश और दुख को दबा जाती है। ऐसी स्थितियों में सरसुती कोई और रास्ता न पाकर अपने छोटे बेटे बालकिशन को शीलो को समर्पित कर देती है। बालकिशन जोकि अपने भाई से बेतहाशा डरता है, शीलो के प्रति सहानुभूति रखता है। वह अपने मां के कहे को टाल नहीं पाता और जैसा मां चाहती है, वैसा ही करता है। मां के कहने पर ही उसने अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर खेती की जिम्मेदारी उठा ली और अब मां के कहने पर ही वह अपने को शीलो को समर्पित कर देता है।

यहीं से उपन्यास एक नए मोड़ पर आ खड़ा होता है। गांव में बछिया नाम की एक परंपरा है जिसका अर्थ यह है कि कोई विवाहित जोड़ा यदि टूटता है और स्त्री किसी और पुरुष के संग अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है तो गांव और पंचायत की सहमति से भोज आदि की औपचारिकता पूरी करने के बाद उनके रिश्ते को वैधता मिल जाती है। शीलो और बालकिशन सरसुती की अनुमति से साथ में रहने तो लगते हैं और यह बात गांव के बड़े-बूढ़ों से ज्यादा दिन छिपी भी नहीं रह पाती, ऐसी स्थिति में समाज में तरह-तरह की बातें होने लगती हैं। सरसुती चाहती है कि बछिया की परंपरा का निर्वहन करके बालकिशन और शीलो के रिश्ते को वैधता मिल जाए। परंतु शीलो बछिया प्रथा का निर्वहन करने से इंकार कर देती है। यहीं से उसका विद्रोही रूप आकार लेना शुरू करता है। बालकिशन के साथ अपने रिश्ते को स्वीकार कर वह सामान्य जीवन जीना शुरु कर देती है। उसके जीवन में सुख की छाया पड़ती दिखाई देती है। एक अवसर पर बड़ी-बूढ़ियों के द्वारा बातें बनाए जाने पर वह जवाब देते हुए कहती है

कि "ऐं काकी जी, पुलिसिया बेटा की बछिया की पांत खा ली ? पूछा नहीं कि बरकट्टो (बाल कटी) व्याही है या रखैल ? बेटों के चलते रसम-रीत भूलकर बहुओं की पीठों के लिए कोड़े लिए फिरती हो तुम बूढी जनी।" अर्थात उसका विद्रोह इस बात पर है कि सुमेर जिसने कि बिना गांव-खेड़े और पंचायत की अनुमति के दूसरा विवाह कर लिया, उस पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगा और न ही किसी ने उस रिश्ते को वैधता देने के लिए बछिया की पांत खाने की बात कही। फिर शीलो के लिए ही क्यों ? उसके इस विद्रोह के सामने बड़ी-बूढ़ियाँ तो अवाक रह ही जाती हैं, साथ ही बालकिशन भी समझाकर हार जाता है, परंतु शीलो इसके लिए तैयार नहीं होती। सरसुती लाख जतन करती है परंतु असफल रह जाती है।

दरअसल यह सब अकारण ही नहीं घट रहा था, इसके पीछे एक सुनियोजित सोच थी। शीलो जानती थी कि जमीन-जायदाद के लिए सुमेर गांव आएगा और बछिया प्रथा को स्वीकार करने के बाद शीलो का उस पर किसी भी प्रकार का अधिकार समाप्त हो जाएगा। शीलो बदला लेना चाहती थी। वह सुमेर से अपने अपमान का प्रतिकार चाहती थी। बिना किसी अपराध के सुमेर के द्वारा उसके स्वाभिमान को आहत किया जाना उसे स्वीकार नहीं था। प्रकट रूप में कहीं भी वह अपना यह आक्रोश व्यक्त नहीं करती परंतु जैसे सही अवसर की तलाश के लिए उसने अपने आक्रोश को दबाए रखा था। शहर में घर बनाने के उद्देश्य से सुमेर गांव में अपनी जगह-जमीन बेच देना चाहता है और इस इरादे से वह गांव आता है। सरसुती उसके गांव लौटने पर हर बार इस उम्मीद में रहती है कि शायद इस बार वह मन बदल कर आया है, शायद वह शीलो को अपना ले। परंतु सुमेर जब जमीन जायदाद के मसलों को हल करने की बात कहता है तो सरसुती के पास कोई उत्तर नहीं था। वह बेटे का प्रतिरोध नहीं कर सकती थी।

'झूला नट' उपन्यास शीलो के मान-अपमान और उससे संघर्षकर पार निकलने की गाथा है। स्त्री इस समाज की प्रथम जन्मदात्री है। समाजशास्त्री मानते हैं कि इस समाज की प्रथम जन्मदाता वही है। उसी ने नियमों के संजाल को रचकर समाज के निर्माण का प्रथम चरण पूरा किया परंतु शारीरिक अशक्तता के चलते धीरे-धीरे इस समाज का नियंता पुरुष बन गया। हजारों वर्षों तक पुरुष ही अपने अनुरूप समाज के नियम और ढांचे का नियमन करता रहा। स्त्री अपने संवेदनशील स्वभाव और परिवार को बनाए रखने की आस्था के चलते हमेशा पुरुष की धूर्तता का शिकार होती रही। जहां बहलाकर काम निकल सका, वहां बहलाया और जहां जोर-जबर से काम निकालना चाहा, वहां वैसा किया। परंतु अब समय बदल गया है। स्त्री इस धूर्तता को भली-भांति पहचान चुकी है। शीलो भले ही ग्रामीण परिवेश में पली सीधे-सरल स्वभाव की स्त्री है। परंतु विपरीत परिस्थितियों में उसकी सहज बुद्धि इस धूर्तता को पहचानने में समर्थ है। पहले तो सुमेर उसे छोड़ देता है, पर जमीन-जायदाद के निस्तारण के लिए उसे गांव आना ही पड़ता है। वह जानता है कि शीलो उसके मार्ग का कांटा बन सकती है, इसीलिए उसे बहलाते हुए वह कहता है, "तुम सोचती हो, मैं भूल गया तुम्हें ? अरे शीलो ! मैं तो इस काबिल भी नहीं रहा कि यहां आकर इस घर का पानी भी पी सकूं। सच्ची बात तो यह है कि घर वसीले के लिए जमीन बेचना तो बहाना है, मैं तुम्हारी राह का कांटा बनना नहीं चाहता। तुमने जो किया, बुद्धि-विचार से किया है। अकलमंद कदम।" दरअसल सुमेर अपने धूर्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए शीलो को यह जताना चाहता था कि बालकिशन से नाता जोड़कर शीलो अब उसकी जिम्मेदारी नहीं रह गई।

परंतु इसी स्थल पर शीलो का दृढ़ व्यक्तित्व और दूरदर्शिता सामने आती है। सुमेर के यह कहने पर कि शीलो और बालकिशन अब साथ रहने लगे हैं तो जमीन पर आधा अधिकार

उसका है, शीलो उसे टोंकते हुए कहती है कि बालकिशन से उसका कोई रिश्ता नहीं है। वह अभी भी सुमेर की ही पत्नी है और सुमेर की आधी जायदाद में उसका भी अधिकार है। वह सुमेर से कहती है, "काये के पति-पतनी, बाबूजी ? वह अबोध मन का अच्छा है, सो बस.... तुम्हारी ब्याहता होने के बाद भी..... पर छोड़ो उस बात को। बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए, जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी दूसरी औरत। बिनब्याही, मनमर्जी की। सच मानो, बालकिशन भी इससे ज्यादा कुछ नहीं।" यह कहने के अतिरिक्त जमीन-जायदाद के प्रश्न पर वह सुमेर से कहती है, "जमीन-जायदाद की बात यह रहने दो कि यह मामला तो अब भी हमारे-तुम्हारे बीच ही है। बाबूजी, बालकिशन सिरफ अपने हिस्से का मालिक है। वह कौन होता है हमारे-तुम्हारे हिस्से में टांग अड़ाने वाला ? बिल्कुल ऐसे ही, जैसे तुम्हारी वह बिचारी कोई नहीं होती हमारे-तुम्हारे बीच। ये जर-जोरू के मामले बड़े बेड़े (कठिन) हैं, बाबूजी।" उसके इस जवाब को सुनकर सरसुती भी अवाक रह जाती है और अब उसे समझ में आता है कि शीलो ने बछिया का निर्वाह करने से इंकार क्यों किया था। न सरस्वती और न ही सुमेर, किसी को यह उम्मीद नहीं थी कि, शीलो इस तरह से व्यवहार करेगी। उन्हें लगा था कि जैसा भी करते जाएंगे, वह भाग्य समझकर वैसा स्वीकार करती जाएगी। इन सारे जवाबों के बाद सुमेर, सरसुती पर नाराज होता है, "सारी गलती तो तुम्हारी है। बछिया क्यों नहीं कराई बालकिशन के संग। बछिया करा देतीं, तो यह सींग पैना कर खड़ी हो आती ? छोटा सा पशु ही इसको बेदखल कर देता सारे हक़ से। पूरा गांव गवाह होता..... पर अम्मा, दो-चार हजार का लोभ करके तुमने हमें चित्त करा दिया। अरे ! मुझसे सवाल करतीं, तो मैं भेज देता। अब भुगत लो, लाखों की जायदाद पर दांत गाड़े बैठी है।" सुमेर क्रोधित होकर उसी क्षण घर से चला जाता है। इस तरह शीलो सुमेर से अपना बदला लेती है।

चरित्रों के विकास करने की जो शैली मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में अपनायी है, इस उपन्यास में इसी स्थल से दिखाई देती है। जो शीलो अनपढ़ और गंवार समझी जा रही थी, आज उसने सुमेर और सरसुती, दोनों के ही पैर उखाड़ दिए थे। पहले बालकिशन और अब फिर पूरे घर पर धीरे-धीरे उसने अपने निर्णय काबिज कर दिए थे। हर कदम पर सरसुती से उसका टकराव जरूर होता था, पर अंत में जीत शीलो की ही होती थी। शीलो और सरसुती के रूप में लेखिका ने परंपरा और नई सोच के अंतर्द्वंद को भी विकसित किया है। इस अंतर्द्वंद्व में शीलो नए युग की स्त्री-सोच का प्रतिनिधित्व कर रही है। झूला नट उपन्यास १९९९ में प्रकाशित हुआ था। २१वीं सदी की शुरुआत ही होने वाली थी। नई सदी में नई सोच और स्त्री विमर्शात्मक संदर्भों को नई दिशा अब महत्वपूर्ण होना नहीं था बल्कि अपना व्यक्तिगत विकास तथा समय को अपने मुताबिक मोड लेने की जद्दोजहद थी। अब परंपराएं पैरों में बेड़ी की तरह बंधी नहीं थी, किसी भी क्षण उन्हें झटके से तोड़ा जा सकता था। ऐसी परंपराएं जो जीवित संदर्भों को मृत संदर्भ में तब्दील कर दें, उनका कोई मोल नहीं रह गया था। उन परंपराओं के पीछे की शक्ति, सामाजिक अवमानना का डर था और इस डर को छोड़कर स्त्री अब आगे निकल चुकी थी। शीलो के चरित्र के द्वारा लेखिका ने इन्हीं संदर्भों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। सुमेर को एक तरफ परे हटाने के बाद शीलो ने धीरे-धीरे करके महत्वपूर्ण निर्णयों में भागीदारी या कहें निर्णय लेना शुरू कर दिया। खेती-बाड़ी, बात-व्यवहार, गांव-समाज सभी में बालकिशन उसी की बात मानता था। ऐसे ही खेती-बाड़ी और फसल बोने के संदर्भ में सरस्वती को समझाते हुए शीलो कहती है, "अम्मा जी, गुस्सा पी जाओ। बूढ़े जमाने उखड़ेंगे नहीं तो नया बखत आएगा कैसे ? अपने इस रेंगटा को रेत में नहीं, सड़क पर चलना सीखने दो। शुरू में पांव छिलेंगे जरूर, पर मोटर की तरह दौड़ना आ जाएगा।"

वास्तव में उपन्यास की मुख्य समस्या शीलो के जीवन का अव्यवस्थित पक्ष है, उसके साथ हुआ अन्याय है। जोकि सुमेर की आकांक्षाओं के पूरा न हो पाने और शीलो द्वारा सुमेर के अभिमान को आहत किए जाने से उसका समाहार होता दिखाई देता है और उपन्यास का एक उद्देश्य भी पूरा होता है, परंतु लेखिका ने उपन्यास को यहीं तक सीमित नहीं रखा है। सुमेर के प्रसंग के बाद शीलो और सरस्वती का आपसी संघर्ष तथा बालकिशन की दुरावस्था के चित्रण के साथ लेखिका उपन्यास के समापन की ओर बढ़ती हैं। झूला नट अपने आकार में बहुत विशाल उपन्यास नहीं है। इसे लघु उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है। ऐसा लगता है कि लेखिका ने शीलो के प्रतिकार के बाद के प्रसंगों को अनावश्यक तरीके से बढ़ाया है, जिसकी कोई आवश्यकता समझ में नहीं आती। इन बढ़े हुए प्रसंगों से उपन्यास में किसी भी तरह से प्रभावोत्पादकता की वृद्धि भी नहीं होती। सुमेर के अंतिम रूप से गांव छोड़ देने के बाद उपन्यास शीलो और सरस्वती के आपसी संघर्ष की घटनाओं के द्वारा आगे बढ़ता है। यह संघर्ष परिवार में मुख्य स्थान को बनाए रखने या हासिल करने का संघर्ष था, जिसमें सरसुती धीरे-धीरे हारती है और शीलो परिवार में महत्वपूर्ण स्थान बनाती चली जाती है, जहां उसके निर्णय ही अंतिम रूप से स्वीकृति पाते हैं।

शीलो और सरस्वती के आपसी संघर्ष में उपन्यास के अंतिम चरण में बालकिशन के चरित्र को अंतिम परिणति की ओर ले जाने का काम उपन्यास लेखिका के द्वारा किया गया है। बालकिशन इस उपन्यास का ऐसा पात्र है जो सरसुती और शीलो के बीच घड़ी के पेंडुलम की तरह इधर-उधर भटकता रहता है। वह अपनी मां, सरसुती के मोह से भी मुक्त नहीं हो पाता और दूसरी तरफ शीलो की माया ने भी उसे गहरे तक जकड़ के रखा है। आपसी विवाद की इन स्थितियों में सबसे बुरी दुर्गति का शिकार बालकिशन ही होता है। एकाधिकार की आकांक्षा में चल रहा शीलो और सरसुती का संघर्ष अंततः बालकिशन के लिए बुरा समय लेकर आता है। उसके चरित्र की विसंगति को स्पष्ट करते हुए उपन्यास लेखिका लिखती हैं, "इन दोनों के चलते मुलजिम हूं, अपराधी हूं या कि शिकार....? दोनों के चलते टुकड़े-टुकड़े काटा गया बालकिशन। टुकड़ों में से बड़ा हिस्सा झपटने वाली बिल्लियों की तरह दो स्त्रियां। चंपादास बैद ! तुम सच्चे ज्ञानी। बैदगिरी करते-करते जोगी हो गए ! मैं अंधेरे में फंसा जीव, एक किरन के लिए तरसता हुआ..... तुम जहां रम गए, वहीं घर-घाट, जो गा-बजा दिया, वही वेद-वाद्य।

'झूठे मात-पिता सुत माई, झूठी है नातेदारी।
झूठा है सब कुटुम कबीला, झूठी है प्यारी नारी।।"

कलह और क्लेश की स्थितियों में बालकिशन अपने को संभाल नहीं पाता और पलायन को विवश हो जाता है। अर्थात वह घर छोड़ देता है और ओरछा धाम की ओर चल देता है। ओरछा, राजा हरदौल की धरती। राजा हरदौल जिसने अपने बड़े भाई जुझार सिंह के संदेह को दूर करने के लिए हंसते-हंसते विष पी लिया था और अपने प्राणों का बलिदान दे दिया था। बालकिशन कल्पना में अपने को उन्हीं विकट स्थितियों में फंसा हुआ पाता है। उसे अपने वजूद से अचानक घृणा महसूस होने लगती है। शीलो, सरस्वती और सुमेर के द्वारा उपजाई गयी स्थितियों में सबसे ज्यादा ध्वंस जिसे देखना पड़ता है, वह बालकिशन ही है। उसका मानसिक संतुलन अस्थिर हो जाता है और इसी स्थल पर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

ऊपर से अपने कलेवर में सरल और सहज दिखने वाला 'झूला नट' उपन्यास दरअसल जटिल जीवनबोध की रचना है। यह उपन्यास केवल शीलो का आत्मवृत्त बनकर नहीं रह जाता बल्कि इस उपन्यास में ग्रामीण अंचल के एक परिवार की विसंगतिपूर्ण व्यथा-कथा है। यह अवश्य है

कि शीलो इस उपन्यास की एक मुख्य पात्र है परंतु जिस ढंग से उपन्यास लेखिका ने सरसुती और बालकिशन के चरित्रों का विकास किया है, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। उपन्यास में कई तरह के जीवन संघर्षों को एक साथ, एक सूत्र में पिरोने का काम उपन्यास लेखिका के द्वारा किया गया है। एक तरफ जहां शीलो कर अपने जीवन का अंतर्द्वन्द्व है वहीं दूसरी तरफ सरस्वती का वैचारिक संघर्ष है। और तीसरी तरफ बालकिशन है, जो अपने सीधे-सहज चरित्र के साथ शीलो और सरसुती के बीच पिसकर रह जाता है। उपन्यास के अंत में यह सोचने का विषय हो जाता है कि क्या इन स्थितियों से बचा जा सकता था। तीनों के साथ हुआ अन्याय बांटने के लिए सरस्वती ने बालकिशन का सहारा लिया है। बालकिशन ने भी पूरी आस्था से सरसुती के विश्वास को निभाया परंतु एकाधिकार के संघर्ष में बालकिशन जिस दुर्गति को प्राप्त करता है, क्या वास्तव में वह उसका हकदार है ? क्या सचमुच उसे परिवार में संतुलन स्थापित करने का यही पारितोषिक मिलना चाहिए था ? दरअसल यही जटिल जीवनबोध है, जहां समाज की बनी - बनाई व्यवस्था में परिवर्तन आने पर कई तरह की संगत-असंगत स्थितियां उत्पन्न होती हैं। कुल मिलाकर यह उपन्यास आज के समय में इसी जटिल जीवनबोध की सार्थक अभिव्यक्ति करने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है।

१.४ 'झूला नट' उपन्यास में चित्रित समस्याएँ

'झूला नट' उपन्यास ग्रामीण जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में जहां बुंदेलखंड अंचल की भाषा और संस्कृति की झलक है, वहीं बुंदेलखंड के ग्रामीण समाज में स्त्री जीवन का सार्थक चित्रण भी किया गया है। मुख्य रूप से देखा जाए तो इस उपन्यास के केंद्र में शीलो का जीवन है। आनुषंगिक रूप से जनजीवन की अन्य समस्याएं भी छिटपुट ढंग से देखने को मिलती हैं। स्त्री विमर्शात्मक संदर्भों को लेकर मैत्रेयी पुष्पा का लेखन अत्यंत प्रौढ़ और प्रामाणिक लेखन बन चुका है। उन्होंने समाज के अलग-अलग संदर्भ में स्त्री जीवन की वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति की है। उनके उपन्यास और कहानी-संग्रह 'चिन्हार' (१९९१), 'ललमनियाँ' (१९९६), 'गोमा हंसती है' (१९९८) उपन्यास - 'स्मृतिदंश' (१९९०), 'बेतवा बहती रही' (१९९४), 'इदंनमम' (१९९४), 'चाक' (१९९७), 'झूला नट' (१९९९), 'अल्मा कबूतरी' (२०००), 'अगनपाखी' (२००१), 'विजन' (२००२), 'कस्तूरी कुंडल बसे' (२००२), 'कही ईसुरी फाग' (२००४), 'त्रियाहठ' (२००६) आदि इस बात का सशक्त उदाहरण हैं। वर्ष १९९० से वे निरंतर लेखन करती चली आ रही हैं। कई कहानी संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इन सभी में उन्होंने आज के ग्रामीण जीवन के जटिल बोध को प्रस्तुत किया है।

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन समस्या-विशेष को तो केंद्र में लेकर चलता ही है, साथ ही संपूर्ण जीवन का सार भी इसमें अभिव्यक्त होता है। उपन्यास 'झूला नट' में उपन्यास लेखिका ने शीलो के जीवन के बहाने ग्रामीण जीवन में आज भी स्त्रियों के साथ हो रहे अन्याय और अत्याचारों का सार्थक वर्णन किया है। आज भी मानवीय सरोकारों से कहीं अधिक रूप-रंग का महत्व है। शीलो एक सीधी-सरल ग्रामीण युवती है। सीधे-सहज संस्कारों में उसका पालन-पोषण हुआ है। वह पढ़ी-लिखी नहीं है, परंतु व्यवहारिक ज्ञान की उसमें कोई कमी नहीं है। ग्रामीण समाज में आज भी विवाह परिवार के बड़े-बूढ़ों की सहमति से संपन्न होता है। शीलो का विवाह भी सुमेर के साथ परिवार के बड़े बुजुर्गों की इच्छा के अनुसार होता है। कहीं कोई दबाव नहीं। ऐसे में विवाह के पश्चात ही सुमेर का उपेक्षा का बर्ताव कहां तक न्यायोचित है। इन सारी

परिस्थितियों में शीलो की गलती कहां है ? और उसे किस अपराध की सजा मिल रही होती है ? दरअसल शीलो पुरुषसत्तात्मक समाज की अहंकारपूर्ण इच्छा का शिकार है। सुमेर पुलिस विभाग में नौकरी पा चुका होता है। यद्यपि उसके नौकरी प्राप्त करने में शीलो के पिता का महत्वपूर्ण योगदान था। सुमेर इस एहसान को भूलकर नौकरी पाते ही अपनी इच्छाओं का गुलाम हो जाता है। अचानक शीलो उसे बदसूरत लगने लगती है और वह शहरी रंग-ढंग की एक युवती से विवाह कर लेता है। इस सारे घटनाक्रम में सोचनीय प्रश्न यह है कि विवाह के पश्चात छोड़े जाने का अपमान शीलो क्यों बर्दाश्त करे ? लेखिका ने इन सभी स्थितियों को बड़े सार्थक ढंग से उपन्यास में उभारा है।

उपन्यास के केंद्र में निश्चित रूप से शीलो का जीवन है परंतु वर्तमान समय में जिस प्रकार जीवन कई प्रकार की जटिलताओं का शिकार हो गया है, उपन्यास लेखिका ने उन सभी को अपने उपन्यास में उतारने का प्रयास किया है। शीलो के जीवन की विसंगतियों की निरर्थकता को सरसुती समझती है। उसका देवर बालकिशन भी समझता है। इसीलिए सरसुती दोहरे अंतर्द्वंद में फंसी रहती है। न तो वह अपने बड़े बेटे सुमेर को छोड़ सकती है और न ही उससे शीलो का दुख देखा जाता है। इन अंतर्द्वंदों में काफी समय तक फंसे रहने के पश्चात वह अंततः निर्णय लेने में समर्थ होती है। उसके भीतर का गहरा दुख यह है कि जिस बेटे से वह अपने परिवार की मान-मर्यादा और इज्जत को जोड़कर देखती है, उसे कैसे छोड़ दे। ग्रामीण समाज में वैसे भी बड़े बेटे का एक अलग ही दर्जा होता है। ऐसी स्थिति में सरसुती अपने छोटे बेटे बालकिशन को अप्रत्यक्ष रूप से शीलो के सामने समर्पित कर देती है। बालकिशन स्वयं सीधा-सरल ग्रामीण युवक है। पढ़ने लिखने में चित्त नहीं जमा, तो मां के कहने पर खेती-बाड़ी में दिल लगा लिया। वह भी अपनी भाभी शीलो के दुख से कहीं न कहीं व्यथित रहता है। मां, सरस्वती के कहने पर वह शीलो के साथ-संग को स्वीकार कर लेता है। यद्यपि ऐसा करके उसके जीवन में कहीं न कहीं हा-हाकार ही पैदा हो जाता है। उपन्यास के अंत में उसकी विक्षिप्तता की स्थिति इस बात को सिद्ध करती है।

अपने सीधे सरल स्वभाव के चलते वह समाज द्वारा गर्हित इस रिश्ते को स्वीकार कर लेता है क्योंकि गांव में बछिया प्रथा के सहारे किसी युवती के जीवन को सामान्य बनाया जा सकना संभव है। वह शीलो को बछिया प्रथा के निर्वहन के लिए कहता है, परंतु शीलो के मन-मस्तिष्क में सुमेर के प्रति घृणा भर चुकी है और वह अब कहीं न कहीं सुमेर से बदला लेना चाहती है। इसीलिए वह बछिया प्रथा के निर्वहन से इंकार कर देती है। आगे चलकर एकाधिकार के प्रश्न पर शीलो और सरसुती में भी आपस में टकराव होने लगता है और उन दोनों के टकराव में बालकिशन की स्थिति और भी बुरी हो जाती है। बालकिशन सीधा-सादा युवक है और वह शांतिपूर्ण ढंग से जीवन जीना चाहता है। वह शीलो के प्रेम को भी नकार नहीं सकता और दूसरी तरफ मां के प्रति उसका समर्पण भी कम नहीं होता। ऐसी स्थिति में उसके भीतर का मानसिक उद्वेग उसे व्यथित किए रहता है और इन सारी परिस्थितियों में अंततः उसका जीवन बर्बाद हो जाता है।

इस उपन्यास में समस्याओं को दोहरे स्तर पर देखने की आवश्यकता है। अपनी प्रकृति में शीलो की समस्या एक व्यक्तिगत समस्या है परंतु इसके सामाजिक प्रभाव-दुष्प्रभाव अत्यंत दूरगामी हैं। इस उपन्यास में प्रासंगिक विषय को उपन्यास लेखिका ने जिस तरह से उठाया है, उसमें समस्या को किसी एक सांचे में डालकर देखा जाना संभव नहीं है। इसमें जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों का चित्र खींचा गया है और उन्हें समेकित ढंग से देखने की आवश्यकता भी

है। शीलो और सुमेर के आपसी द्वन्द्व का दुष्प्रभाव सर्वाधिक तो पूरे परिवार पर पड़ता है, परंतु कहीं न कहीं इसकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष छाया गांव तक भी पहुंचती है। शीलो का एकाकीपन भरने का जो प्रयास सरसुती बालकिशन के माध्यम से करती है, वह निश्चित रूप से सराहनीय है परंतु जीवन की जटिलता आगे चलकर बालकिशन के जीवन को ऐसे मोड़ पर ला खड़ा करती है जिसमें वह अपने को ठगा हुआ महसूस करता है। उपन्यास में समस्याओं के ढांचे को उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विश्लेषित करने की आवश्यकता है।

वास्तव में मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में किसी एक समस्या को केंद्र में रखकर विचार-विमर्श नहीं किया है। निश्चित रूप से स्त्री संदर्भों को उन्होंने महत्वपूर्ण ढंग से सामने रखा है और यह एक स्त्री विमर्शात्मक रचना भी है। परंतु उपन्यास के समेकित अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि लेखिका ने ग्रामीण समाज में निरंतर जटिल होते जा रहे जीवन बोध को प्रस्तुत करने में अपनी रुचि दिखाई है। इसीलिए शीलो और सुमेर के प्रसंग के बाद भी यह उपन्यास निरंतर जारी रहता है और इसका अंत बालकिशन की विक्षिप्तता से होता है। यह उपन्यास संपूर्ण जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया अत्यंत सार्थक उपन्यास है।

१.५ 'झूला नट' में चित्रित ग्रामीण समाज

आधुनिक काल में हिंदी साहित्य के उदय के साथ ही ग्रामीण समाज साहित्य के केंद्र में रहा है। आरंभ से ही हिंदी कथा-साहित्य में ग्रामीण जीवन का उसके समस्त विश्वासों-अंधविश्वासों, रूढ़ियों और जीवन की सरलता-जटिलता का चित्रण होता रहा है। इस दृष्टि से मुंशी प्रेमचंद का हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान है। उन्होंने ग्राम जीवन का यथार्थपरक चित्रण अपने कथा साहित्य में किया है। उनकी कहानियां जहां ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालती हैं, वही उपन्यास तत्कालीन समय के चित्र उपस्थित करते हैं। गोदान इस दृष्टि से उनका सर्वाधिक उल्लेखनीय उपन्यास है।

साहित्यकारों की समस्या आरंभ से ही जहां ग्रामीण जीवन की आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के प्रति रही है, वहीं सामाजिक सुप्तावस्था को लेकर भी साहित्यकार जागरूक रहे हैं। भारतीय ग्रामीण परिवेश सदा से ही रूढ़ियों और अंधविश्वासों का शिकार रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपनी सीधी-सरल संवेदना के कारण ग्रामीण समाज आधुनिक प्रवृत्तियों को आसानी से स्वीकार नहीं कर सका है। ग्रामीण समाज अपने पारंपरिक जीवन का अनुसरण करता चला आया है और इसी का परिणाम रहा कि जातिप्रथा, लिंगभेद आदि संबंधी तमाम सामाजिक समस्याएं ग्रामीण जीवन में महत्वपूर्ण ढंग से दिखाई देती रही हैं। जिनके विरुद्ध साहित्यकार युद्ध-उद्घोष करते चले आए हैं।

आज का समय सूचना क्रांति का समय है। मोबाइल और इंटरनेट ने पूरी दुनिया की संचार व्यवस्था को बदलकर रख दिया है। ग्रामीण क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। इंटरनेट और मोबाइल के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की पहुंच आज अत्याधुनिक व्यवस्था तक हो गई है। ग्रामीण समाज भी तकनीकी क्षेत्र से परिचित हो गया है। मोबाइल एवं इंटरनेट के द्वारा वह भी अपने हित की हर तरह की सूचना खंगाल रहा है। वह भी इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से पैसे के आदान-प्रदान की प्रक्रिया को समझ चुका है। अर्थात ग्रामीण समाज आज वैश्विक गतिविधियों से परिचित होने में समर्थ है। परंतु मैत्रेयी पुष्पा ने जब इस उपन्यास की रचना की थी, वह समय ग्रामीण समाज के लिए इतना उन्नत नहीं हो सका था। ऐसे में परंपरा से चली आ रही रूढ़ियों और अंधविश्वासों का प्रभाव अभी भी ग्रामीण समाज पर बना हुआ था। उपन्यास में

मैत्रेयी पुष्पा ने कई स्थलों पर इस तरह के घटनाक्रम का सूत्रपात भी किया है, जैसे सुमेर के द्वारा शीलो को छोड़ दिए जाने के पश्चात शीलो का धार्मिक अंधविश्वासों का सहारा लेकर सुमेर को पुनः प्राप्त करने का प्रयास, सरस्वती द्वारा भी उसे लगातार ऐसे विधि-विधानों के लिए प्रेरित किया जाना आदि।

उत्तर-भारतीय ग्रामीण समाज की संरचना अपनी तरह की विशिष्ट संरचना है। सामाजिक मान-अपमान के प्रश्न पर पूरा समाज गर्हित कार्यों को करने से सहमता है। ग्रामीण समाज में पास-पड़ोस, पंचायत और आसपास के परिवेश को देखकर तथा सामाजिक अवमानना के डर से वे लोग अनुशासन का पालन करते हैं। किसी भी प्रकार के निषिद्ध कार्यों का यदि कोई अनुगमन करता है, तो पास-पड़ोस के लोगों के द्वारा न केवल उसकी आलोचना की जाती है बल्कि उसे रोकने का पूरा प्रयास भी किया जाता है। सरस्वती के पड़ोस की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। बड़ी-बूढ़ियाँ जब इस बात को समझ जाती है कि शीलो एक परित्यक्ता की स्थिति में रह रही है और उन्हें इस बात का संदेह हो जाता है कि कहीं न कहीं बालकिशन और शीलो के बीच कुछ रिश्ता है तो वह सरसुती को टोंकते हुए इस रिश्ते को वैधता प्रदान करने की बात करती हैं। पड़ोस की काकी के द्वारा बछिया करा लेने का सुझाव सरसुती को दिया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास में बुंदेलखंड के ग्रामीण जीवन की संरचना का चित्र अत्यंत सूक्ष्म शैली में प्रस्तुत किया है।

हमारे ग्रामीण समाज में काफी कुछ प्रथाएँ समाज की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मानवीय आधार पर विकसित हुई हैं। जब भी ग्रामीण समाज की बात की जाती है तो पूर्वाग्रहों के कारण हम केवल पिछड़ी सभ्यता के रूप में उनके बारे में चिंतन करते हैं। परंतु ऐसा नहीं है। विश्वासों-अंधविश्वासों से अलग कुछ विकासशील और मानवीय तत्व भी इन समाजों में समय के साथ-साथ विकसित होते रहे हैं। 'झूला नट' उपन्यास में इनका वर्णन भी देखने को मिलता है। बछिया प्रथा ऐसा ही विकसित तत्व है जो ग्रामीण समाज के द्वारा मानवीयता और सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया है। इस प्रथा का महत्वपूर्ण ढंग से चित्रण और वर्णन उपन्यास लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के द्वारा किया गया है। ग्रामीण समाज में वैवाहिक जीवन नष्ट हो जाने के बाद स्त्री के जीवन को पुनः व्यवस्थित करने की कोई प्रथा या परंपरा का उल्लेख पहले के साहित्य में कम ही मिलता रहा है। मैत्रेयी पुष्पा ने बछिया प्रथा के द्वारा दिखाया है कि एक स्त्री जिसका वैवाहिक जीवन यदि नष्ट हो जाता है तो उसके पास विकल्प होता है, अर्थात बछिया प्रथा का निर्वहन करके वह अपने जीवन को पुनः व्यवस्थित कर सकती है। बछिया प्रथा प्रत्यक्ष रूप से कुछ और नहीं बल्कि पुनर्विवाह हेतु सामाजिक अनुमति है। इसके द्वारा स्त्री-पुरुष के रिश्ते को वैधता प्रदान की जाती है।

बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचल में यह प्रथा भले ही उच्चवर्गीय समाज में नहीं है परंतु निम्नवर्गीय समाज के द्वारा इसका पालन किया जाता है। यह आश्चर्यजनक परंतु सुखद है कि ग्रामीण समाज के निम्न वर्ग में इस प्रकार की मानवीय और प्रगतिशील चेतना देखने को मिलती है। प्राचीन भारत में तलाक का तो कोई प्रावधान ही नहीं है परंतु विधवा हो जाने के पश्चात भी कोई विकल्प स्त्रियों के जीवन को संभालने और सुधारने के लिए नहीं था। जिसके लिए कितने-कितने आंदोलन भी आधुनिक काल के आरंभिक चरण में देखने को मिलते हैं। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह हेतु कितना संघर्ष किया था, यह हम सभी जानते हैं। इसके विपरीत बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचल में इस तरह की प्रथा का पाया जाना न केवल उस समाज

के मानवीय और प्रगतिशील पक्ष को दर्शाता है बल्कि इस संदर्भ में ग्रामीण होते हुए भी उसमें आधुनिक चेतना का प्रसार दिखाई देता है।

वस्तुतः 'झूला नट' उपन्यास के केंद्र में बुंदेलखंड के अंचल का ग्रामीण समाज है। मैत्रेयी पुष्पा ने शीलो, सरस्वती, बालकिशन और सुमेर आदि पात्रों के प्रतिनिधित्व में संवेदनशील ढंग से जनजीवन का तो सार्थक चित्रण किया ही है साथ ही, ग्रामीण समाज के विभिन्न सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का भी चित्रण मुख्यकथा के साथ चलते-चलते हो गया है। उपन्यास लेखिका स्वयं इस परिवेश से भलीभांति परिचित रही हैं। उनका बचपन खुद ऐसे ही ग्रामीण वातावरण में बीता है। ऐसे समाज की सभी प्रकार की संवेदनाओं से वे भलीभांति परिचित हैं और इसी का परिणाम यह रहा है कि वे झूलानट उपन्यास में इन सभी का सहज और प्रभावशाली चित्रण कर सकी है। इस उपन्यास में पूरे परिवेश का बेहद प्रामाणिक चित्रण देखने को मिलता है। चाहे बात परिवार के स्तर पर हो, या पूरे गांव के संदर्भ में, कहीं कोई कृत्रिमता या बनावटीपन देखने को नहीं मिलता है।

१.६ सारांश

इस इकाई के अंतर्गत मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखे गए स्त्री-विमर्शात्मक उपन्यास 'झूला नट' का मूल्यांकन कुछ विशिष्ट शीर्षकों की दृष्टि से किया गया है। सबसे पहले तो उपन्यास के कथासार के द्वारा उपन्यास की मुख्य संवेदना को चिन्हित करने का प्रयास किया गया है। इसके अंतर्गत यह देखने की कोशिश की गई है कि उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा ने किन विशिष्ट बातों को इस उपन्यास में उभारा है और इनके प्रति उनके प्रस्तुतीकरण का दृष्टिकोण क्या रहा है। दूसरे स्थान पर उपन्यास में प्रस्तुत की गई समस्याओं को लक्षित करने का प्रयास किया गया है, जिसके अंतर्गत यह देखा गया कि भले ही यह एक स्त्री विमर्शात्मक उपन्यास है, परंतु इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा द्वारा बुंदेलखंड की ग्रामीण संस्कृति और उसमें जनजीवन की विशिष्टता को देखने का प्रयास किया गया है। इस समाज में जहां स्त्री जीवन विभिन्न असंगतियों का शिकार है, वहीं इन असंगतियों के कारण होने वाले विभिन्न दुष्प्रभावों की भी चर्चा उपन्यास के अंतर्गत की गई है। तीसरे स्थान पर बुंदेलखंड के ग्रामीण समाज की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस शीर्षक के अंतर्गत समाज विशेष में मिलने वाली सभी सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं को विशेष दृष्टि से देखने का काम किया गया है।

१.७ बहुविकल्पीय प्रश्न

१. शीलो किस प्रथा का निर्वहन करने से इनकार कर देती है ?

(क) मचिया (ख) गछिया

(ग) पछिया (घ) बछिया

२. शीलो के पति का क्या नाम है ?

(क) सुमिरन (ख) रघु

(ग) बालकिशन (घ) सुमेर

३. सरसुती के कितने बेटे हैं ?

(क) दो (ख) चार

(ग) एक (घ) तीन

४. सुमेर किस विभाग में नौकरी करता है ?

(क) नगर पालिका (ख) चिकित्सा

(ग) शिक्षा (घ) पुलिस

५. बालकिशन के भाई का क्या नाम है ?

(क) सुमिरन (ख) जगत

(ग) रघु (घ) सुमेर

१.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. ज़मीन-जायदाद के प्रश्न पर शीलो सुमेर से क्या कहती है ?

२. सुमेर शीलो से रिश्ता क्यों तोड़ देता है ?

३. आरम्भ में सरसुती शीलो के प्रति किस तरह का व्यवहार करती है ?

४. वर्तमान ग्रामीण समाज मे अंधविश्वासों की स्थिति पर अपने विचार लिखिए ?

१.९ बोध प्रश्न

१. उपन्यास 'झूला नट' के आधार पर शीलो के जीवन की विसंगतियों का चित्रण कीजिए ?

२. सरस्वती और शीलो के आपसी अंतर्द्वंद और संघर्ष का विश्लेषण कीजिए ?

३. 'झूला नट' उपन्यास में किन समस्याओं का चित्रण किया गया है ?

४. 'झूला नट' उपन्यास में चित्रित ग्रामीण समाज की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ?

१.१० अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

१. झूला नट - मैत्रेयी पुष्पा

२. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ - रेखा कस्तवार

३ . स्वाधीनता का स्त्री पक्ष - अनामिका

४. महिला सशक्तिकरण : दशा और दिशा - योगेंद्र शर्मा

५. परिधि पर स्त्री - मृणाल पाण्डेय

❄❄❄❄❄❄❄

२

'झूला नट' उपन्यास में पात्र-योजना

इकाई की रूपरेखा

२.० इकाई का उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ 'झूला नट' उपन्यास में पात्र-योजना

- २.२.१ शीलो
- २.२.२ सुमेर
- २.२.३ सरसुती
- २.२.४ बालकिशन
- २.२.५ अन्य पात्र

२.३ सारांश

२.४ बहुविकल्पीय प्रश्न

२.५ लघुत्तरीय प्रश्न

२.६ बोध प्रश्न

२.७ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

२.० इकाई का उद्देश्य

'झूला नट' उपन्यास के अध्ययन की कड़ी में इस इकाई के अंतर्गत उपन्यास के प्रमुख चरित्रों का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक गद्य विधाओं में उपन्यास, कहानी, नाटक जैसी विधाओं में चरित्रों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। उपन्यास विधा के अंतर्गत मनुष्य के संपूर्ण जीवन का सांगोपांग चित्रण किया जाता है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि जीवन में विभिन्न तरह की संवेदनाओं और भूमिकाओं को चरित्रों के माध्यम से प्रामाणिक ढंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जाए। किसी कृति की यथार्थपरकता को सिद्ध करने में इसका अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। उपन्यास जैसी बृहत कलेवर की विधाओं में चरित्र चित्रण की सफलता और प्रामाणिकता का आधार यह है कि आधुनिक साहित्य जीवन को यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखता है। ऐसे में उसके चरित्र इस प्रकार के होने चाहिए कि वे जीवन की प्रामाणिक अभिव्यक्ति करने में समर्थ हों, वे अपने परिवेश से गहरा ताल्लुक रखते हों और उनके माध्यम से समस्त परिवेश सहज एवं स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्ति पाता हो। वे पात्र ऐसे दिखने चाहिए जैसे वह हमारे बीच के जनजीवन से जुड़े हुए हैं। उनके द्वारा उपन्यास जैसी विधाओं में वर्णित समस्याएं प्रामाणिक ढंग से आकार पाती हों और उनके माध्यम से पाठकों को निर्णयकारी विकल्प भी मिलते हों। 'झूला नट' उपन्यास एक लघु उपन्यास है परंतु

उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा ने इस कृति में चरित्रों को महत्वपूर्ण ढंग से विकसित किया है। इस इकाई के अंतर्गत उपन्यास का विश्लेषण चरित्रों की दृष्टि से किया गया है।

२.१ प्रस्तावना

'झूला नट' उपन्यास की रचना सन १९९९ में मैत्रेयी पुष्पा के द्वारा की गई थी। इस उपन्यास में लेखिका ने बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचल की कथा प्रामाणिक ढंग से कही है। उपन्यास बेहद रोचक है। इसकी कसावट बहुत अच्छी है। उपन्यास लेखिका ने जिस ढंग से विषय को प्रस्तुत किया है, वह कहीं भी भटकाव का शिकार नहीं होता। उन्होंने जिस ढंग से अपनी कृति में पात्रों का विकास किया है, वे पात्र उस समस्त परिवेश और जन-जीवन को सार्थक ढंग से अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं। इस उपन्यास के मुख्य पात्रों में शीलो, सरसुती, बालकिशन, सुमेर आदि का नाम लिया जा सकता है। शीलो के चरित्र का विकास लेखिका ने इतने मनोयोगपूर्ण ढंग से किया है, कि वह एक कालजयी पात्र के रूप में परिवर्तित हो गया है। इस इकाई में आगे उपन्यास के सभी चरित्रों के विकास का विश्लेषण देखने को मिलेगा। किसी चरित्र का विश्लेषण करते हुए कृति में उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति, उसके बौद्धिक और चारित्रिक गुणों की अभिव्यक्ति आदि को महत्वपूर्ण ढंग से विश्लेषित किया जाता है। यह देखने का प्रयास किया जाता है कि वे अपने सकारात्मक या नकारात्मक रूप में किस ढंग से अपने परिवेश की सहज अभिव्यक्ति करने में समर्थ हो सके हैं। जिस चरित्र के द्वारा यह कार्य जितनी सफलता से हो पाता है, वह उतना ही विकसित और सफल चरित्र माना जाता है।

२.२ 'झूला नट' उपन्यास में पात्र-योजना

'झूला नट' एक लघु आकार की औपन्यासिक रचना है परंतु यह कृति अपने लघु आकार होने के बावजूद एक समूचे परिवेश की व्यापक संवेदना का वहन करती है, जिसे अभिव्यक्त करने में रचना के पात्रों का महत्वपूर्ण योगदान है। उपन्यास लेखिका ने उपन्यास में जिस ढंग से पात्र योजना विकसित की है, वह उपन्यास के गठन को अत्यंत सशक्त बनाती है। अत्यंत संतुलित ढंग से उन्होंने पात्रों को इस रचना में विकसित किया है। किसी भी पात्र को हटाकर इस रचना को न्यायपरक और तर्कसंगत नहीं बनाया जा सकता। इस रचना का मूल्यांकन करते हुए यह स्पष्ट रूप से हमें पता चलता है कि रचना में सभी पात्र अत्यंत तर्कसंगत ढंग से विकसित किए गए हैं। किसी एक को भी यदि हटाने अथवा बढ़ाने का प्रयास किया जाए तो निश्चित रूप से रचना विकृत ही होगी। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास लेखिका ने अत्यंत सावधानीपूर्वक रचना की संवेदना का वहन करने वाले पात्रों का विकास किया है। निश्चित रूप से शीलो इस रचना की सबसे महत्वपूर्ण और प्रासंगिक पात्र है। लेखिका ने शीलो के चरित्र के विकास में मन-मस्तिष्क से पूरा उद्यम किया है। शीलो के अतिरिक्त सरसुती, बालकिशन, सुमेर आदि मुख्य पात्रों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त रघु, सुमिरन, रघु के पिता, काकी आदि गौण पात्र भी हैं, जिन्होंने उपन्यास की संवेदना को आकार देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भले ही ऐसे पात्र स्थान की दृष्टि से कम स्थलों पर ही दिखाई देते हैं परंतु उपन्यास की मुख्य संवेदना को विकसित करने में इनके महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता। इस तरह जहां शीलो, सरसुती, बालकिशन और सुमेर इस उपन्यास के मुख्य पात्रों के रूप में दिखाई देते हैं, वहीं रघु, रघु के पिता, सुमिरन, काकी आदि पात्र गौण पात्र के रूप में रखे जा सकते हैं।

२.२.१ शीलो

'झूला नट' उपन्यास की सबसे मुख्य पात्र शीलो ही है। शीलो को केंद्र में रखकर ही समस्त औपन्यासिक क्रिया-व्यापार का आयोजन उपन्यास में लेखिका के द्वारा किया गया है। शीलो के चरित्र का विकास लेखिका ने बड़ी सूझ-बूझ से किया है। आरंभ में एक सीधी-सादी किशोर युवती शीलो, परिस्थितियों के सामने आने पर धीरे-धीरे कैसे समझदार और व्यवहारिक युवती में तब्दील हो जाती है, यही उसके चरित्र के विकास की सहजता है। उपन्यास का आरंभ शीलो के जीवन की असामान्य स्थितियों से होता है और फिर बालकिशन के पूर्व स्मृति संबंधी वर्णन उसे आगे बढ़ाने का काम करते हैं। लेखिका ने उपन्यास की कथावस्तु को स्पष्ट करने के साथ ही शीलो के चरित्र को भी विकसित किया है।

शीलो का विवाह सुमेर के साथ होता है और शीलो अपनी ससुराल आती है। ससुराल में आने के साथ ही शीलो के जीवन में नियति कुछ अजीब सा खेल खेलना शुरू कर देती है। ग्रामीण समाज में शारीरिक भंगिमाओं और संरचना की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता है। इन सभी से शकुन-अपशकुन, शुभता-अशुभता को जोड़कर देखा जाता है। शीलो के एक हाथ में पांच के स्थान पर छः उंगलियां हैं। यह बात पता चलते ही अचानक कानाफूसी शुरू हो जाती है। मुंह दिखाई का अवसर है और घर में भीड़ लगी हुई है। बालकिशन के मुंह से अचानक यह बात निकल जाती है और फिर भीड़ भरे घर में खासा तमाशा बन जाता है... "आंगन में बैठी औरतों ने ढोलक, मंजीरा, घुंघरू एक ओर फेंके। बीसियों जोड़ी आंखें भाभी के सीधे हाथ से जा चिपकीं। उनकी हमउम्र लड़कियों ने धावा बोल दिया। वे टटोल-टटोलकर उंगली को परख रही थीं। बहू थी कि उस खोट को बदनुमा दाग समझकर किसी तरह छुपा लेना चाहती थी, मगर वह लटकती हुई चुगलखोर उंगली..... आखिरकार लड़कियां जीत गईं। जिस बहू को अपने नाच-गाने दिखा-सुनाकर रिझाने आई थीं, खुश करके इस गांव में मिलाने आई थीं, वे ही अब उसका तमाशा देख रही थीं, हंस रही थीं, चिल्ला रही थीं। पब्लिक के माल की तरह उंगली को खींच-तान रही थीं।" शीलो उस समय कोई प्रतिक्रिया न देते हुए सहजता से इस बात का सामना कर लेती है। यहीं से उपन्यासकार उसके जीवन की असंगतियों का संकेत देना आरंभ कर देती हैं। यह तो अभी शुरूआत थी परंतु असली समस्या तो उसके जीवन में तब शुरू होती है, जब उसका पति सुमेर आरंभ से ही उसे नहीं अपनाता और उसके रूप-रंग के कारण उसे छोड़कर अपनी नौकरी में वापस शहर चला जाता है। जहां कुछ समय के बाद वह एक शहरी युवती से विवाह कर लेता है। विवाहित शीलो इन सारे घटनाक्रमों से अनजान होती है। उसे लगता है कि शायद इसी वजह से सुमेर उससे दूर है, शायद यह देवी-देवताओं की माया है और उन्हीं को प्रसन्न करके सुमेर को वापस पाया जा सकता है। चंपादास बैद ने जितने भी उपचार बताए, सब किए "इसके बाद व्रत-उपवासों का सिलसिला। सोलह सोमवार। संतोषी माता के शुक्रवार। केला पूजन के बृहस्पतिवार। शनि ग्रह शांति के शनिवार। भाभी सूख-सूख कर कांटा होती जा रही हैं। उनका रंग बेरौनक हो गया। चेहरा लंबोतरा। सुंदर दांत बाहर निकल आए।" सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि इसके बाद "शीलो भाभी की लगन सारे व्रतों को पार करती हुई सती-कथाओं में प्रवेश कर गई। कथाएं बालकिशन सुनाता - अनुसुइया, लोपामुद्रा, मदालसा, सावित्री, दमयंती..." परंतु उसका कोई भी सकारात्मक परिणाम देखने को नहीं मिला। शीलो के जीवन में आयी इस विसंगति के लिए उसके साथ सरसुती भी अपराध बोध महसूस करती है। शीलो से वह सहानुभूति भी रखती है। तभी तो उसे लगता है, "बेटी, पढ़ा-लिखा लड़का.... कौन से बैरी ने घात धरा दी। मोरे महादेव बुद्धि फेरेंगे तो सही। आज नहीं,

तो कल। सबर का फल मीठा होता है। सुख नहीं रहा, तो दुख भी नहीं रहेगा।" सुमेर की अनुपस्थिति में शीलो को बिखरने से सरस्वती और बालकिशन दोनों की सहानुभूति ने ही बचाया परंतु बरस-बरस भर बाद लौटकर आने वाले सुमेर से धीरे-धीरे शीलो की सारी उम्मीदें खत्म हो गईं। वह अनपढ़ थी, गंवार थी परंतु आदमी का मन पढ़ना जानती थी। वह समझ गई की सुमेर का सुख उसके भाग्य में नहीं है। लेखिका ने इन सभी स्थलों पर शीलो के चरित्र का अत्यंत सहज और स्वाभाविक वर्णन किया है। एक नई विवाहिता बहू जिस ढंग से संकोच में रहती है, शीलो भी अपने मन की बात किसी से कह नहीं सकती। यह अलग बात है कि सुमेर न सही परंतु बालकिशन और सरसुती के रूप में उसकी पीड़ा को जानने और समझने वाले सास और देवर तो थे ही, "वह कैसी रात थी। पलंग पर एक स्त्री घिसटती रही हो जैसे। अम्मा के पास धीरज देने वाली बात खत्म हो गई। पूरी रात जागरण करने के बाद भी वह भाभी की बाबत कोई हल नहीं निकाल पाया। भोर का तारा खिड़की से चमकता हुआ दिखाई दिया.... लेकिन उसका दिमाग रुई की तरह धुना हुआ तार-तार.. जाड़ा-गरमी-बरसात गुजरती रही। शीलो भाभी बेअसर शिला की तरह पड़ी रही। अम्मा पिघल-पिघलकर रांगे की तरह निबटी जा रही थी। घर दिनोंदिन भयानक रूप में बदल रहा था।" शीलो के जीवन में एक लंबे समय तक एकाकीपन की यह स्थिति बनी रही और उसके साथ सरसुती भी घुटती रही, "कौन सा पुरखा सराप गया कि घर की बंस-बेल में कल्ला फूटते दिखाई नहीं देते। बेटा-बहू का संग होते-होते रह जाता है। बांझ देहरी.... तेरे पिता को न सुरग मिले, न नरक। निरबंस आदमी अधबीच लटका रहता है।" यही कारण था कि उसने बालकिशन को शीलो के संग-साथ ही अनुमति दे दी।

बालकिशन को शीलो को समर्पित करने से पहले सरस्वती ने क्या-क्या जतन नहीं किए। भले समाज में जो ठीक नहीं समझा जाता है, उसे वह भी सिखाया पर उसका कोई जतन काम नहीं आया। उसे लगता था, शीलो ही सुमेर को रिझा पाने में असफल है, तो उसे समझाते हुए कहती है, "मूरख, अपने आदमी को हाथ में करने की खातिर जनी को क्या-क्या जतन नहीं करने पड़ते ? सौ तरह के गुन-ढंग..... तरह तरह से रिझाती है। धनी के आगे बेडिनी का रूप धरना पड़ता है। शीलो, मेरे जाने तू सेज पर भी गऊ माता..... अरी सिर्रीन, जनियों के चलते सतयुग-कलयुग सब बरोबर। सतियों के आदमी बेड़िनियों ने छीने है सदा। बदल जाएँ जुग, यह बात नहीं बदलने वाली। बेटी, सती का रूप तो ऊपर का ढोंग है, बस।" ससुराल से उपेक्षित होकर भी ससुराल में बने रहना शीलो की विवशता भी थी, कारण यह था कि मायके में उसकी अपनी भौजियों के चलते उसका जीवन नर्क था। ऐसे में परित्यक्ता का अपमान सहते हुए भी ससुराल में बने रहना उसे कहीं ज्यादा ठीक लगा, "अपने चरणों से अलग न करना, अम्मा। इस घर में पड़ी रहने दो, मैं खेत की घास.... बुरी घड़ी में जन्मी, तुम्हारी चाकरनी बनकर रहूंगी। बालू की दुल्हन की टहल करूंगी। उनके बच्चे पालूंगी। रूखी-सूखी खाकर घड़ी काट लूंगी। मायके में क्या सवाल-जवाब नहीं होंगे ? दिन-रात की सूली....."

स्थितियों के इस घात - प्रतिघात से शीलो ने जल्द ही अपने को उबार लिया। इसमें सरसुती और बालकिशन की सहानुभूति भी काफी काम आई। बालकिशन के साथ जीवन में थोड़ी स्थिरता आने पर शीलो अपने मान-अपमान के प्रति सचेत हुई। उसके भीतर निश्चित रूप से गांव-समाज और सुमेर के प्रति विद्रोह भर गया। बालकिशन और उसके रिश्ते पर गांव-समाज के बात करने को वह जज्ब नहीं कर पाती और उसका विद्रोही तेवर देखने को मिलता है। हमारे समाज में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अलग-अलग मूल्य बन गए हैं। भले ही कितने भी

आदर्श कहे और बखाने जाएं परंतु पुरुषसत्तात्मक समाज, सामाजिक नियमों को अपने मन मुताबिक अपनी सुविधा के अनुसार मोड़ ही लेता है। ऐसे सामाजिक नियमों के प्रति भी उसके मन में विद्रोह पैदा होता है। इसी का परिणाम था कि जब बछिया के निर्वहन की बात सामने आती है तो वह सरसुती से कहती है कि "अम्मा जी, रीत-रसम लिखा हुआ रुक्का तो नहीं होती।" उसके मन में और भी बहुत कुछ उमड़-घुमड़ रहा था। सत्ते की अम्मा, काकी आदि के द्वारा बार-बार बछिया के लिए टोके जाने पर भी वह अपने विद्रोह के कारण ही तैयार नहीं होती। स्त्री और पुरुष में परंपराओं के अंतर के कारण ही वह काकी से कहती है, "ऐं काकी जी, पुलिसिया बेटा की बछिया की पांत खा ली ? पूछा नहीं कि बरकट्टो (बाल कटी) व्याही है या रखैल ? बेटों के चलते रसम-रीत भूलकर बहुओं की पीठों के लिए कोड़े लिए फिरती हो तुम बूढी जनी।"

उपन्यास में शीलो का चरित्र यहीं से बदलने लगता है। एक सीधी-सादी बहू से एक व्यवहारिक स्त्री में तब्दील होने में उसे ज्यादा समय नहीं लगता। यह परिवर्तन आज के समय का बड़ा परिवर्तन है मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी स्त्री-विमर्शात्मक कृतियों में ऐसे परिवर्तनों को सफलतापूर्वक लक्षित किया है। आज की स्त्री सब कुछ सहते हुए, आत्मघात कर लेने वाली स्त्री नहीं है बल्कि वह अब अपने वजूद को न केवल बचाने वाली बल्कि समाज की पुरुषसत्तात्मक मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करने वाली स्त्री भी है। भले ही शीलो पढ़ी-लिखी नहीं थी, भले ही उसे नियम-कानून की जानकारी नहीं थी, पर मानवीयता के प्रति सामान्य बुद्धि उसके भीतर अवश्य थी और वह जब एक बार परिस्थितियों को अपनी तरफ करना शुरू करती है तो अपनी इसी सहज बुद्धि से निर्णय भी लेती है। सुमेर के प्रति उसके हृदय में जो घृणा का भाव है, उसी के कारण वह सुमेर और अपने रिश्ते को सामान्य नहीं होने देती। बछिया का निर्वहन भी वह केवल इसलिए नहीं करती ताकि जमीन जायदाद पर वह सुमेर के साथ बराबर की हकदार बनी रहे। नियति उसे यह अवसर भी जल्दी ही देती है और वह सुमेर से अपने अपमान का बदला ले पाती है। इस स्थल पर शीला के व्यक्तित्व की दृढ़ता स्पष्ट होती है, उसकी निडरता प्रकट होती है। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सुमेर सरकारी कर्मचारी है, पुलिस विभाग में है, अपने साथ हुए अन्याय के लिए वह उसके सामने खड़ी हो जाती है।

एक तरह से जब यह मान लिया जाता है कि शीलो और बालकिशन का रिश्ता स्थायी हो चुका है, तब सही अवसर समझकर सुमेर गांव आता है। सरसुती को यह लगता है कि परिवार की माया में बार-बार आता है। मां होने के नाते वह बेटे के प्रति दुर्भावना मन में ला ही नहीं पाती, परंतु सुमेर जब इस बार आता है तो सरसुती से अपनी जायदाद के बंटवारे की बात कहता है। सरसुती को यह उम्मीद नहीं थी और सुमेर शहर के खर्चों का रोना रोते हुए उसे किसी तरह तैयार कर लेता है। शीलो के सामने भी घड़ियाली आंसू रोता है, इस अपेक्षा में कि शीलो उसकी इस योजना में किसी तरह की रुकावट न बनकर खड़ी हो जाए। वह शीलो से कहता है, "असल बात ये है शीलो कि शहर में रहना-बसना हमारी मजबूरी हो गया है। मजबूरी के चलते साधन पास में नहीं है, दिक्कत तो यही है। गृहस्थी को सिर पर लादकर तो घूमा नहीं जा सकता। रहवास भी चाहिए ही। ...... शीलो मैंने उससे (नई पत्नी से) कहा था कि शीलो जैसी औरत धरती पर बहुत नहीं जनमती। रग-रग में त्याग, दया भरे वह बिरली ही है। दिल बहुत बड़ा।" पहले तो सुमेर इस तरह की चालाकी से शीलो को अपने पक्ष में करने का प्रयास करता है और फिर आगे कहता है कि "तुमसे सलाह करना चाहता हूँ, क्योंकि तुम ही इस घर में समझदार हो। अम्मा का क्या, जैसे समझा दो, समझ लेती हैं। बालकिशन बेवकूफ है और

बेवकूफ आदमी अक्सर मुसीबत बन जाता है। मैं जानता हूँ, तुम उसे काबू में ले सकती हो। वैसे, बात कुछ भी नहीं, अपने हिस्से की जमीन का सवाल है, उसे आनाकानी क्यों होगी ? बात वही है न, गंवार आदमी हल जोतता है पराई जमीन में और सोचता है कि वह उसी की है। दूसरे की जोत से अधिक प्रेम करने लगता है किसान। बालू किसानों से अलग तो नहीं।"

परंतु शीलो के इरादे तो कुछ और थे। वह अपने साथ हुए अन्याय का प्रतिकार चाहती थी। विवाह होना और उसके बाद उसे न निभाना, यह सुमेर की गलती थी। विवाह के टूटने में शीलो की कोई गलती नहीं थी। रूप-रंग शीलो के हाथ की चीज नहीं थी, वह कुदरती था। शीलो के स्वाभिमान को जिस ढंग से सुमेर ने आहत किया था, शीलो ने भी अवसर पाकर सुमेर को उसी की भाषा में प्रत्युत्तर भी दिया। पहले तो उसने, उसके इस भ्रम को दूर किया कि उसके और बालकिशन के रिश्ते की वास्तविकता क्या है, "काय के पति-पतनी, बाबूजी ? वह अबोध मन का अच्छा है, सो बस..... तुम्हारी ब्याहता होने के बाद भी..... पर छोड़ो उस बात को। बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए, जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी दूसरी औरत। बिनब्याही, मनमर्जी की। सच मानो, बालकिशन भी इस से ज्यादा कुछ नहीं।" सुमेर को शीलो से बिल्कुल भी ऐसी उम्मीद नहीं थी। उसे लगा था कि वह जैसा चाहता है, वैसा कर लेगा। परंतु शीलो ने तो पूरी बाजी ही पलट दी थी। जायदाद के मसले पर भी वह कहती है, "जमीन-जायदाद की बात यह रहने दो कि यह मामला तो हम भी हमारे - तुम्हारे बीच ही है। बाबूजी, बालकिशन सिरफ अपने हिस्से का मालिक है। वह कौन होता है हमारे-तुम्हारे हिस्से में टांग अड़ाने वाला ? बिल्कुल ऐसे ही, जैसे तुम्हारी वह बिचारी कोई नहीं होती हमारे - तुम्हारे बीच। यह जर-जोरू के मामले बड़े बेंड़े (कठिन) हैं बाबूजी।" इसके बाद सुमेर पर तंज करते हुए वह कहती है, "तुम पढ़े-लिखे हाकिम एलकार सब समझ गए होंगे, इतना तो हमें भरोसा है।"

शीलो में अब तक अकेले ही अपनी लड़ाई लड़ने का साहस आ चुका था। आरंभ में उसकी स्थितियों को देखकर बालकिशन और सरसुती ने उसे हर तरह से राहत देने का काम किया। सरसुती का हृदय, एक मां का हृदय था। वह किसी भी सूरत में अपने बेटे को परास्त होते नहीं देख सकती थी। ऐसे ही जब शीलो सुमेर की इच्छाओं पर पानी फेर देती है, तो सरसुती भी उसके विरुद्ध हो जाती है। सरसुती के सामने बार-बार गांव में इज्जत और सम्मान का कारण सुमेर बना रहता है। वह सुमेर से कहती है, "सुमेर, तू यह सोच कि मैंने अपना अखेल नादान बेटा काए को बांधा था इस हथिनी के पावों में ? बस, इसी कारन कि तेरे हिस्से की धरती न चर जाए। पर बेटा, इस हथिनी की देह में चालाक लुखरिया का मगज है, यह पता नहीं था। मेरी बुद्धि पर पथरा गिरा दिए महादेव स्वामी ने, नहीं समझी कि बछिया के नाम पर बिदकती क्यों है ? मैंने तो दुखिया समझकर इस पर भरोसा कर लिया। तब तो दुसमनि रो-रोकर बैन कर रही थी - अम्माजी सात भाँवरें, आंगिन साच्छी और बारातियों के आगे वचन भरकर संगी मुझे त्याग गया, तो अछिया बछिया का क्या विश्वास करूं ?...... हाय, मैं सिर्रिन नहीं जानती थी कि सांपिन को दूध पिलाकर विष भर रही हूं बेटों की जिंदगानी में.... एक दिन यही डस लेगी।" परंतु इस तरह की बातों से शीलो पर कोई फर्क नहीं पड़ा। उसमें इतना आत्मविश्वास आ चुका था कि वह जानती थी कि क्या सही और क्या गलत कर रही है और उसे इसमें कुछ भी गलत नहीं जान पड़ रहा था, जो वह सुमेर के साथ कर रही थी। आखिर उसकी जिंदगी की बर्बादी का कारण सुमेर ही था। सरस्वती के विलाप पर वह कहती है, "बड़े बेटे को खेती का हिस्सा। हमसे बात करें, तो समझा नहीं कि तुम्हारे बेटे ने भाँवरे डालकर हमें जिंदगी से

बेदखल कर दिया, तब क्या कोरट-कचैरी भी उसके अमले में है कि कानून से खारिज कर दे? हमने यह जानकारी जुटा ली तो अम्मा अदावत पर उतर आईं।"

वास्तव में शीलो का चरित्र उपन्यास में जिस तरह से वर्णित है या जिस तरह से घटनाक्रमों से निकलकर सामने आता है, उसके चरित्र में एक दुविधा बराबर बनी रहती है। वह एक तरफ तो अपने मान-अपमान और प्रतिकार को लेकर आक्रोश में रहती है, वहीं दूसरी तरफ बालकिशन को लेकर भी उसमें एक अधिकार भावना बराबर देखने को मिलती है। बालकिशन से रिश्ता जोड़ने के बाद वह विवाहित न होने के बावजूद अपने उस रिश्ते को पूरी आस्था से निभाती दिखाई देती है। बालकिशन जो सुमेर और सरसुती दोनों की ही नजरों में सिर्री और बेवकूफ है, उसी बालकिशन को शीलो व्यावहारिकता सिखाने का काम करती है। वह उसे पहनने-ओढ़ने के तौर-तरीके और अन्य चीजों को लेकर सचेत करती रहती है। खेती-बाड़ी को लेकर भी वह लगातार बालकिशन को सहयोग देती है। इधर-उधर से जानकारी लेकर वह खेती के तरीके भी बदलती है। एक बार जब वह सुमेर से अपने प्रतिकार को आमने सामने स्पष्ट कर देती है तो धीरे-धीरे बालकिशन पर अधिकार होने के नाते वह, परिवार की बागडोर भी अपने हाथ में ले लेती है। सरसुती से इस पर भी उसका संघर्ष उपन्यास में दिखाया गया है। यहां भी शीलो के व्यक्तित्व की दृढ़ता देखने को मिलती है। सरस्वती से ऐसे ही विवाद पर वह कहती है, "अम्मा जी, गुस्सा पी जाओ। बूढ़े जमाने उखड़ेंगे नहीं तो नया बखत आएगा कैसे ? अपने इस रेंगटा को रेत में नहीं, सड़क पर चलना सीखने दो। शुरू में पांव छिलेंगे जरूर, पर मोटर की तरह दौड़ना आ जाएगा।"

'झूला नट' उपन्यास में शीलो का चरित्र जिस ढंग से विकसित किया गया है, वह हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास में एक नए युग का संकेत है। शीलो से पहले हिंदी कथा-साहित्य में जो स्त्री पात्र महत्वपूर्ण ढंग से विकसित हुए हैं, वे अपनी कमजोरियों और विवशताओं के साथ ही चित्रित हुए हैं। अपवादस्वरूप कुछ साहित्यकारों ने इस परंपरा से अलग हटकर स्त्रियों के दुस्साहस को दिखाने का प्रयास किया था। स्त्रियां अपनी अपने जीवन को अपनी नियति और भाग्य मानकर जीती थीं। अत्यंत हृदयद्रावक ढंग से कथाकारों ने उनकी सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है। परंतु 'झूला नट' उपन्यास की शीलो सही अर्थों में नए युग की नारी शक्ति के उभार को अभिव्यक्त करती है। वह अपने जीवन की विपरीत परिस्थितियों को न तो अपनी नियति मानती है और न भाग्य समझकर चुपचाप बैठती है, बल्कि वह अपनी सहज ग्रामीण बुद्धि के अनुसार उन स्थितियों को अपने हक में करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहती है। सुमेर के द्वारा उसका जो अपमान किया गया था, उसे वह कभी नहीं भूलती और अवसर पाते ही वह सुमेर को यह जता देती है कि जिसे वह कमजोर और परवश समझे बैठा था, वह भी बहुत कुछ कर सकती है। अपने जीवन के लिए वह भी फैसले ले सकती है। समाज को दरकिनार करके वह भी सही और गलत का चयन कर सकती है। उपन्यास में शीलो का चरित्र अत्यंत यथार्थवादी चरित्र है। लेखिका ने किसी भी तरह के आदर्श को दिखाने या थोपने का प्रयास नहीं किया है। एक सामान्य पात्र वास्तविक अर्थों में अपनी परिस्थितियों में जिस ढंग से दिखाई दे सकता है या उन परिस्थितियों में स्वाभाविक ढंग से वह जो निर्णय कर सकता है, वही शीलो के पात्र के द्वारा दिखाया गया है। शीलो का चरित्र हिंदी कथा-साहित्य के अत्यंत सशक्त और अमर चरित्रों में से एक है। वह बदलते युग-संदर्भों की यथार्थ अभिव्यक्ति है।

२.२.२ सरसुती

सरसुती भी 'झूला नट' उपन्यास की अत्यंत महत्वपूर्ण पात्र है। सरसुती विधवा है, उसके पति की मृत्यु हो चुकी है। वह परिवार में एक तरह से मुखिया की भूमिका में है, जिसने पति की मृत्यु के बाद परिवार को संभाला है। सुमेर और बालकिशन की मां, सरसुती पूरे उपन्यास में विकट विरोधाभासों से घिरी दिखाई देती है। वह एक साथ ही परंपरा और परंपरा में बदलाव की समर्थक लगती है। पुलिस विभाग में सुमेर की नौकरी लग जाने के बाद उसे परिवार संभलता हुआ दिखाई देता है और सुमेर के रूप में वह घर का नया मुखिया भी देखती है। परंतु सुमेर की एक गलती के चलते उसके जीवन में समस्याएं बढ़ जाती हैं। सुमेर अपनी नव-विवाहता पत्नी शीलो के रंग-रूप के कारण उसे पत्नी के रूप में नहीं स्वीकारता और यहीं से परिवार का सामंजस्य और तालमेल बिगड़ना शुरू हो जाता है। सरसुती और उसके छोटे बेटे बालकिशन की सहानुभूति शीलो के साथ है। सरसुती चाहती है कि शीलो और सुमेर का वैवाहिक जीवन सामान्य हो जाए पर अंततः वह नहीं होता और इसी एक दुर्घटना के चलते पूरे उपन्यास में सरसुती वैयक्तिक और सामाजिक मान-अपमान का शिकार होती रहती है और उसका जीवन संघर्षमय बना रहता है। इसी एक दुर्घटना के कारण वह बालकिशन और शीलो के रिश्ते को स्वीकार कर लेती है, जिसके कारण न केवल उसके जीवन में बल्कि बालकिशन के लिए भी समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।

वह अपने बेटों से अत्यधिक मोह रखती है परंतु साथ ही अपनी बहू शीलो के प्रति भी उसके हृदय में सहानुभूति है। एक स्त्री होने के नाते वह स्त्री पीड़ा को भलीभांति जानती है। सुमेर और शीलो का विवाह उसके लिए अत्यंत खुशी का कारण है, क्योंकि उनका विवाह मृत्यु से पहले सुमेर के पिता ने ही तय किया था। बड़ों के कहे को निभाते हुए सरसुती ने खुशी-खुशी इस विवाह को संपन्न कराया। सुमेर उसका बड़ा बेटा है और ग्रामीण समाज में बड़े बेटे का दर्जा घर के मुखिया की तरह होता है। सुमेर घर का बड़ा बेटा तो है ही साथ ही वह पुलिस महकमे में नौकरी भी करता है और इसीलिए वह पूरे गांव में घर की इज्जत को बढ़ाने वाला है। इस नाते सरसुती भी उसे परिवार में मुखिया सरीखा महत्व देती है, "रघु और रघुआ का बाप सुमेर के पीठ पीछे बमकते हैं; आने दो आमने-सामने पर, ऐसे बात करेंगे, जैसे सुमेर उनका हाकिम हो। इलम-आसन पाए आदमी का कौन गुलाम नहीं हो जाता ? पूरा गांव इज्जत करता है।" वह बालकिशन को भी सुमेर के प्रति इसी दर्जे के अनुसार समझाती-बुझाती रहती है, "तेरे पिता के ठौर है तेरा भइया। बेटा, इस घर का मर्द वही है। पुलिस में है, तो घर की इज्जत...." सरसुती के चरित्र के माध्यम से उपन्यास लेखिका ने सचमुच घर की मर्यादा की चिंता करने वाली एक ग्रामीण वृद्धा का सहज चित्रण किया है, जिसके लिए अपना घर और इज्जत सर्वोपरि है। पर अपनी संतानों के चलते उसे कई विरोधाभासों से गुजरना पड़ता है।

एक तरफ सुमेर के द्वारा किया गया दूसरा विवाह उसके लिए बहुत सोचनीय हो जाता है। इस संबंध में अपनी संतान होते हुए भी सुमेर के प्रति उसके मन में रोष है और वहीं शीलो के प्रति उसके मन में सहानुभूति है। शीलो से सहानुभूति प्रकट करते हुए सरस्वती कहती है, "बेटी, पढ़ा-लिखा लड़का..... कौन से बैरी ने घात धरा दी। मोरे महादेव बुद्धि फिरेंगे तो सही। आज नहीं, तो कल। सबर का फल मीठा होता है। सुख नहीं रहा, तो दुख भी नहीं रहेगा।" अपने ग्रामीण सरल स्वभाव के चलते वह देवी-देवताओं और टोने-टोटके, किसी भी सहारे सुमेर और शीलो के जीवन को सहज बनाना चाहती है। वह अपने गांव के चंपादास बैद के बताए हर

उपाय को खुद भी अपनाती है और शीलो को भी प्रेरित करती है "बहू से महामाई के मंदिर तक और मंदिर से शिवाले तक ब्रह्म बेला में पेड़ भरवाओ (पेट के बल लेट-लेटकर पहुंचना)। पाँच गाय, तीन कुत्तों की रोटी नित नियम से निकाली जाएं। तुलसी का चौरा और पीपल का पेड़ ढारे। घर में सुंदरकांड का पाठ करो। साला सुमेर क्या, सुमेर का बाप चला आएगा परलोक से। तप की माया, देवी-देवता का सिंहासन हिला दे, आदमी की क्या बिसात ?" परंतु सारे उपाय विफल रहते हैं। सुमेर, शीलो से किसी भी तरह का रिश्ता नहीं रखता।

सरसुती को ऐसा भी लगता है कि शायद शीलो, सुमेर को रिझा नहीं पा रही, पतियों को वश में रखने के तौर-तरीके उसे नहीं आते। इसीलिए स्त्री जीवन की बदरंग सच्चाई को बताते हुए सरसुती शीलो को अकेले में समझाती है, "मूरख, अपने आदमी को हाथ में करने की खातिर जनी को क्या-क्या जतन नहीं करने पड़ते ? सौ तरह के गुन-ढंग..... तरह-तरह से रिझाती है। धनी के आगे बेड़नी का रूप धरना पड़ता है। सीलो, मेरे जाने तू सेज पर भी गऊ माता..... अरी सिर्रिन जनियों के चलते सतजुग-कलजुग सब बरोबर। सतियों के आदमी बेड़िनियों ने छीने हैं सदा। बदल जाएँ जुग, यह बात नहीं बदलने वाली। बेटी, सती का रूप तो ऊपर का ढोंग है, बस।" शीलो से सुमेर की दूरी सरसुती के लिए भारी चिंता का सबब बनती गई। अकेले में ये उसकी चिंता बड़बड़ाहट में बदल जाती थी, "कौन सा पुरखा सराप गया कि घर की बंस-बेल में कल्ला फूटते दिखाई नहीं देते। बेटा-बहू का संग होते-होते रह जाता है। बांझ देहरी..... तेरे पिता को न सुरग मिले, न नरक। निर्बंस आदमी अधबीच लटका रहता है।"

सुमेर के लगातार नकारात्मक रवैये के कारण वह शीलो की पीड़ा को देख नहीं पाती। उसका छोटा बेटा बालकिशन स्वभाव से अत्यंत सरल और सीधा है। वह अपनी मां की कही हुयी किसी भी बात को पत्थर की लकीर समझता है। कोई रास्ता न पाकर सरसुती बालकिशन को शीलो के साथ रहने के लिए तैयार कर लेती है। सुमेर की अनुपस्थिति में और बालकिशन के सरल, भोले स्वभाव के चलते वह सहानुभूतिवश शीलो और बालकिशन के रिश्ते को स्वयं अनुमति देती है। हालांकि इसके लिए वह बार-बार व्यथित भी होती है और गांववालों से बहुत कुछ सुनती भी है। सरसुती यह भी चाहती है कि उसका घर-परिवार सुख-शांति से रहे और इसके लिए उसे जो मार्ग तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार ठीक समझ में आता है, वह उसे अपनाती भी है। परंतु उपन्यास में अपने ही किए पर उसे बार-बार व्यथित होते भी लेखिका ने चित्रित किया है।

सुमेर पूरे परिवार की इज्जत को दांव पर लगाकर दूसरा विवाह कर लेता है और फिर अपनी जायदाद का बंटवारा करने के लिए गांव आता है। सरसुती को लगता है कि परिवार-मोह में वह बार-बार गांव आता है, उसे लगता है कि उसका बड़ा बेटा उसे बहुत मानता है, पर वह उसके फरेब को बाद में समझ पाती है। सुमेर की बंटवारे की बदनीयत देखकर सरस्वती अपने मरे पति को विलापते हुए कहती है, "धनी, मैं तो बड़ी अज्ञानिन ! हाय तुम्हारी फोटू की कील आप-ही-आप कैसे उखड़ कर गिरी रे ? सीसा खील-खील..... असगुन.... बालू के दादा घर में दिरारें पड़ने वाली हैं।" वहीं दूसरी तरफ शीलो और बालकिशन के रिश्ते को सामाजिक रुप से वैधता प्रदान करने के लिए वह बछिया प्रथा के अनुसरण हेतु भी शीलो से आग्रह करती है, जिसे शीलो स्वीकार नहीं करती। शीलो और बालकिशन के रिश्ते को लेकर पूरा गांव तरह-तरह की बातें बना रहा होता है। चौपालों में, जहां सरसुती बड़ी-बूढ़ियों के बीच निधड़क हो बैठती थी, वे भी सरसुती को टोकती हैं, "मैं तो कायदे की बात करती हूं, सरसुती। सत्ते की अम्मा की तरह नहीं कि मुंह-सोहिली उड़ाऊँ। काय री, इनकी बछिया कब होगी ?" बड़ी-

बूढ़ियों का कहना अपनी जगह है, पर सरसुती की समस्या तो दूसरी ही है। वह एक तरफ शीलो को लेकर चिंतित है और दूसरी तरफ सुमेर ने जो दूसरा विवाह कर लिया है, उस अपराध बोध में वह शीलो से दबाव देकर कुछ भी नहीं कह पाती है। उसे शीलो के कुछ उल्टा-सीधा कर देने का डर भी लगा रहता है। भले ही सुमेर ने गलत किया पर एक मां की ममता के कारण वह बछिया के लिए शीलो को विवश नहीं कर पाती। वह सोचती है, "इन्हें अपनी अछिया-बछिया सूझ रही है। यहां बहू दम दे देती, तो फांसी होती सुमेर को। जेल काट रहे होते मैं और बालू। बखत बुरा पड़ रहा है, बिमली के जेठ-जिठानी की नहीं सुनी ? बहू के चलते ही हवालात..... रुपइया चूरन हो रहे हैं।" इसी तरह आगे चलकर घर के मुख्य फैसलों पर भी शीलो सरसुती को दरकिनार करने लगती है। उसे अपने छोटे बेटे बालकिशन से भी बड़ा ममत्व है। बालकिशन और शीलो के रिश्ते की प्रगाढ़ता बढ़ने पर बालकिशन के सामने अजीब दुविधा खड़ी हो जाती है। वह अगर शीलो की बात मानता है तो सरसुती को बुरा लगता है और यदि वह मां की बात मानता है तो शीलो उस पर तंज कसती है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं भी काफी भटका हुआ महसूस करता है। कभी उसे शीलो का संग-साथ ठीक लगता है और कभी वह इस रिश्ते से व्यथित होने लगता है। कलह के कारण जब वह मां को समझाता है तो सरसुती को वह भी हाथ से फिसलता हुआ दिखाई देता है। ऐसे मौकों पर वह तंज भी करती है "अरे बालू, तू सो के बता रहा है हमें, कि बेटा भिरमा रहा है मतारी को ? समझ रहा है कि आंखें मूंदे पीछे दुनिया में अंधेरा हो जाएगा। सुन तो रहा होगा लुगाई के बोल ! और समझ भी रहे होंगे लला कि किसके दम पर ?" शीलो और सरस्वती के बीच का द्वंद्व पीढ़ीगत द्वंद्व है। जिसे लेखिका ने बड़े स्वाभाविक ढंग से उपन्यास में चित्रित किया है।

वास्तव में शीलो की तरह सरसुती भी 'झूला नट' उपन्यास का अत्यंत महत्वपूर्ण पात्र है। उपन्यास में वैयक्तिक और सामाजिक संघर्ष और द्वन्द्व को चित्रित करने के लिए मैत्रेयी पुष्पा ने सरसुती के पात्र को विकसित किया है। सरसुती के माध्यम से बदलते समय की विडंबनाओं के पीढ़ीगत द्वंद्व को लेखिका ने भली प्रकार से चित्रित किया है। इसके साथ ही साथ सरस्वती के रूप में उन्होंने समय के साथ समायोजन की विभिन्न परिस्थितियों को भी चित्रित किया है। ग्रामीण समाज में आज के समय में भी व्याप्त स्त्री संबंधी समस्याओं को लेकर एक विशिष्ट दृष्टिकोण का निर्माण लेखिका ने शीलो और सरसुती के माध्यम से ही किया है। ग्रामीण समाज को हमेशा से रूढ़िवादी और परंपरागत समाज के रूप में देखा गया है और किसी भी तरह के परिवर्तन के लिए अंतहीन संघर्ष और द्वंद की आवश्यकता महसूस की जाती रही है। सरसुती ऐसे ही द्वंद्व और संघर्ष से गुजरती हुई दिखाई देती है। एक तरफ उसके सामने परिवार को बचाने की समस्या है और दूसरी तरफ पूरे समाज के प्रति जवाबदेही भी। इन सभी स्थितियों के साथ-साथ उसका अपना वर्चस्व भी उसके लिए लगातार संघर्ष का कारण है। सरसुती के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने इन सभी विडंबनाओं को उपन्यास में सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

२.२.३ सुमेर

शीलो और सरसुती की तरह सुमेर भी 'झूला नट' उपन्यास का एक मुख्य पात्र है। उपन्यास में संघर्ष की विभिन्न स्थितियों के निर्माण में सुमेर का ही योगदान है। सुमेर सरसुती का बड़ा बेटा है, जिसे सरसुती परिवार में बड़ा होने के कारण ज्यादा महत्व देती है। सुमेर पुलिस विभाग में नौकरी पा जाता है और इस नौकरी को प्राप्त करने में शीलो के पिता का बड़ा योगदान है।

शीलो और सुमेर का विवाह बचपन में ही तय कर दिया जाता है। नौकरी मिल जाने के बाद सुमेर का विवाह शीलो से हो जाता है परंतु अब सुमेर का मन बदल चुका है। शीलो के रूप-रंग के कारण सुमेर उसे कभी पति-सुख नहीं देता। इन सारी परिस्थितियों में शीलो की अपनी कोई गलती नहीं है। जमाने की हवा बदली हुई है और उसी हवा में सुमेर को लगता है कि उसकी बदसूरत पत्नी को देखकर उसके दोस्त उसका मजाक उड़ाएंगे। इसीलिए वह अपनी मां सरसुती से कहता है, "आपे से बाहर मत होओ। ठंडे दिमाग से सोचो, तुम्हारी छः उंगलियों वाली कल्लू बहू मेरे दोस्त को रोटी परोसने ही आ जाती, तो वह कल के दिन मुझे बोलने न देता। काले गोरे दो रंग.... पर तुम्हारी बहू तो नीली है, बैंगनी।" ग्रामीण विचारों और संस्कारों की उसकी मां सरसुती को उसकी बात समझ में ही नहीं आती। उसके जाने तो, जो बात बड़ों ने कह दी, वही सब कुछ है। पति और पत्नी का रिश्ता ईश्वर की देन है। वह अपने बेटे पर तंज करते हुए कहती है, "चल नासपरे। तेरी जिंदगानी इतनी कच्ची निकली कि करिया-गोरे रंग में ही डूबने लगी। अरे सुमेर, खुद को देख, नासपिटे तू कहाँ का चंदा है, सो सिंघलदीप की पद्मिनी चाहिए।" परंतु सुमेर पर मां की बातों का कोई असर नहीं होता। वह शीलो को छोड़कर अपनी नौकरी के चलते शहर चला जाता है, जहां कुछ समय के बाद वह एक दूसरी लड़की से विवाह कर लेता है। काफी समय तक तो यह बात छुपी रहती है परंतु अंततः यह बात सरसुती को पता चल ही जाती है। सुमेर कभी-कभार गांव आता-जाता है। हालांकि गांव आने-जाने के पीछे उसकी नीयत अपने लोगों से मिलने और हाल समाचार पाने की नहीं रहती बल्कि उसके कपटी स्वभाव में जायदाद को लेकर एक षड्यंत्र चलता रहता है। सुमेर अपनी खेती आदि का बंटवारा करके उसे बेचकर शहर में अपने लिए घर बनाना चाहता है। उसके स्वभाव में अजीब विरोधाभास है। वह गांव जाता है, शीलो से बात भी करता है, परंतु शीलो को अपनाने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं है। सुमेर के जीवन के इस प्रसंग के कारण पूरे उपन्यास में एक प्रवाह बनता है। संघर्ष और द्वन्द्व की सारी स्थितियों का निर्माण जिसके चलते होता है। सुमेर और शीलो के जीवन की यह समस्या पूरे परिवार के ध्वंस का कारण बनती है। सुमेर को काफी समझाने-बुझाने के बाद भी, देवी-देवताओं का सहारा मांगने के बाद भी जब सुमेर, शीलो को अपनाने को तैयार नहीं होता तो सरसुती शीलो से सहानुभूति के कारण अपने छोटे बेटे बालकिशन को समर्पित कर देती है। दरअसल सामाजिक रिश्ते के अतिरिक्त मनुष्य और मनुष्य की पीड़ा मनुष्यता को समझने का सार्थक आधार होती है। एक स्त्री होने के नाते सरसुती शीलो की पीड़ा को भली-भांति समझती थी, "वे दोनों सास-बहूओं के नाते से छिटककर दो औरतों की तरह रहती थीं। उस समय यह ज्ञान नहीं था कि एक विधवा है, दूसरी परित्यक्ता। देह के चलते वे एक-दूसरे की व्यथा समझती हैं।" सुमेर यह सब जानकर व्यथित नहीं होता बल्कि उसे अब अपना रास्ता निष्कंटक दिखाई देता है। वह अब इस बात से बेफिक्र हो जाता है कि शीलो के प्रति उसकी कोई जवाबदेही है। उसे लगता है कि बालकिशन को अपनाकर शीलो ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि सुमेर और उसका कोई नाता नहीं है। परंतु शीलो सारी स्थितियों को यूं ही स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। सुमेर से विवाह के पीछे शीलो की ज़िद या कोई आग्रह नहीं था। इन सभी स्थितियों के कारण एक स्त्री के रूप में उसका जो अपमान हुआ था, उसकी वह जिम्मेदार नहीं थी। सुमेर की महत्वाकांक्षाओं का दरअसल वह शिकार हुई थी। वह भी अंदर ही अंदर इस अपमान को स्वीकार नहीं कर पा रही थी और अंतिम बार सुमेर जब अपने जायदाद के बंटवारे के संदर्भ में गांव आता है तो वह सुमेर की पत्नी के रूप में आधी जायदाद पर अपना दावा रखती है। सुमेर इस बात से बहुत व्यथित होता है और क्रोध में गांव छोड़कर चला जाता है।

उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा ने सुमेर के रूप में आज के समय के मनचले पुरुषों का सार्थक चित्रण किया है। बढ़ती हुई दुनियावी चमक-दमक में कहीं न कहीं रिश्तो को धूमिल किया है। लोग रिश्तो की गंभीरता के बजाय उनकी चमक-दमक को लेकर कहीं ज्यादा लालायित रहते हैं। इसी चमक-दमक के चलते सुमेर ने शीलो को छोड़ दिया और सुमेर के कारण ही सरसुती, शीलो और बालकिशन तीनों का जीवन द्वन्द्व का शिकार हुआ। सुमेर के रूप में लेखिका ने वर्तमान समय की पुरुष मानसिकता को सार्थक ढंग से अभिव्यक्त किया है।

२.२.४ बालकिशन

'झूला नट' उपन्यास के केंद्रीय पात्रों में शीलो, सरसुती, सुमेर के अतिरिक्त एक अन्य चौथा पात्र बालकिशन है। उपन्यास की संपूर्ण कथा, घात-प्रतिघात, संघर्ष एवं द्वंद्व इन्हीं चारों पात्रों के इर्द-गिर्द अपना फैलाव लिए रहता है। बालकिशन सरसुती का छोटा बेटा और शीलो का देवर है। उपन्यास में उसे एक सरल ग्रामीण के रूप में चित्रित किया गया है। उसमें भी तमाम तरह के धार्मिक और सामाजिक ग्रामीण अंधविश्वास रचे-बसे हैं, जिनका मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यास के विभिन्न स्थलों में चित्रण किया है, जैसे "मैं साँग छिदवाऊंगा। शीलो दस सीस बीस भुजा की हो जाए, तब भी न मानूंगा, कहती है कि सिर्री हो गए हो। गाल में बल्लम का फल छेदकर लहूलुहान होना चाहते हो ? कितनी नादान औरत है। क्या जाने माता का परताप ? महामाई अपने भगत का सत्त भी चीन्हती - जानती है, नहीं तो लोहे का चमकता अनीदार फल गाल के भीतर की नरम खाल-मांस को पार करता हुआ बाहर निकल आए और एक बूंद खून न गिरे ! तेरी महिमा माता ! चमत्कार !" वह अपनी मां से बेहद स्नेह करता है। मां के कहने पर ही उसने पढ़ाई-लिखाई छोड़कर खेती का कामकाज संभाल लिया था। मां के प्रति उसकी आस्था को उपन्यासकार विभिन्न स्थलों पर भली-भांति अभिव्यक्त करता है "मैं तुम्हारा ताबेदार हूँ माँ। तुम्हारे हुकुम का गुलाम.....याद करो पहली बातें, तुम नहीं कहती, तो शीलो को..... सब तुम्हारी जोड़ी बांधी गांठे..... तुमसे बढ़कर कोई नहीं। तुम्हारी बात अंतिम बात।" बालकिशन, अपने बड़े भाई सुमेर से बहुत डरता है। जैसा कि ग्रामीण समाजों में बड़े भाई के प्रति पिता जैसा लिहाज होता है, ठीक वैसा ही संबंध बालकिशन और सुमेर के बीच भी है। बालकिशन की गलतियों पर सुमेर उसे पीट तक देता है पर लिहाजवश बालकिशन कभी भी सुमेर के प्रति क्रोधित नहीं होता बल्कि वह उसका सामना करने से भी डरता है, "तुम कहती थीं - भइया की मारपीट का क्या बुरा मानना रे बालू ? गांव का बालक बहादुर होता है, तू भी बहादुर है। मार-पीट का ध्यान किया, तो चल गई जिंदगी। अम्मा, मैं लात-घूंसे और संटीयों की मार खाकर भी बहादुर की तरह नहीं खड़ा रहता था ? अंत में तुम ही न झेल पातीं, जैसे चोट तुम्हारे कंधे लहूलुहान कर रही हो। तुम रोने लगतीं, मेरे कारण रोने लगतीं.... तुम पर बहुत प्यार आता मुझे, और साथ में मैं भी रोने लगता।"

बालकिशन मूलतः दया और सरलता से युक्त व्यक्ति है। कुल जमा तीन लोगों के परिवार में जब उसकी भाभी शीलो का आगमन होता है, तब वह भी बहुत खुश और उत्साहित होता है। परंतु यह खुशियां ज्यादा समय तक बनी नहीं रहती। सुमेर और शीलो के रिश्ते का तनाव स्पष्ट होते ही परिवार के साथ-साथ बालकिशन पर भी बोझिलता की छाया मंडराने लगती है। वह चाहता है कि उसके भाई और भाभी का रिश्ता सामान्य और सहज हो जाए परंतु यह नहीं होता। पुरुष अभिमानी मानसिकता के विपरीत वह अपनी भाभी और भाई के जीवन को सामान्य देखने के लिए खुद भी देवी-देवताओं की मान-मनौतियां करता है। परंतु कोई भी

रास्ता कारगर नहीं होता। बालकिशन के चरित्र में उपन्यास लेखिका के द्वारा एक बड़ा परिवर्तन तब उपस्थित किया जाता है, जब बालकिशन की मां सरस्वती सुमेर के विकल्प के रूप में बालकिशन को शीलो को सौंप देती है। उपन्यास के इसी स्थल से बाल किशन के जीवन में द्वंद्व और तनाव की स्थिति पैदा होती है। एक तरफ तो वह इस अवैध रिश्ते को समाज से छुपाता है परंतु यह बात ज्यादा समय तक छुप नहीं पाती और गांव की बड़ी-बूढ़ीयों के बातें बनाने के कारण सरसुती जब बछिया के लिए कहती है तो शीलो बछिया का निर्वाह करने से इंकार कर देती है। ऐसे प्रसंगों से बार-बार बाल किशन के जीवन में तनाव पैदा होता है। वह अपनी सरलता में सोचता है कि "शीलो भी एक ही..... बछिया कराने में क्या जाता है उसका ? अम्मा किस-किस को जवाब देंगी ? एक दिन जाति में से डाल दिए जाएंगे। ब्याह-शादियों की पंगत के लिए बुलावे नहीं आएंगे। काज-प्रयोजन में कोई बैठने न देगा। ये सब बातें जानती है शीलो, फिर भी मौन है। अम्मा ने क्या बिगाड़ा है इसका ? उनसे किस बात का बदला ले रही है ?"

बालकिशन को लगता है कि शीलो अनावश्यक ही बछिया के लिए मना कर रही है, परंतु शीलो के मन में सुमेर के प्रति बदले की भावना के कारण वह ऐसा करती है। जिसे न तो बालकिशन समझ पाता है और न ही सरसुती। शीलो और सरसुती के आपसी द्वंद्व में बालकिशन पिस जाता है। शीलो उस पर स्त्रियोचित अधिकार जताती है। वहीं मां होने के नाते सरसुती भी बालकिशन के प्रति अतिरिक्त मोह को छोड़ नहीं पाती है। शीलो और बालकिशन एक दूसरे के रिश्ते को स्वीकार कर चुके हैं। परंतु जब कभी सुमेर गांव आता है तो शीलो के बदले व्यवहार के कारण बालकिशन के पुरुषोचित अभिमान को ठेस भी लगती है, "सदा 'बालकिशन लला' कहने वाली औरत आज बालू-बालू कर रही है। परी बनकर आई है, तो हुकुम भी चलाएगी ? हमें झुकाकर रुतबा बनाएगी ? भीतर ही भीतर भभका-सा उठा। जब-जब खुद को उपेक्षित पाता है, उसे अपने बारहवीं के नतीजे की याद आ जाती है। विफलता आदमी को चाहे जब मार गिराती है। बी.ए. पास कर चुका होता, तो यही शीलो भाभी गरम दूध का गिलास लेकर हाजिर हुई होतीं। भैंस-बैल के संग जुतने वाले को लोग जानवरों से अलग करके देखना भूल जाते हैं।" परंतु जैसा कि सामान्य गृहस्थ जीवन में होता है, अंततः बालकिशन इन दोनों के बीच तालमेल न बिठा पाने के कारण अपना मानसिक संतुलन खो देता है और उपन्यास के अंत में ओरछा की ओर चला जाता है। जहां उसके अवसाद की स्थिति को दर्शाने के साथ ही उपन्यास समाप्त हो जाता है।

इस तरह उपन्यास 'झूला नट' में बालकिशन एक ऐसे पात्र के रूप में चित्रित है जो सुमेर की उपजाई हुई समस्याओं के कारण शीलो और सरसुती के द्वंद्व और संघर्ष में लगातार पिसता हुआ उपन्यास के अंत में अपना मानसिक संतुलन खो देता है और अवसाद की अवस्था में वर्जित हरकतें करने के कारण लोगों के द्वारा मारा-पीटा भी जाता है। उपन्यास की सारी परिस्थितियों में वह सभी पात्रों में सबसे ज्यादा निर्दोष पात्र है। अपनी सरलता और सहजता के कारण ही उसे अपने जीवन में इन विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। वह एक अच्छा भाई है, बेटा है, देवर है, परंतु अपनी इसी अच्छाई के कारण ही वह अपने इन सभी रिश्तो में फंसकर दूसरों की इच्छाओं का शिकार होता है। उसकी सरलता, सहजता और मानवीयता ही उसके शत्रु बन जाते हैं।

२.२.५ अन्य पात्र

पात्रों की दृष्टि से 'झूला नट' उपन्यास बेहद संतुलित और सार्थक उपन्यास है। उपन्यास में लेखिका ने पात्रों का नियोजन अत्यंत सचेत दृष्टि से किया है। मुख्य पात्रों की दृष्टि से इस उपन्यास में शीलो, सरसुती, सुमेर और बालकिशन का नाम लिया जा सकता है। जबकि कुछ पात्र प्रसंगवश उपन्यास में आते-जाते रहे हैं, जो विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक रहे हैं। उससे अधिक उनकी कोई भूमिका नहीं रही। जैसे - सुमेर की दूसरी पत्नी, जिसका वर्णन और चर्चा उपन्यास में विभिन्न स्थलों में होती है। वह प्रत्यक्ष रूप से उपन्यास में कहीं भी दिखाई नहीं देती, परंतु उपन्यास की कथावस्तु के गठन में इसका अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। इसके अतिरिक्त बालकिशन का मित्र रघु, रघु का बाप, सत्ते, सत्ते की अम्मा, चंपादास बैद और अन्य इक्का-दुक्का पात्र। यह सभी उपन्यास में मुख्य चरित्रों को विस्तार देने की दृष्टि से ही आए हैं और इस रूप में इनका भी अत्यंत महत्व है। पात्र योजना की दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा का संगठन अत्यंत तर्कसंगत और कसा हुआ है। उनके उपन्यासों में अनावश्यक पात्रों की भीड़ नहीं जुटी है बल्कि उपन्यास के उद्देश्य को सिद्ध करने में जो सहायक रहे हैं, उन्हीं पात्रों का नियोजन उन्होंने 'झूला नट' उपन्यास में किया है।

२.३ सारांश

'झूला नट' एक अत्यंत सार्थक और कसी हुई औपन्यासिक कृति है। इस कृति का सृजन उपन्यासकार ने अपने युगसंदर्भों को ध्यान में रखते हुए किया है। वर्तमान समय में कथा साहित्य में जहां शहरी चेतना के व्यापक परिवर्तन को मुख्य रूप से कथा साहित्य का हिस्सा बनाया जाता है, वहीं मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक परिवर्तनों की दृष्टि से अत्यंत क्रांतिकारी दौर से गुजर रही ग्रामीण व्यवस्था को इस उपन्यास का मुख्य हिस्सा बनाया है। इस परिवर्तन की चेतना को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने शीलो, सरसुती, सुमेर और बालकिशन जैसे पात्रों का सृजन किया है। यह सभी पात्र अत्यंत सहज और यथार्थपरक ढंग से निर्मित किए गए हैं। हर ग्रामीण व्यवस्था में ऐसे पात्र विभिन्न परिस्थितियों से संघर्ष और द्वन्द्व करते दिखाई दे जाएंगे। पात्र नियोजन की दृष्टि से यह अत्यंत सार्थक औपन्यासिक कृति है।

२.४ बहुविकल्पीय प्रश्न

१. सरसुती के संबंध में कौन सा कथन सत्य है ?

(क) सरसुती सुहागन है　　(ख) शीलो सरसुती की सास है

(ग) सरसुती के तीन बेटे हैं　　(घ) सुमेर सरसुती का बेटा है

२. सरसुती के छोटे बेटे का क्या नाम है ?

(क) सुमेर　　(ख) बालकिशन

(ग) रघु　　(घ) सत्ते

३. सुमेर की नौकरी के लिए पैसों की मदद किसने की थी ?

(क) शीलो के पिता　　(ख) सत्ते

(ग) रघु　　(घ) बालकिशन

४. "तुम्हारी बहू तो नीली है, बैंगनी।" यह कथन किसने कहा ?

(क) रघु (ख) सत्ते

(ग) सुमेर (घ) बालकिशन

२.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. शीलो और सुमेर के बीच समस्या के कारणों को स्पष्ट कीजिए ?

२. बालकिशन के मानसिक संघर्ष का वर्णन कीजिए ?

३. शीलो के प्रति सरस्वती की सहानुभूति का सोदाहरण वर्णन कीजिए ?

४. शीलो और बालकिशन के रिश्ते के औचित्य-अनौचित्य पर अपने विचार प्रकट कीजिए?

२.६ बोध प्रश्न

१. उपन्यास 'झूला नट' के आधार पर सरसुती के मानसिक द्वंद्व और संघर्ष का चित्रण कीजिए ?

२. शीलो के जीवन में विसंगतियों के लिए कौन जिम्मेदार था ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

३. उपन्यास 'झूला नट' के आधार पर बालकिशन के चरित्र का विश्लेषण कीजिए ?

४. 'उपन्यास 'झूला नट' में शीलो का चरित्र ग्रामीण परिवेश में बदलती स्त्री संवेदना को अभिव्यक्त करता है।' कथन की समीक्षा कीजिए ?

२.७ अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

१. झूला नट - मैत्रेयी पुष्पा

❄❄❄❄❄❄❄

३

'झूला नट': परिवेशगत यथार्थ, ग्रामीण स्त्री-वर्ग की नव्य-चेतना, वैचारिक संघर्ष और आँचलिक महक

इकाई की रूपरेखा

३.० इकाई का उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ परिवेशगत यथार्थ

३.३ ग्रामीण स्त्री-वर्ग की नव्य-चेतना

३.४ झूला नट में चित्रित वैचारिक संघर्ष

३.५ बुन्देलखण्ड की आँचलिक महक

३.६ सारांश

३.७ वैकल्पिक प्रश्न

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

३.९ बोध प्रश्न

३.१० अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

३.० इकाई का उद्देश्य

पिछली दो इकाइयों में हमने 'झूला नट' की कथ्य-संवेदना और पात्र संरचना को समझने का भली-भांति प्रयास किया। इस इकाई में उपन्यास के अन्य विभिन्न महत्वपूर्ण पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा, जैसे उपन्यास में परिवेशगत यथार्थ को किस ढंग से सार्थक अभिव्यक्ति मिली है, यह उपन्यास ग्रामीण स्त्री-वर्ग की बदलती हुई चेतना को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है तथा मुख्य कथा के माध्यम से किन वैचारिक संघर्षों को देखने का प्रयास उपन्यास में लेखिका के द्वारा किया गया है। किसी भी उपन्यास या कहानी की कथा के पीछे कुछ वैचारिक सरोकार अवश्य होते हैं, जिन्हें रचनाकार पाठकों तक प्रेषित करने का प्रयास करता है। कथा आवरण के पीछे के यह वैचारिक संघर्ष और द्वंद्व समस्या के मूल रूप से तो परिचित कराते ही हैं साथ ही, निराकरण के कई विकल्प भी पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। इस दृष्टि से इन्हें समझना अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ ही उपन्यास जिस भौगोलिक-सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है, वहां के भाषा और संस्कृति के विविध पक्ष भी उसमें चित्रित होते हैं। उपन्यास 'झूला नट' बुंदेलखंड की सांस्कृतिक विशेषताओं को हमारे सामने रखता है। इस उपन्यास को पढ़कर बुंदेलखंड की सामाजिक संरचना और विशेषताओं को समझने में मदद मिलती है। इस इकाई में विश्लेषण मुख्य रूप से इन्हीं बिंदुओं पर आधारित रहेगा।

३.१ प्रस्तावना

साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास एक ऐसी विधा है जो किसी लेखक को कई तरह की स्वतंत्रताएं देती है। उपन्यास के अंतर्गत किसी भी विषय को लेखक मनचाहे ढंग से वर्णित और विश्लेषित कर सकता है। संवेदना की अभिव्यक्ति ऐसा विषय है जो कई बार सूक्ष्म और प्रतीकात्मक ढंग से अनिवार्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति के लिए कविता सबसे सटीक विधा सिद्ध होती है। परंतु जहां कविता विशिष्ट पाठक वर्ग के लिए ही ठीक होती है, जो अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता और प्रतीकात्मकता को भलीभांति लक्षित कर सके, वहीं सामान्य पाठक वर्ग के लिए उपन्यास जैसी विधाएं ही कारगर होती हैं, जिनके द्वारा किसी समस्या को विस्तृत ढंग से घटित होते हुए दिखाया जाता है। उन घटनाओं के कार्य-व्यापार द्वारा परिणामों के मूल्यांकन का प्रयास भी किया जाता है। और इस प्रक्रिया में सामान्य पाठक वर्ग समस्या और समाधान को लेकर कृति से कई विकल्प प्राप्त करता है। और साथ ही, अपनी सहज बुद्धि से भी वह परिस्थिति विशेष में वर्णित की गई समस्याओं पर अपनी एक विशिष्ट समझ विकसित करता है। किसी भी औपन्यासिक कृति का मूल्यांकन उसके विशिष्ट संदर्भों की दृष्टि से भी अनिवार्य होता है।

'झूला नट' उपन्यास के विशिष्ट अध्ययन को ध्यान में रखते हुए इस इकाई के अंतर्गत उपन्यास में वर्णित परिवेशगत यथार्थ, ग्रामीण स्त्री-वर्ग की नव्य-चेतना, 'झूला नट' में चित्रित वैचारिक संघर्ष, बुन्देलखण्ड की आँचलिक महक आदि बिंदुओं को अध्ययन के केंद्र में रखा गया है। किसी भी रचना के पीछे उसके विशिष्ट सामाजिक संदर्भ होते हैं। अपनी प्रकृति में समाज एक अत्यंत जटिल संरचना है। इसके अंतर्गत विभिन्न उप-समाजों की अपनी-अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएं होती हैं, जो उन्हें अन्य समाजों से थोड़ा अलग बनाती हैं और विशिष्ट भी। 'झूला नट' उपन्यास बुंदेलखंड की सामाजिक स्थिति को उद्घाटित करने वाला उपन्यास है। बुंदेलखंड को जानने और समझने की दृष्टि से इस उपन्यास के द्वारा उसके परिवेश को समझने में काफी मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त वहां स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को लेकर भी काफी खुलासा होता है। प्राचीन समय से ही भारतीय समाज में धीरे-धीरे स्त्रियों की दशा निरंतर गिरती गई और आधुनिक काल में जब इस स्थिति को लेकर समाज में विचार-विमर्श आरंभ हुआ और स्त्रियों की सामाजिक दशा को सुधारने के लिए विशिष्ट प्रयास आरंभ हुए, उसके बाद भी सैकड़ों वर्ष लग गए, जबकि स्त्रियों को आत्मनिर्णय और आत्मनिर्भर बनने का अधिकार मिला। ऐसी स्थिति में इस उपन्यास में शीलो की स्थिति विशेष रूप से दृष्टव्य है। और साथ ही, बुंदेलखंड के सामाजिक परिदृश्य में उन प्रथाओं और परंपराओं का अध्ययन भी, जो किसी स्त्री के हक और अधिकार पर मानवीय पहलू से विचार-विमर्श करते हैं। इन सभी बिंदुओं को इस इकाई के अंतर्गत विश्लेषित करने का कार्य किया गया है, जिससे उपन्यास को संदर्भित विशिष्ट बिंदुओं के आधार पर समझा जा सके।

३.२ परिवेशगत यथार्थ

आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य का प्रारंभ से ही जोर इस बात को लेकर रहा है कि अपने सामाजिक यथार्थ को सार्थक अभिव्यक्ति मिले। स्वतंत्रता से पूर्व के कथा साहित्य में अन्य

(राष्ट्रीय-सामाजिक-सांस्कृतिक) उद्देश्यों पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण यह अभिव्यक्ति उतने प्रामाणिक ढंग से नहीं हो पा रही थी। परंतु स्वतंत्रता के साध्य को सिद्ध कर लेने के पश्चात साहित्यकारों का ध्यान मुख्य रूप से अपने समाज और उसकी विसंगतियों, व्यक्ति और उसकी समस्याओं की ओर केंद्रित हुआ और इसका परिणाम यह हुआ कि कथाकारों ने अपने समय के सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए परिवेश को प्रामाणिक ढंग से सामने रखकर समाज और व्यक्ति को देखना शुरू किया। परिवेशगत यथार्थ का तात्पर्य किसी समाज विशेष के अपने परिवेश के भीतर के सत्य से है। मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य अधिकतर ग्रामीण परिवेश को केंद्र में रखकर लिखा गया है। वास्तव में उनके सबसे प्रामाणिक अनुभव यहीं से निकलकर आए भी हैं। 'झूला नट' उपन्यास में उन्होंने बुंदेलखंड के ग्रामीण परिवेश को पृष्ठभूमि में रखते हुए शीलो, सरसुती, बालकिशन और सुमेर के माध्यम से परिवेश विशेष को सार्थक अभिव्यक्ति दी है। समस्या के केंद्र में यद्यपि स्त्री जीवन की विसंगतियां हैं और इनका चित्रण करते हुए उन्होंने पूरे परिवेश की विकृतियों और विसंगतियों को सार्थक अभिव्यक्ति दी है। उपन्यास में कई स्थल लक्षित किए जा सकते हैं, जहां से किसी समाज और संस्कृति विशेष की सच्चाइयों का पता लग जाता है।

ग्रामीण समाज आपस में कड़े बंध से बंधा हुआ समाज है। इस समाज में व्यक्ति का व्यवहार शहरों की तरह नितांत स्वतंत्र इकाई की तरह संभव नहीं है। गांव में नैतिकता का मुख्य बंधन यही समाज है, जिसकी अवमानना के भय से बहुत कुछ संतुलित रहता है। परंतु हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, जहां सामाजिक जीवन में एक दूसरे के लिए गहरा दखल नैतिक बंधन का काम करता है। वहीं कई बार यह एक-दूसरे के नितांत निजी मामलों में भी व्यथित कर देने वाले अवसर पैदा कर देता है। और ऐसे ही समय में एक दूसरे को लक्षित करना, एक दूसरे की सकारात्मक स्थितियों को नकारात्मकता में तब्दील करने का प्रयास करना आदि ऐसी ही बातें हैं। मनुष्य की सामान्य प्रकृति है कि वह दूसरों की उन्नति से कहीं न कहीं दुखी महसूस करता है, जैसे - "इस गांव के आदमी मट्टी का तेल पिए रहते हैं। मेरे सुमेर की तरक्की सुनते ही कुढ़-फुँक जाते हैं। अरे, इतना तो कोई नादान भी समझ ले कि नौकरी पेसा आदमी के सौ बैरी।" सरस्वती का यह कथन ग्रामीण समाज की इस संदर्भ में संकीर्णता को स्पष्ट करता है।

ग्रामीण समाज में शिक्षा-दीक्षा को लेकर पहले बहुत ज्यादा उत्सुकता नहीं थी। कागज-पत्र संभालने लायक सीख लिया तो सीख लिया, नहीं तो अपने पुश्तैनी काम खेती-बाड़ी में लग गए। अपनी जगह - जमीन की सेवा-खुशामद करना उनके लिए सब कुछ है। आज की तरह शहरों की ओर भागना कभी ग्रामीण समाज में इतना जरूरी नहीं था। हां, यह अवश्य है कि हमेशा से शहर उनके आकर्षण का मुख्य केंद्र रहे हैं। गांवों में परिवारों की ज्यादातर कोशिश यही रही है कि अगर एक-दो बेटे गांव से बाहर शहरों की ओर निकल गए हैं, तो एक-दो गांव की जगह-जमीन भी संभालें। बालकिशन इसी मनोवृति का शिकार होता है और इसीलिए उसे अपनी पढ़ाई-लिखाई की तिलांजलि भी देनी पड़ती है, "लला छोड़ो अब बस्ता-मस्ता। बहुत टटोल लीं फर्दे। खूब मूड़ लड़ा लिया कागदों से। बेटा.... अपनी खेती में हाथ-पांव खोलो। हिसाब किताब लायक आंक सीख लिए हैं, बसा बारहवीं भी पास कर लेते, तो सनद मिलती, सीसा में जड़ाकर कोठे में टांग लेते, कौन सी खेत में बोनी थी ? नौकरी तो किसी हाल में नहीं करानी हमें।"

सुमेर के रूप में उपन्यास लेखिका ने अपने समय के अत्यंत कटु यथार्थ को लक्षित किया है। लोग कितने बदलते जा रहे हैं, स्वार्थी होते जा रहे हैं, अपनों के बीच ही छल-कपट और लालच सबसे ज्यादा होता जा रहा है। अपनों को धोखा देने से भी बाज नहीं आ रहे हैं। सुमेर एक तरफ शीलो को धोखा देने का अपराधी है, इतने ही अपराध से उसका मन नहीं भरता, वह और आगे बढ़ता है। उसके इस अपराध का शिकार बालकिशन बनता है और साथ में उसकी मां सरसुती भी पिसती है। सुमेर की नौकरी और पढ़ाई-लिखाई सबके लिए पूरे घर का त्याग और बलिदान उसके लिए कोई मायने नहीं रखता। अपनी मनमानी करने के लिए वह अपने मां-भाई किसी को भी धोखा दे सकता है। इसीलिए वह अपनी मां को बहला-फुसलाकर उनसे अपने हिस्से की खेती मांगता है, "बालू मैं तो समझ रही थी रे कि सामान मांग रहा है, तो जुड़ रहा है घर से, पर वह देवता तो आदमी की मोह-माया जानता ही नहीं....." सुमेर ने दूसरा विवाह कर लिया क्योंकि शीलो उसके लिए बदसूरत थी। फिर भी वह गांव आता-जाता रहा। मां से मोह बांधे रहा पर इस मोह के पीछे उसकी दुष्टता थी। दरअसल वह अपने हिस्से की जमीन बेचना चाहता था ताकि वह शहर में घर खरीद सके। इसीलिए जब बालकिशन और शीलो के संबंधों की उसे जानकारी होती है तो उसे कोई फर्क नहीं पड़ता बल्कि वह सोचता है कि अब शीलो का उस पर कोई अधिकार नहीं रहेगा। इस तरह सुमेर की मानसिकता के द्वारा लेखिका ने अपने समय संदर्भों को भली-भांति चित्रित किया है।

उपन्यास 'झूला नट' में मैत्रेयी पुष्पा ने शीलो के चरित्र के माध्यम से स्त्री के परंपरागत और बदलते हुए स्वरूपों को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। शीलो ग्रामीण समाज में पली-बढ़ी युवती है। उसे जीवन की सरल सी परिभाषा मालूम है, जो उसने अपने आसपास के परिवेश में देखी और समझी है। उसमें भी स्त्री के परंपरागत संस्कार हैं। विवाह के पश्चात सुमेर के द्वारा जब बिना किसी गलती के उसका अस्वीकार किया जाता है तो वह समझ नहीं पाती की इस स्थिति को वह किस प्रकार समझे और सुलझाए। परंपरागत समाज में विवाह के बाद स्त्री के लिए ससुराल ही एकमात्र विकल्प है। जीवन और मरण केवलमात्र वहीं संभव है। स्थितियां चाहे जितनी भी विकट हों, उन्हें वही रहते हुए ही जीवन जीना है। ननंद - भौजाई के रिश्ते की विकटता के कारण वे मायके से दूर हो जाती हैं और दूसरी तरफ ससुराल में भी रिश्तो की विभिन्न तरह की खींचातानी में उनका जीवन सहज नहीं रह पाता है। उपन्यास लेखिका ने शीलो के जीवन में भी इन स्थितियों को सहज रूप से दिखाया है। जब शीलो को इस बात का एहसास होता है कि वह सुमेर की परित्यक्ता है, तो वह अपनी सास सरस्वती से याचना करते हुए कहती है, "अपने चरणों से अलग न करना, अम्मा। इस घर में पड़ी रहने दो, मैं खेत की घास.... बुरी घड़ी में जन्मी, तुम्हारी चाकरनी बनकर रहूंगी। बालू की दुल्हन की टहल करूंगी। उनके बच्चे पालूंगी। रूखी-सूखी खाकर घड़ी काट लूंगी। मायके में क्या सवाल-जवाब नहीं होंगे ? दिन-रात की सूली....." इस तरह वह भली-भांति जानती है कि ससुराल से इस तरह लांछित होकर वापस जाने का फल मायके में उसे क्या भोगना पड़ेगा। अकारण मिले हुए इस अपमान के बावजूद भी वह अपने मायके नहीं लौटना चाहती। उसे तो ससुराल में रहते हुए ही परिस्थितियों का सामना करना था। उन परिस्थितियों के बीच से ही जीने का कोई मार्ग निकालना था, जो उसने किया भी।

इस उपन्यास के द्वारा मैत्रेयी पुष्पा ने बदलती हुई स्त्री चेतना को अत्यंत यथार्थपूर्ण ढंग से दिखाया है। आज से पचास-साठ साल पहले स्त्री का जीवन बंधे बंधाए ढांचे के अनुसार चलता था। दरअसल हर किसी की मनमानी का शिकार उसका जीवन था। उसकी अपनी इच्छा या

मर्जी का कोई मतलब नहीं था। शिक्षा-दीक्षा को लेकर भी स्थितियां बहुत प्रतिकूल थीं। पहले पिता का घर और फिर पति का आश्रय और यदि पति के बाद भी जीवित रहे तो पुत्र पर निर्भरता, यही पूरे जीवन की कहानी थी। एक स्त्री की आत्मनिर्भरता, आत्मनिर्णय - यह सब कुछ बड़े दूर की बातें थी। परंतु मैत्रेयी पुष्पा जब यह उपन्यास लिख रही थीं, वह बीसवीं सदी का अंत था और नई सदी के आने की आहट थी। शीलो एक ग्रामीण युवती है। उसकी शिक्षा-दीक्षा भी न के बराबर है परंतु व्यवहारिक दृष्टि से वह बड़ी सक्षम है। उसकी सास सरसुती उसकी पीड़ा को समझती है। एक स्त्री होने के नाते विधवा सास जानती है कि उसकी बहू शीलो के साथ उसके ही बेटे ने कितना बड़ा अन्याय किया है। और इस अन्याय का प्रतिकार वह अपने छोटे बेटे को सौंपकर करना चाहती है। सुमेर इतना बड़ा अन्याय करके भी बेदाग निकल गया। गांव में किसी ने भी उसे लेकर कोई बात न की। कोई बहिष्कार नहीं किया और न ही कोई पंचायत जोड़ी। सच है, 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं', दूसरी तरफ शीलो और बालकिशन के रिश्ते को लेकर पूरा गांव न केवल तरह-तरह की बातें करता है बल्कि भरी पंचायत में लांछित भी करता है। बड़ी-बूढ़ियाँ तरह-तरह की बातें करती है, पर शीलो के रूप में मैत्रेयी पुष्पा ने एक ऐसी स्त्री का साक्षात्कार कराया है जो न्याय - अन्याय के तराजू पर विचार करना जानती है, जो अपने बराबर हक की लड़ाई लड़ना जानती है। इसीलिए वह कहती है, "ऐं काकी जी, पुलिसिया बेटा की बछिया की पांत खा ली ? पूछा नहीं कि बरकट्टो (बाल कटी) व्याही है या रखैल ? बेटों के चलते रसम-रीत भूलकर बहुओं की पीठों के लिए कोड़े लिए फिरती हो तुम बूढी जनी।" दरअसल गांव के बड़े बुजुर्गों का कहना था कि बछिया रस्म को निभाकर शीलो और बालकिशन के रिश्ते को सामाजिक रुप से मान्य बना दिया जाए, मगर शीलो का क्रोध इस बात पर था कि दूसरा विवाह तो सुमेर ने भी किया है। वह भी उचित नहीं है। फिर बछिया का विधान क्या उसके लिए नहीं है ? यह कैसी असमानता है और इसी के प्रति शीलो का विद्रोह था। उसका विद्रोह इस हद तक था कि जब उससे भविष्य की बात की जाती है तो वह इस हद तक पहुंच जाती है कि कहती है, "अपनी जिंदगानी बचाएं या अगली से अगली पीढ़ी की सोचें ? बाल-बच्चा भी निकाल लेंगे गैल।" शीलो का यह कहना एक नई चेतना का प्रस्फुटन है। यह नई चेतना शीलो के विद्रोह के रूप में उपन्यास लेखिका ने दिखाई है।

उपन्यास में कहीं-कहीं पाठकों को शीलो का पात्र नकारात्मक भी लग सकता है परंतु शीलो ने सुमेर को लौटाने के लिए क्या-क्या जतन नहीं किए। बालकिशन इसे अभिव्यक्त करते हुए कहता है, "इसके बाद व्रत-उपवासों का सिलसिला। सोलह सोमवार। संतोषी माता के शुक्रवार। केला-पूजन के बृहस्पतिवार। शनि ग्रह शांति के शनिवार। भाभी सूख-सूखकर कांटा होती जा रही हैं। उनका रंग बेरौनक हो गया। चेहरा लंबोतरा। सुंदर दांत बाहर निकल आए।" सरस्वती भी अपराध बोध से बुझिल होकर जिलों के सामने नतमस्तक थी दिखाई देती है वह उसे बेटी की तरह सांत्वना और ढाढा देती है "बेटी, पढ़ा-लिखा लड़का..... कौन से बैरी ने घात धरा दी। मोरे महादेव बुद्धि फिरेंगे तो सही। आज नहीं, तो कल। सबर का फल मीठा होता है। सुख नहीं रहा, तो दुख भी नहीं रहेगा।" परंतु यह सांत्वना केवल सांत्वना ही थी ना तो व्रत उपवास ओं का कोई परिणाम निकला नाही सब्र किसी काम आया अंतिम अंत में रास्ता शीलो सरस्वती और बालकिशन से मिलकर ही निकला परी पर यह रास्ता भी एक बड़ी चुनौती था स्त्री समाज में इस परिवर्तन को दिखाकर लेखिका ने अपने समय के परिवेश गति यथार्थ को

अत्यंत सार्थक ढंग से अभिव्यक्त किया है दरअसल यह नई बदलती हुई सोच है जो धरातल में बराबर से सर उठा कर खड़े होने की ज़िद सामने रखती है।

उपन्यास 'झूला नट' और लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का सृजन इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय और विशिष्ट है कि उपन्यास की रचना के समय उन्होंने नायक या नायिका की सैद्धांतिक भूमिका को निर्मित करने या अपनी तरफ से किसी भी प्रकार के संशोधन या आदर्शवादिता को ग्रहण करने का कोई भी प्रयास नहीं किया है। शीलो अपने समय के ग्रामीण समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाली एक वास्तविक पात्र है और उसके चरित्र को लेखिका ने पूरे परिवेश और परिवेशगत सत्य को ध्यान में रखते हुए विकसित किया है। एक स्त्री और वह भी ग्रामीण स्त्री अपने जीवन में जब ऐसी विभीषिका में फंस जाती है तो उसके पास इन विभीषिकाओं का सामना करने की दृष्टि से अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियां होती हैं। वह इतनी पढ़ी-लिखी नहीं होती कि आत्मनिर्भरता की ओर कदम उठा सके, घर से बाहर का जगत उसके लिए बहुत जाना-पहचाना नहीं होता। ऐसी स्थिति में जो घटता है या घट सकता है, वही इस उपन्यास में दिखाई देता है। अपनी सारी सकारात्मकता और नकारात्मकता के साथ शीलो अपने वजूद को लगातार बचाने का प्रयास कर रही है। कितनी कड़वी सच्चाई के साथ वह गुजर रही है कि जहां एक तरफ ससुराल में सुमेर उसकी समस्याओं का कारण बनता है वहीं इन समस्याओं से निजात पाने के लिए वह मायके का आश्रय भी नहीं ग्रहण कर सकती। यह उसके जीवन की विडंबना है और इसी विडंबना से लड़ते हुए पूरा उपन्यास घटित होता है।

इस तरह शीलो, सरसुती, सुमेर और बालकिशन के चरित्रों के आधार पर मैत्रेयी पुष्पा ने बुंदेलखंड के ग्रामीण अंचल की विशेषताओं, विसंगतियों और विकृतियों सभी का सार्थक परिवेशगत यथार्थ चित्रित किया है। उपन्यास की सहजता इस बात में है कि सभी पात्रों को एक साथ लेकर चलते हुए लेखिका ने परिवेश को साकार करने में कहीं भी अतिरंजना का परिचय नहीं दिया है। वास्तव में एक गांव अपनी भूमिका में जिस ढंग से स्वयं को अभिव्यक्त कर सकता है, ठीक वैसा ही चित्रण देखने को मिलता है। ग्रामीण समाज में एक दूसरे के साथ संबंधों का निर्वहन, सामाजिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली, व्यक्तिगत समस्याओं और उन पर सामाजिक दबाव आदि सभी को लेकर लेखिका ने अत्यंत संवेदनशील और सहज चित्रण किया है। वास्तव में परिवेशगत यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से 'झूला नट' अत्यंत प्रभावी उपन्यास है।

३.३ ग्रामीण स्त्री-वर्ग की नव्य-चेतना

'झूला नट' एक स्त्री-विमर्शात्मक रचना है। हिंदी में स्त्री-विमर्श बीसवीं शताब्दी के सातवें-आठवें दशक में पूर्ण रूप से विकसित हुआ। भारतीय परंपरागत समाज में स्त्री की अत्यंत दयनीय दशा रही है। सामाजिक व्यवस्था में स्त्री घर की चौखट तक ही बनी रही है। चाहे पिता का घर हो या पति का, चौखट लांघना उसके लिए निषिद्ध रहा है। और इसी के चलते शिक्षा-दीक्षा के संस्कारों से भी उसे दूर रखा गया। एक कुशल ग्रहणी बनने की शिक्षा के अतिरिक्त स्त्री से अन्य अपेक्षाएं नहीं थीं। इसके अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक परंपराओं और कुप्रथाओं के चलते स्त्री का दैहिक और मानसिक शोषण भी होता रहा है। मध्यकालीन भारतीय समाज में स्त्री के संबंध में विकसित हुयी तमाम कुप्रथाएं आधुनिक काल तक भी चलती चली आयीं। आधुनिक काल में यूरोपीय चिंतन के प्रभाववश भारतीय समाज में स्त्री-स्वातंत्र्य और उसके विकास को लेकर

विभिन्न आंदोलन चले। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले आदि इसका उदाहरण हैं। १९वीं शताब्दी में स्त्री की जीवन दशा को सुधारने के लिए जो विभिन्न आंदोलन चल रहे थे, उनका व्यावहारिक सकारात्मक परिणाम लगभग न के बराबर था। वर्ष १९४७ में भारत की आजादी के बाद भी काफी समय तक संवैधानिक प्रावधानों और विभिन्न सरकारी योजनाओं के बावजूद आम भारतीय समाज में स्त्रियों को लेकर मानसिकता में बहुत परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा था। साहित्य के क्षेत्र में भी प्रेमचंद के साथ-साथ अन्य बहुत से साहित्यकार स्त्री जीवन की विसंगतियों और विकृतियों को लेकर लगातार लिख रहे थे और पुरुष-प्रधान समाज में एक नई समरस चेतना को विकसित करने की चेष्टा कर रहे थे, परंतु इन प्रयासों का परिणाम काफी नगन्य था। ऐसी स्थिति में स्त्रीवर्ग की प्रगतिशील और पढ़ी-लिखी, बुद्धिजीवी लेखिकाओं और रचनाकारों ने स्त्री विमर्श के द्वारा स्त्री जीवन के विभिन्न आयामों पर लिखकर स्त्री मुक्ति के विभिन्न संदर्भों पर गंभीर चर्चा आरंभ की। 'झूला नट' ऐसी ही चर्चा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। 'झूला नट' के बारे में एक विशेष तथ्य यह है कि यह ग्रामीण परिवेश पर आधारित रचना है और यह सभी पात्र ग्रामीण जनजीवन से जुड़े हुए पात्र हैं। नई सदी में नारी-मुक्ति का प्रश्न किस तरह से ग्रामीण जनजीवन तक व्यापक गया है, यह सकारात्मक संदेश इस उपन्यास के द्वारा देखने को मिलता है।

यह नहीं भूला जाना चाहिए कि समाज में बदलाव की प्रथम बयार नगरों की तरफ से ही आती रही है। दरअसल किसी भी नवाचार को पलने-पुसने का सही परिवेश शहरों में ही मिलता है। क्योंकि शहरी जीवन में बदलावों के प्रति इतनी ज्यादा रूढ़िवादिता नहीं होती जितनी कि ग्रामीण जनजीवन में होती है। ग्रामीण समाज अपनी परंपराओं और रूढ़ियों को लेकर कहीं ज्यादा सचेत रहता है और इन परंपराओं रूढ़ियों पर किसी भी प्रकार का संकट आने पर वह मुखर हो उठता है। ऐसी स्थिति में यह उपन्यास जिस ढंग से ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री चेतना में परिवर्तन की स्थितियों को चित्रित करता है, वह अपने आप में उल्लेखनीय है।

उपन्यास की नायिका शीलो जिस ढंग से विपरीत परिस्थितियों में फंसती है और फिर उन परिस्थितियों का गिरते-पड़ते, मुकाबला करते हुए जिस ढंग से वह अपना प्रतिकार लेती है, ऐसा चरित्र दरअसल नई उभरती हुई चेतना का ही परिणाम है। रूढ़िवादी समाज में स्त्री के द्वारा इस तरह के व्यवहार की कल्पना भी असंभव थी। समाज की विभिन्न संस्थाओं के द्वारा इतनी तरह के बंधन स्त्रियों के आचार-विचार पर लगे हुए थे कि इस तरह की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परंतु यह समय के बदलाव को भाँपकर और उसे अभिव्यक्ति देकर उपन्यास लेखिका ने शीलो के माध्यम से गांव में बदलती हुई नव-चेतना का ही संकेत दिया है।

इस उपन्यास में शीलो के चरित्र का विकास उपन्यास लेखिका ने इस बिंदु को मूल रूप से ध्यान रखते हुए ही किया है। दरअसल कथा साहित्य में स्त्री का चित्रण परिस्थितियों को विवशतापूर्वक भोगते हुए ही ज्यादातर दिखाया गया है। आमूल विद्रोह जैसी स्थितियां कम ही चित्रित की गई हैं। उपन्यास 'झूला नट' में शीलो के जीवन की विडंबना उसके विवाह के साथ आरंभ होती है, जिसे समझने में उसे कुछ समय लगता है। सुमेर का पलायन उसके जीवन में अपमान और खालीपन भर देता है, जिससे उसे निजात तब मिलती है, जब उसकी सास सरसुती और देवर बालकिशन उसकी विपरीत परिस्थितियों और जीवन की विसंगतियों को बदलने में सहभागी होते हैं। इस आश्रय को ग्रहण करने के बाद शीलो का चरित्र खुद-ब-खुद इस तरह उपन्यास में विकसित होता है कि वह उसके जीवन को अपमान से भर देने वाले

सुमेर से न केवल प्रतिकार लेती है बल्कि सुमेर के सामने जिस तरह वह डटकर खड़ी होती है, उससे हमारे समाज में स्त्रियों की मजबूत होती मानसिकता का परिचय मिलता है। इन समस्त स्थितियों को सफलतापूर्वक चित्रित करने में उपन्यास लेखिका को सफलता मिली है। सहज तरीके से उपन्यास इस नव्य चेतना को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुआ है।

वास्तव में शीलो का चरित्र कोई साधारण चरित्र नहीं है। हिंदी कथा साहित्य के इने-गिने महत्वपूर्ण चरित्रों में उसका शुमार किया जा सकता है। शीलो में सामाजिक दबाव को सहन करने की अपूर्व क्षमता है, उसमें परिस्थितियों को भाँपकर अपने वजूद की रक्षा करने का माद्दा है। वह साहसी है और सही नजरिए से देखा जाए तो उसने कुछ भी अनैतिक नहीं किया है। और उपन्यास के आधार पर जो कुछ भी ऐसा समझा जा सकता है, वह सिर्फ इसलिए क्योंकि वह अपने जीवन को बिगाड़ने वाले अपराधी सुमेर के प्रति कटु भावना से प्रेरित और पीड़ित है। बछिया प्रथा का निर्वहन भी वह अपनी इसी भावना के चलते नहीं निभाती क्योंकि यही वह अस्त्र था जिससे वह सुमेर को मात दे सकती थी। उसे उसकी नजरों में झुका सकती थी। और सही अवसर आने पर उसने ऐसा किया भी। उसके भीतर की विद्रोह भावना किसी एक दिन का परिणाम नहीं थी या सबकी नजरों में सुमेर के कृत्यों के कारण लांछित करना, यह सब उसके लंबे समय की सोच और योजना का परिणाम था। सचमुच शीलो का साहसी व्यक्तित्व नए बदलते हुए समाज में स्त्री वर्ग की चेतना का प्रतिनिधित्व करता है।

३.४ 'झूला नट' में चित्रित वैचारिक संघर्ष

उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें किसी भी समस्या पर विचार करने की व्यापक संभावनाएं मौजूद होती हैं। इसीलिए ऐसे प्रश्न जो विस्तारपूर्वक विचारणीय होते हैं, उन्हें इस विधा में स्थान दिया जाता है। कभी-कभी सूक्ष्म संवेदनाएं और प्रतीकात्मकता समस्या को व्यक्त करने के लिए ठीक उपादान नहीं समझे जाते। ऐसी स्थिति में लेखक संभावना के अनुसार कहानी या उपन्यास विधा का आश्रय ग्रहण करते हैं। हिंदी साहित्य के अधिकतर सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर आधारित उपन्यास इसी प्रकृति के हैं, जिनमें विचारशील ढंग से चिंतन की आवश्यकता के कारण उसमें निहित वैचारिक संघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है। मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपने उपन्यासों में विभिन्न परिवेशगत सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में वैचारिक संघर्षों को महत्वपूर्ण ढंग से चित्रित किया है।

उपन्यासकार मैत्रेयी पुष्पा ने 'झूला नट' में कई तरह के प्रश्नों, वैचारिक द्वंद्व और संघर्षों को केंद्र में रखा है और विभिन्न पात्रों के माध्यम से इस द्वंद्व एवं संघर्ष को चित्रित कर नए विकल्पों की तरफ बढ़ने का प्रयास किया है। इन्हें हम कई स्तरों पर देख सकते हैं। पहले स्थान पर शीलो का व्यक्तिगत द्वंद्व; दूसरा, शीलो की परिस्थितियों और सुमेर के बीच संघर्ष की स्थिति; तीसरा, सरसुती और शीलो के बीच का वैचारिक द्वंद्व; चौथे स्थान पर बालकिशन की परिस्थितियां और द्वंद्व और सबसे अंत में इन सभी पात्रों की अपनी निजी स्थितियाँ और सामाजिक परंपराओं का द्वंद्व। ये कुछ ऐसी स्थितियां हैं जिन्हें उपन्यास में संघर्ष और द्वन्द्व की स्थितियों के रूप में सहज ही लक्षित किया जा सकता है और इन संघर्षपूर्ण स्थितियों के माध्यम से उपन्यास लेखिका ने अपने मंतव्यों को सिद्ध करने का सार्थक प्रयास किया है।

इस उपन्यास में प्रत्येक चरित्र अपने आप में एक वैचारिक दुविधा हमारे सामने रखता है। पूरे उपन्यास में घटने वाला शीलो का चरित्र हमें वैचारिक रूप से न केवल बुरी तरह झिंझोड़ता है बल्कि ऐसी परिस्थितियों में फंसी एक युवती के प्रति कई तरह के प्रश्न और समाधान भी उपस्थित करता है। शीलो जिन परिस्थितियों से गुजर रही है और गुजरते हुए जिस तरह का घटनाक्रम उसके जीवन में लगातार आ रहा है, ऐसे में निश्चित रूप से यह माना जा सकता है कि वह सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध जाकर नितांत स्वच्छंद व्यवहार कर रही है। पर उसकी स्वच्छंदता के पीछे क्या है ? उसकी विवशता है या उसका क्रोध है या उसने स्वयं को नियति के हाथों छोड़ दिया है ? यह नहीं भूलना चाहिए कि भले ही वह ग्रामीण समाज की युवती है, वह पढ़ी-लिखी नहीं है, परंतु सहज, सरल और स्वाभाविक जीवन जीने का उसका अधिकार उसका अपना मौलिक अधिकार है। शीलो के इस तरह से निर्मित हो जाने के पीछे यही समाज जिम्मेदार है। क्या सुमेर के द्वारा उसे पहले दिन ही रूप - रंग आदि के कारण छोड़ दिया जाना उसके वजूद का बाकायदा मजाक उड़ाना नहीं है।

सुमेर या उसके बड़े बुजुर्गों को विवाह के लिए शीलो या उसके परिवार वालों ने विवश तो नहीं किया था। यह विवाह समाज की परंपराओं का पालन करते हुए हुआ। ऐसे में सुमेर का पलायन कहां तक उचित था ? शीलो को एकदम विकल्पहीन स्थिति में छोड़कर, उसके लिए जीवित नरक की व्यवस्था कर सुमेर का चला जाना मानवीय और सामाजिक दृष्टि से बिल्कुल भी ठीक नहीं था। शीलो अपनी संपूर्ण आशाओं के साथ सुमेर के इस नकारात्मक व्यवहार को अपनी सहज बुद्धि के अनुसार फेरने का प्रयास करती है। अपने पूरे विश्वास और धार्मिक आस्था के साथ वह कठिन से कठिन व्रत, उपवास और साधना के द्वारा सुमेर को लौटा लेना चाहती है। परंतु यह संभव नहीं होता। शीलो के सामने विकट स्थिति है। लंबे अंतराल तक इन विकट परिस्थितियों में फंसे होने के बाद भी वह अपने मायके नहीं लौटना चाहती। कारण भौजियों वाले घर में वह आत्मसम्मान के साथ नहीं रह सकेगी। सचमुच यह सामाजिक व्यवहार कि विवाह के पश्चात एक स्त्री पूर्ण मान सम्मान की अधिकारिणी अपनी ससुराल में ही होती है। इस व्यावहारिक मान्यता के चलते शीलो अपने मायके भी नहीं लौट सकती। इन विकट परिस्थितियों में उसके सामने क्या विकल्प थे ?

एक अच्छी बात उसके जीवन में यह शामिल थी कि उसकी सास और उसके देवर बालकिशन को उसके साथ हुए अन्याय से पूर्ण सहानुभूति थी इस संबंध में बालकिशन अपने भाई और सरसुती अपने बेटे के विरुद्ध थी। वे शीलो के साथ हुए अन्याय को ठीक करना चाहते थे परंतु विवश थे। सुमेर को इस बात के लिए सरसुती ने राजी करने का काफी प्रयास किया परंतु हठबुद्धि सुमेर अपनी मां की बात मानने को भी तैयार नहीं हुआ। ऐसे में तिल-तिलकर घुटता हुआ देख सरसुती ने अपने छोटे बेटे बालकिशन को शीलो के साथ रहने की अनुमति दे दी। यह अनुमति कहीं से स्वच्छंद व्यवहार का प्रतीक नहीं थी न ही यह सामाजिक परंपराओं के विरुद्ध थी। दरअसल सरसुती बुंदेलखंड के अपने ग्रामीण समाज में प्रचलित बछिया प्रथा के सहारे शीलो के जीवन को स्वाभाविक बनाने की चेष्टा करती है। सरसुती का सोचना था कि बछिया के द्वारा पंचायत और समाज के सामने वह बालकिशन और शीलो के संबंध को वैधानिक मान्यता दिला देगी और शीलो का जीवन बच जाएगा।

यह समस्त कार्य व्यापार उपन्यास में शीलो के जीवन को एक निश्चित दिशा देने के लिए गढ़ा गया है। परंतु दूसरी तरफ आत्मसम्मान को ठेस लगने से आहत शीलो इतना जल्दी सुमेर को

छोड़ने के पक्ष में नहीं थी। सुमेर ने जिस तरह से उसका अपमान किया था और वह जितनी सहजता से यह सोचता था कि वह शीलो से अपना पीछा छुड़ा लेगा, वैसा नहीं हुआ। शीलो की अपनी व्यावहारिक बुद्धि ने सुमेर की इस सोच को गलत साबित किया। शीलो और सुमेर के रिश्तो में खींचतान के संदर्भ में प्रश्न यह उठता है कि वास्तव में सुमेर जिस दंड का हकदार था, वह उसे नहीं मिला। शीलो ने सुमेर के जीवन को लेकर कोई खिलवाड़ तो नहीं किया परंतु सुमेर को इस बात का एहसास दिलाने के लिए कि, पत्नी कोई व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है। उसका भी अपना वजूद और आत्मसम्मान है और जिसके लिए वह लड़ भी सकती है। वह संपत्ति के प्रश्न पर सुमेर की मनमानी नहीं चलने देती। इस प्रश्न को लेकर सरसुती भी शीलो पर आक्रामक हो जाती है। परंतु एक लंबे समय तक विडंबनापूर्ण परिस्थितियों का सामना करने के बाद शीलो में इतना साहस पैदा हो जाता है कि वह इस तरह के निर्णय लेने में सक्षम तो हो ही जाती है, साथ ही अपने उठाए गए कदमों पर टिकना भी उसे आ जाता है।

इस उपन्यास में एक बड़ा प्रश्न बालकिशन को लेकर भी खड़ा होता है। एक सीधा-सादा ग्रामीण युवक जो अपनी मां की इच्छा को ही सर्वोपरि मानता है और उसके कहे अनुसार ही हर काम करता है, मां की इच्छा का पालन करते हुए ही वह शीलो को विडंबनापूर्ण परिस्थितियों से बाहर निकालने का प्रयास करता है। शीलो और सुमेर के बीच पैदा हुई विसंगति के चलते बालकिशन की सहानुभूति आरंभ से ही शीलो के प्रति है। पिता के दर्जे पर बैठे बड़े भाई से तो वह कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता परंतु शीलो के हित में मां की इच्छा अनुसार वह जो कर सकता है, वह करता है। मां की इच्छा के अनुसार ही वह शीलो के साथ को स्वीकार कर लेता है। बड़े भाई सुमेर के दूसरा विवाह कर लेने के पश्चात बालकिशन का यह कृत्य निश्चित रूप से अति प्रशंसनीय है। ऐसा करके वह एक तरफ शीलो के जीवन को बर्बाद होने से तो बचा ही लेता है, साथ ही बड़े भाई के प्रति भी उसकी निष्ठा का पता चलता है। परंतु यह सब करके अंततः बालकिशन के हाथ क्या आया ? उपन्यास के घटनाक्रम को देखते हुए पता चलता है कि शीलो, सरसुती और सुमेर की अपनी निजी स्वेच्छाचारिता और महत्वाकांक्षाओं के चलते बालकिशन का जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है। इन सभी के बीच वह पिसता हुआ दिखाई देता है और अंत में अवसादपूर्ण स्थिति में पहुंच जाता है। बालकिशन की यह स्थिति भी एक नए यथार्थ को हमारे सामने रखती है, जहां जनजीवन के मूल्यों की अपनी अस्मिता भी क्षरित होती दिखाई देती है।

यह उपन्यास अपने पूरे प्रारूप में कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को हमारे समक्ष रखता है। निश्चित रूप से इस उपन्यास के मुख्य चरित्र सामाजिक परंपराओं के विरुद्ध दिखाई देते हैं और उनके चरित्र की नकारात्मकता किसी को भी खटक सकती है। परंतु यह देखना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि ऐसा किन परिस्थितियों के कारण संभव हुआ है ? वे कौन से कारक जिम्मेदार हैं, जिनके चलते इस तरह की नकारात्मकता चरित्रों में बाहर निकल कर आयी है। इसके साथ ही एक स्त्री को देखने का नजरिया भी बदलने की जरूरत यह उपन्यास सामने रखता है। समग्र दृष्टि से देखें तो निश्चित रूप से शीलो इस उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण पात्र है, जिसको आधार बनाकर समूचा ताना-बाना रचा गया है। और उपन्यास लेखिका ने शीलो का चित्रण जिस तरह से उपन्यास में किया है, वह निश्चित रूप से आदर्शवादी स्थितियों को सामने नहीं रखता। ऐसा कोई आग्रह लेकर उपन्यास लेखिका ने भी रचना का सृजन नहीं किया। उनका उद्देश्य है, ऐसी परिस्थितियों में फंसी हुई एक स्त्री को उसके समूचे परिवेश और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए देखना। सही दृष्टिकोण से देखना। सही मायने में स्त्री जीवन की विवशताओं को

इस उपन्यास में प्रस्तुत तो किया ही है साथ ही इन विवशताओं तथा परिस्थितियों के चलते वह किस रूप में ढल जाती है, इस यथार्थ को भी रचनाकार ने सामने रखा है। अन्य सभी द्वन्द्व और संघर्षों के अतिरिक्त समग्र परिस्थितियों के मद्देनजर किसी स्त्री को देखे जाने की आवश्यकता पर निसंदेह यह उपन्यास बल देता है।

३.५ बुन्देलखण्ड की आँचलिक महक

'झूला नट' उपन्यास की रचना बुंदेलखंड की ग्रामीण पृष्ठभूमि को आधार बनाकर की गई है। उपन्यास में बुंदेलखंड अंचल के एक गांव के परिवार को आधार बनाकर पात्रों का नियोजन कर कथावस्तु का गुम्फन किया गया है। निश्चित रूप से जब कोई लेखक क्षेत्र विशेष को अपनी रचना के केंद्र में रखता है तो वहां की अपनी कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं रचना में सम्मिलित हो ही जाती हैं। हिंदी में तो अंचल विशेष को आधार बनाकर आंचलिक उपन्यासों की एक महत्वपूर्ण परंपरा ही है। और इस तरह के उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इन सभी लेखकों की तत्संदर्भित रचनाओं में अंचल विशेष की झलक इस तरह मिलती है कि जैसे पाठक रचना को पढ़ न रहा हो बल्कि जी रहा हो। भाषा-बोली, रीति-रिवाज, परंपराओं आदि का महत्वपूर्ण चित्रण रचना के भीतर एक पात्र की तरह अनुस्यूत होता है। हिंदी में इस ढंग से लिखे गए उपन्यासों में मैला आंचल सबसे विशिष्ट है, जिसकी रचना फणीश्वरनाथ रेणु ने की थी।

उपन्यास 'झूला नट' नि:संदेह ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है परंतु केवल इस आधार पर ही उसे इस तरह की रचना परंपरा से जोड़ना या उसका एक अंग मान लेना ठीक नहीं होगा। कथा की पृष्ठभूमि में ग्रामीण परिवेश है और इस रचना में परिवेश से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण ढंग से समस्या को चित्रित किया गया है। उपन्यास के गठन में स्वाभाविकता लाने के लिए रचनाकार ने भाषायी प्रयोग अत्यंत सुंदर ढंग से किए हैं, जो रचना को परिवेश के अनुरूप सहज और स्वाभाविक बनाने में यथासंभव योगदान देते हैं। इस दृष्टि से भाषा संबंधी कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं -

१. "मूरख, अपने आदमी को हाथ में करने की खातिर जनी को क्या-क्या जतन नहीं करने पड़ते ? सौ तरह के गुन-ढंग..... तरह-तरह से रिझाती है। धनी के आगे बेड़नी का रूप धरना पड़ता है। सीलो, मेरे जाने तू सेज पर भी गऊ माता..... अरी सिर्रिन जनियों के चलते सतजुग-कलजुग सब बरोबर। सतियों के आदमी बेड़िनियों ने छीने हैं सदा। बदल जाएँ जुग, यह बात नहीं बदलने वाली। बेटी, सती का रूप तो ऊपर का ढोंग है, बस।"

२. "बेटी, पढ़ा-लिखा लड़का..... कौन से बैरी ने घात धरा दी। मोरे महादेव बुद्धि फिरेंगे तो सही। आज नहीं, तो कल। सबर का फल मीठा होता है। सुख नहीं रहा, तो दुख भी नहीं रहेगा।"

३. "कौन सा पुरखा सराप गया कि घर की बंस-बेल में कल्ला फूटते दिखाई नहीं देते। बेटा-बहू का संग होते-होते रह जाता है। बांझ देहरी..... तेरे पिता को न सुरग मिले, न नरक। निर्बंस आदमी अधबीच लटका रहता है।"

४. "मैं साँग छिदवाऊंगा। शीलो दस सीस बीस भुजा की हो जाए, तब भी न मानूंगा, कहती है कि सिर्री हो गए हो। गाल में बल्लम का फल छेदकर लहूलुहान होना चाहते हो ? कितनी नादान औरत है। क्या जाने माता का परताप ? महामाई अपने भगत का सत्त भी चीन्हती - जानती है, नहीं तो लोहे का चमकता अनीदार फल गाल के भीतर की नरम खाल-मांस को पार करता हुआ बाहर निकल आए और एक बूंद खून न गिरे ! तेरी महिमा माता ! चमत्कार !"

इस तरह के बहुत से उदाहरण उपन्यास के भीतर से दिए जा सकते हैं, जिनमें रचनाकार ने कथा को स्वाभाविकता प्रदान करने के उद्देश्य से बुंदेलखंड की बुंदेली भाषा का सुंदर प्रयोग किया है। भाषा के इस तरह के प्रयोग से समस्त उपन्यास को यथार्थपरक कलेवर मिला है। इसके अतिरिक्त रचनाकार ने बुंदेलखंड के ग्रामीण समाज की कुछ प्रथाओं और परंपराओं का भी वर्णन किया है, जिनसे उपन्यास में बुंदेलखंड की आंचलिक महक समा गयी है। बड़ी हैरानी की बात है कि पढ़े लिखे और सभ्य, उच्चवर्ग तथा मध्यमवर्ग में इस तरह की उदार परंपराओं का पुराने समय में नितांत अभाव था। ऐसी ही एक प्रथा, जो निम्न वर्ग में आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग में थी, उसका वर्णन लेखिका ने उपन्यास में किया है। बछिया प्रथा ऐसी ही प्रथा थी। जिसके चलते स्त्रियों का जीवन अभिशप्त होने से बच जाता था। पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री को उपभोग की वस्तु से ज्यादा नहीं समझा जाता था। एक जीवित इकाई के रूप में उसके जीवन में विसंगतियां उत्पन्न होने के समय उन विसंगतियों को ठीक करने की दृष्टि से बछिया प्रथा अत्यंत मानवीय प्रथा थी। इसका सार्थक वर्णन रचनाकार ने इस उपन्यास में किया है। इस तरह बुंदेलखंड के समाज और संस्कृति का यथासंभव स्वाभाविक चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

३.६ सारांश

इस इकाई के अंतर्गत 'झूला नट' उपन्यास को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा गया है। कोई भी कथाकार घटनाओं और कार्य-व्यापारों के अतिरिक्त कुछ वैचारिक संदर्भो को पाठकों तक प्रेषित करने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त परिवेश व अन्य संदर्भ भी अनिवार्य रूप से कथा में सम्मिलित होते ही हैं। इन सभी का विश्लेषण करके ही किसी रचना को उसके संपूर्ण संदर्भों के साथ समझा जा सकता है। झूला नट उपन्यास केवल शीलो की व्यथा-कथा कहने वाला उपन्यास ही नहीं है बल्कि इसके द्वारा समेकित रूप से एक स्त्री के जीवन में विभिन्न द्वंद्व और दबावों को भी देखा जा सकता है। आजादी के बाद बदलते परिवेश में धीरे-धीरे स्त्रियों के संदर्भ में किस तरह से पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता में परिवर्तन हुआ है और वह परिवर्तन किन कारणों के चलते हुआ है, यह उपन्यास इन बातों का खुलासा भी करता है। स्त्री मुक्ति का प्रश्न, स्त्री के अपने साहस से ही जुड़ा हुआ है। जब वह स्वयं प्रतिकार करना सीख जाती है तो समय की धारा भी बदल जाती है। इस इकाई में परिवेशगत यथार्थ के अंतर्गत ग्रामीण समाज की तत्संदर्भित सच्चाई को उजागर किया गया है। इसी तरह बदलते समय के अनुरूप बदलती स्त्री चेतना को भी विश्लेषित किया गया है। 'झूला नट' उपन्यास बुंदेलखंड की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। इसके चलते बुंदेलखंड के ग्रामीण समाज की कुछ सांस्कृतिक और सामाजिक विशेषताएं स्वत: ही इस उपन्यास में सम्मिलित हो गई हैं। भाषा की दृष्टि से विशेष रूप से इसे चिन्हित किया जा सकता है। इस इकाई के अंतर्गत इन्हीं समस्त संदर्भों को उपन्यास के भीतर देखा गया है।

३.७ वैकल्पिक प्रश्न

१. बछिया प्रथा का निर्वहन करने से कौन इनकार कर देता है ?

(क) शीलो (ख) सुमेर

(ग) बालकिशन (घ) सरस्वती

२. निम्न में से किससे शीलो संपत्ति पर आधा अधिकार मांगती है ?

(क) सत्ते (ख) रघु

(ग) सुमेर (घ) बालकिशन

३. निम्न में से कौन अवसाद की अवस्था में पहुंच जाता है ?

(क) बालकिशन (ख) सुमेर

(ग) शीलो (घ) सरसुती

४. शीलो पहले किसकी बछिया करने की बात कहती है ?

(क) बालकिशन (ख) सुमेर

(ग) सरसुती (घ) सत्ते

३.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१. शीलो और सुमेर का वैचारिक द्वंद्व

२. सरसुती का मानसिक संघर्ष

३. बालकिशन की अवसादपूर्ण अवस्था के कारण

३.९ बोध प्रश्न

१. उपन्यास 'झूला नट' में उपन्यासकार ने परिवेश को सार्थक ढंग से चित्रित करने में कहां तक सफलता पायी है ? विश्लेषण कीजिए।

२. उपन्यास 'झूला नट' में विभिन्न वैचारिक द्वन्द्व और संघर्षों को विश्लेषित कीजिए ?

३. बुंदेलखंड की सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं को दर्शाने की दृष्टि से 'झूला नट' उपन्यास का मूल्यांकन कीजिए ?

४. शीलो के माध्यम से स्त्री चेतना के बदलते संदर्भों को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से 'झूला नट' उपन्यास का परीक्षण कीजिए ?

५. क्या 'झूला नट' उपन्यास को एक आंचलिक रचना माना जा सकता है ? विश्लेषण कीजिए।

३.१० अध्ययन हेतु सहयोगी पुस्तकें

१. झूला नट - मैत्रेयी पुष्पा

❄❄❄❄❄❄❄

४

दलित साहित्य की पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा

४.० इकाई का उद्देश्य
४.१ प्रस्तावना
४.२ दलित शब्द का अर्थ
४.३ दलित शब्द की परिभाषा
४.४ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: दलित आंदोलन
४.५ दलित साहित्य की अवधारणा
४.६ दलित साहित्य की विकास यात्रा
४.७ सारांश
४.८ बोध प्रश्न
४.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न
४.१० संदर्भ ग्रंथ

४.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे -

- दलित शब्द का अर्थ, उसकी परिभाषा को विद्यार्थी जान सकेंगे।
- दलित आंदोलन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य क्या है, उसको जानेंगे।
- दलित साहित्य की अवधारणा से छात्रों का परिचय होगा।
- दलित साहित्य की विकास यात्रा किस प्रकार रही, उससे छात्र परिचित होंगे।

४.१ प्रस्तावना

एक लंबी दुष्चक्रिय और यंत्रणा पूर्ण जद्दोजहद को झेलने और उस से लगातार उबरने की जिजीविषा ही शायद वो चीज है जिसने सदियों से अभिशप्त दलितों को इस मुकाम तक पहुचायाँ कि वे अपनी अपेक्षा, यंत्रणा और बहु आयामी शोषण के बुनियादी रहस्यों को समझ पाए। उनके विरुद्ध संगठित हो कर विद्रोह कर पाए। पिछली सदी के आखरी चार-पाँच दशकों में उठी दलित चेतना में दलित समाज में वो कुबत पैदा की, कि समूची भारतीय व्यवस्था द्वारा किए जानेवाले अपने शोषण के विरोध में साहस की भावना ही उनका बुनियादी हाथियार बन गई। विरोध के साहस की भावना को दलित समाज में कई रूपों में अभिव्यक्ति किया है। दलित साहित्य और आंदोलन का ज्वार इन रुपों में अभिव्यक्ति किया है। मगर विरोध की अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य या आंदोलन नही है। परंपरागत जीवन

मूल्यों की अभिव्यक्ति ही दलित आंदोलन का मुलाधार है। सर्वप्रथम दलित कौन ? उससे तात्पर्य क्या है इस पर दृष्टि केंद्रित करते है।

४.२ दलित शब्द का अर्थ

दलित शब्द का अर्थ विभिन्न शब्दकोशों में तोड़ना, कुचलना, दबाना, मर्दित, खंडित होता है। दलित शब्द की उत्पत्ति "संस्कृत के दल् धातु में प्रत्यय जोड़ने से हुई है। जिसका अर्थ होता है; तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना।" शाब्दिक दृष्टि से यह शब्द किसी विशेष वर्ग के लिए घोतक नहीं है परन्तु आधुनिक समय में डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर द्वारा चलाए गए आन्दोलन के पश्चात् दलित शब्द निम्न वर्गों के लिए सम्बोधित किया जाने लगा। शाब्दिक दृष्टि दे दलित उसे कहा जाता है जिसका शोषण हुआ हो। दलित शब्द का संवैधानिक अर्थ 'अनुसूचित जाति' के रूप में निर्धारित किया गया है। आधुनिक समय में शूद्र जातियों को चित्रित करने के लिए दलित शब्द प्रयोग किया गया, जो दलित व्यवस्था का द्योतक है।

प्राचीन काल में दलित शब्द के स्थान पर सवर्ण लोग निम्न जातियों को संबोधित करने के लिए शूद्र, चाण्डाल, भंगी, चमार, डोम आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। तदुपरांत समय परिवर्तित होता गया और इन शब्दों के यथास्थान पंचम, हरिजन, बहिष्कृत शब्द से संबोधित करने लगे। इन शब्दों के संदर्भ डॉ.आनंद वास्कर का कहना है। "गांधी जी ने दलितों को हरिजन कहा, श्री मगाटे ने अस्पृश्य कहा और डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर जी ने दलितों के लिए बहिष्कृत और अछूत शब्द का प्रयोग किया है।" इस आधुनिक समय में पंचम, हरिजन, बहिष्कृत तथा अछूत शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा और वर्तमान समय में निम्न वर्ग को संबोधित करने के लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग होने लगा हैं। अतः दलित शब्द कोई जाति नहीं परंतु दलित व्यवस्था में आया समूह मात्र है।

४.३ दलित शब्द की परिभाषा

दलित का अर्थ समान्यत: दबाना, कुचलना, खंडित करना आदि है। इस शब्द को विचारकों, साहित्यकारों तथा विद्वानों ने अपने मतानुसार व्याख्या की है; जो इस प्रकार है -

डॉ. श्यौराज सिंह बैचेन के अनुसार -

"दलित वह है, जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"

रामलाल विवेक के मतानुसार -

"ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य के अलावा समस्त हिन्दू समुदाय दलित वर्ग के अंतर्गत ही माना जाता है। दलित वर्ग में इस्लाम धर्म अंगीकार करने वाले बौद्ध या ईसाई धर्म ग्रहण करने वाले दलित वर्ग के लोग है।"

कंवल भारती के अनुसार -

"दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता के नियम लागू किया गया हो जिसे कठोर और गंदे काम करने के लिए बाध्य किया गया हो जिसे शिक्षा ग्रहण और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना

किया गया हो और जिन पर सछुतों ने सामाजिक नियोग्यताओं की संहिता लागू की वही और वही दलित है।"

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार -

"दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की व्यंजना देता है, भारतीय सामाज में जिसे अस्पृश्य माना गया है वह दलित है।"

अहिन्दी भाषीय दलित साहित्यकारों ने भी दलित की व्याख्या इस प्रकार की है -

मराठी साहित्यकार नामदेव ढ़साल के अनुसार -

"दलित म्हणजे अनुसूचित जाति जमाती, बौद्ध कष्टकरी जनता, कामगार, भूमिहीन खेत मजूर गरीब शेतकरी भटक या जमाती आदीवासी।"

गुजराती साहित्यकार नीरव पटेल के अनुसार -

"जे समुदायों जातिगत दमन तथा अस्पृश्यता जिवनना दरेक क्षेत्रे पायमाल तथा हडधूत थता रहूयो अने उवेखाया ते दलित।"

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा कि गई परिभाषा के अनुसार –

"हिंदुओं की गुलामगिरी और जीवन पद्धति का सर्वोत्तम आविष्कार अर्थात दलित है।" इसके बावजूद हिंदु धर्म का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ मनुस्मृति के अनुसार दलित की परिभाषा – "ब्राम्हणस्य दुखमासिद । बाहु राजन्य कृत: । उरु तदस्य यव्दवैश्य । पदभ्या शूद्रो अजायता।" अर्थात ब्राहमण की उत्पति मुख से जो सर्वोच्च है, क्षत्रिय की उत्पत्ति भूजाओं से, वैश्य की उत्पत्ति जाघों से और शूद्र की पैदाईस पैर से हुई है। इस उत्पत्ति के बावजूद उनके कर्म भी उनके अनुसार ही तय किए गए – (मनुस्मृति) –

"ब्राह्मोस्य तपो ज्ञान। तप: क्षत्रिस्य रक्षणाम।
वैशस्य तू तपो वार्ता। तप: शूद्रस्य रक्षणाम॥"

अर्थात – ब्राम्हण का कार्य ज्ञानार्जन करना, क्षत्रिय का कार्य रक्षा करना, वैश्य का व्यापार और शूद्र (दलित) का ऊपर के तीनो वर्गों की सेवा करना आदि। उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है –

'दलित' शब्द से हिंदु जाति व्यवस्था का बोध होता है। इसके अंतर्गत चमार, भंगी जैसे उपजाति को यह शब्द अपने निकटतम कर लेता है।

'दलित' शब्द से हिंदु जाति व्यवस्था मान्य किए हुए लोगों के समुह का अर्थ बोध होता है।

'दलित' शब्द से उपेक्षित जातियों का बोध होता है।

'दलित' अन्याय, अत्याचार की स्थिति दर्शनेवाला है।

'दलित' हिंदु समाज व्यवस्था, जाति व्यवस्था की ओर ले जाता है।

'दलित' अस्पृश्यता को दिखाता है।

'दलित' आज का विद्रोही और क्रांतिकारी रूप है।

स्पष्ट है कि जातिवस्था, दुरावस्थ, लाचारगी शोषण, दयनियता, कष्टमय जीवन जीनेवाले – प्रभाकर मांडे के शब्दों में कहना हो तो – "दलित ऐसे व्यक्तियों का समूह मनुष्य के नाते जीने का हक छीन लिया है, मानव के नाते जिनका मूल्य आस्विकृत किया गया है वह 'दलित' है।" हिंदी भाषिक तथा अहिन्दी भाषिक साहित्यकारों द्वारा दलित शब्द की दी गई व्याख्या के अनुसार सारांशत: कहा जा सकता है कि दलित उसे कहा गया है, जिन्हें समाज में अछूत कहकर बहिष्कृत किया गया हो, जिन्हें भारतीय संविधान में अनूसूचित श्रेणी में रखा और जिनका शोषण हुआ हो चाहे वो मजदूर, आदिवासी, स्त्री क्यों ना हो उन्हें दलित कहा जाना चाहिए।

४.४ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : दलित आंदोलन :

भारत में दलित आंदोलन की शुरूआत महात्मा फूले द्वारा शुरू की गई उन्होंने अपने विचारों से आंदोलन की जमीन तैयार की। इसके बाद में संसार का महान विचारक डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के अभ्युदय ने सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आंदोलन मच गया। आम आदमी एक महान व्यक्ति के रूप में जागृत हुआ और अपनी बात संसार के सामने रखने लगा वही दलित साहित्य है। फुले जी ने सबसे पहले महिलाओं को शिक्षा देने का जिम्मा उठाया और वह सफल भी हुआ। जिनकी बदौलत आज हमारे देश के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति पहल कर चुके है। फूले ने भारतीय समाज और अन्य समाज के लोगों ने अपने अधिकार की लडाई लडी। फूलेजी ने भारतीय दलित आंदोलन का सूत्रपात किया और इसी आंदोलन को मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर ने किया।

सामान्यत: दलित आंदोलन का इतिहास यदि गौर से देखा जाए तो चार्वाक को नकारना संभव नही होगा। यद्यपि चार्वाक पर कई तरह के आरोप भी हुए है। इसके बावजूद चार्वाक वह पहला शख्स था, जिसने लोगों को भगवान के भय से मुक्त होना सिख़ाया। भारतीय दर्शन में चार्वाक ने ही बिना धर्म और शिख़र के सुख़ की कल्पना की। इस तर्ज पर देख़ने पर चार्वाक सर्व प्रथम दलितों के प्रति आवाज उठाता नजर आता है। एक बात और जिसका जिक्र किए बिना दलित आंदोलन की बात बेमानी होगी। वो है, बौध्द धर्म। इसा पूर्व ६०० ईसवी में ही बौध्द धर्म ने समाज के निचले तबकों के अधिकारों के लिए आवाज उठाई। बुद्ध ने सबसे पहले सामाजिक और राजनीतिक क्रांति की पहल की। इसे राजनीतिक क्रांति कहना इसलिए जरुरी है कि उस समय सत्ता पर धर्म का अधिपत्य और समाज की दिशा धर्म के द्वारा ही तय की जाती थी। ऐसे समाज के निचले तबको को क्रांति की जो दिशा बुद्ध ने दिख़ाई वह आज भी प्रासंगिक है।

बुद्ध के बाद विनाश के कगार पर ख़डी मानव जाति के लिए कबीर एक मात्र औषधि है। डॉ. दत्तात्रय मुरुमकर ने अपनी पुस्तक 'साहित्य, समय और संवेदना' में कबीर पर आधारीत

लेख़ में रजनीश का बहुत ही सुंदर संदर्भ दिया है - "संत तो हजार हुए है पर कबीर ऐसे है जैसे पूर्णिमा का चाँद, अतुलनीय, अव्दितीय। जैसे अंधेरे में कोई अचानक दिया जला दे ऐसा यह नाम है। जैसे मरुस्थल में अचानक मरु उद्यान प्रकट हो जाए, ऐसे अदभूत और प्यारे उनके गीत है। कबीर एक आमंत्रण है, एक पुकार है, एक आव्हान ! और यह आव्हान कहीं बाहर नही है, भीतर है, कबीर का एक एक वचन जैसे हजारों शास्त्रों का सार है.... कबीर वचन जैसे अनगढ हीरे है, गीता होगी कितनी ही किमती लेकिन कबीर के एक शब्द में समा जाए।" स्पष्ट है कि कबीर भारत के सबसे बड़े विद्रोही कवियों में से है, जिन्होंने मिथ्या, आडम्बर, रुढ़िवाद, जाति-पाति के विरोध में ख़डा आंदोलन मचाया उनका दृष्टिकोण विशाल मानवतावादी रहा है। उन्होंने मुर्ति-पुजा, माला फेरना, तीर्थ-यात्रा, वृत्त उपवास, वर्ण-व्यवस्था, अवतारवाद, पोथी-पुराण, पठन आदि पर आघात किया - "दुनिया ऐसी बावरी,पाथर पूजन जाय्। घर की चकिया कोई न पुजै, जेहिका पिसा ख़ाय्।" इसके बावजूद वे लिख़ते है – "पंडित मुल्ला जो लिख़ दिया, छाडि चले हम कछुना लिया।" अर्थात कबीर का उद्देश्य धर्म, जाति, साम्प्रदायिक समाज का निर्माण करना है।

कबीर के बाद दलित आंदोलन में उनके समकालीन कवि रैदास का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने कहा –

"तीरथ बरत न करो अंदेशा। तुम्हारे चरण कमल भ्ररोसा।

जहाँ तहाँ जाओ तुम्हारी पूजा। तूमसा देव और बही दूजा।"

रैदास ने भी वर्णव्यव्स्था पर सर्वप्रथम प्रहार किया। सामाजिक विषमता, जाति-भेद, ऊँच-नीच विषयक गलत धारणाओं के प्रति अपना रोष प्रकट किया। दलित आंदोलन के लिए महाराष्ट्र की भूमि चर्चित रही है। महाराष्ट्र में चोख़ा मेला, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, तमील में नंदलाल, नारायण धर्म, उत्तरप्रदेश में हिराडोम, अछुतानंद, कर्नाटक में महात्मा बसवेश्वर, बंगला में राजाराम मोहनराय, पंजाब में गुरूनानक आदि इनके बावजूद सह्याजीराव गायकवाड, रामकृष्ण परमहंस, नारायण गुरू, किसन फागु बनसोड, गोपाल बाबू, कनकदास आदि ने भी समताधिष्ठित समाज का निर्माण करने में अपना योगदान दिया। इन्हे भी आंदोलन के साथ जोड़ना होगा। इनके बावजूद महाराष्ट्र के महान संत गाड्गे महाराज ने सबसे पहले स्वच्छता का महत्त्व दुनिया को समझाया। आज जो स्वच्छता अभियान की तुतरी बजायी जा रही है। उसके प्रेरक विचारक गाडगे महाराज है। गाड्गे महाराज ने कहा - 'मनुष्य के विचार अस्पृश्य होते है, मनुष्य नही। इसे सुसंस्कृत विचारों की आवश्यकता है। अत्यंत महनीय कार्य गाडगे महाराज ने किया। इनके बावजूद कुछ लोग होते है कि राजा महाराजओं की चारदीवारों से कुदकर झोपडियों तक जा पहुँचते है और वहाँ ऐसे दिए रोशन करते है कि आनेवाली इतिहास की सैकडों और हजारों परतें भी उस रोशनाई को दबा नही पाती। कोल्हापुर के महाराज राजश्री शाहू महाराज ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे। एक स्टेट के शासक होकर उन्होंने जो कार्य किया, वह नूतन था, अभिनव और अनुकरणीय था। उन्होंने सर्व प्रथम बलात श्रम को छेद दिया। उस समय देश के अन्य हिस्सों की तरह कोल्हापुर में भी ब्राह्मणों का एक छत्र राज था। यहाँ एक प्रसंग उधृत करना चाहूँगा जो प्रासंगिक है - छत्रपति शाहू महाराज हर दिन बड़े सवेरे ही पास के नदी पर स्नान

करने में जाया करते थे। परम्परा से चली आयी प्रथा के अनुसार, इस दौरान ब्राम्हण पंडित द्वारा मंत्रोच्चार किया करता था । एक दिन बंबई से पधारे प्रसिध्द समाज सुधारक राजाराम शास्त्री भागवत भी उनके साथ हो लिए थे । घटना १८९९ की है । कोल्हापुर के महाराज स्नान के दौरान मंत्रोचार किए हुए सुनकर (श्लोक सुनकर) राजाराम शास्त्री अचंभित रह गए। पूछे जाने पर ब्राम्हण पंडित ने कहा की चुँकि महाराजा शूद्र है, इसलिए वे वैदिक मंत्रोच्चार न कर पौराणिक मंत्रोच्चार करते है । ब्राम्हण पंडित की बाते सुनकर महाराज को अपमान जनक लगा और चेंलेंज किया । प्रसिध्द ब्राम्हण नारायण भट्ट को तैयार कर यज्ञोपसंस्कार किया । यह बात सुनकर कोल्हापुर के ब्राम्हण कुपित हुए । यह बात लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को भी पसंद नही आयी उन्होंने उसकी निंदा की । उसके बाद शाहू माहाराज ने राज पुरोहित को बरखास्त कर दिया ।

शाहू महाराज आरक्षण के जनक थे । उन्होंने सर्व प्रथम पिछड़ी जन-जातियों के लिए ५०% फिसदी सीटें पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षित कर दी । यह घटना १९०२ की है । शाहू महाराज इंग्लंड गये और उन्होंने वही से आदेश जारी किया । १९०३ में शाहू महाराज ने कोल्हापूर स्थित शंकराचार्य के मठ की सम्पत्ति जप्त करने का आदेश दिया । राजर्षि शाहु महाराज ने यही नहीं किया बल्कि पिछड़ी जातियों समेत समाज के सभी वर्गों मराठे, महार, ब्राम्हण क्षत्रिय, वैश्य, ख्रिश्चन, मुस्लिम और जैन सभी के लिए अलग-अलग सरकारी संस्थाएँ ख़ोलने की पहल की । अंत: निसंदेह यह अनुठी पहल भी उन जातियों को शिक्षित करने के लिए जो सदियों से उपेक्षित थी । उन्होंने दलित-पिछड़ी जातियों के बच्चों की शिक्षा के लिए ख़ास प्रयास किये थे । उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई थी । शाहु महाराज का कार्य अतुलनिय है । इसे इतिहास में याद रखा जाएगा ।

इन सभी महानुभवों के उपरांत १४ अप्रैल, १८९१ में भारत भूमि से डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जैसे दैदिप्यमान नक्षत्र का उदय हुआ, जिसमें अंधरे में डूबे हुये अछूतों, दलितों और शोषितों को स्वाभिमान और आत्मविश्वास की रोशनी दी । अछूत कहलाये जानेवाले दलितों की समस्त आशायें इस सूर्यपर केन्द्रित हो गई । इसमें संदेह नही कि ज्यों-ज्यों समय बितेगा, आंबेडकर का मानवतावादी संदेश अमृतवाणी के रूप में देश-विदेश के मानव हृदय को अधिकाधिक झंकृत करता रहेगा। एक कथन उधृत है –

"भारत का अजय अलोक दीप

भारत का लिंकन भीमराव

विद्वान श्रेष्ठ था भारत का

युग परिवर्तन भीमरावा।"

डॉ. आम्बेडकर जन्मजात विद्रोही थे, किंतु विद्रोही होते हुए भी महान सृजक, समाज सुधारक तथा राष्ट्रीय एकता के प्रबल हिमायती थे। उन्होंने समाज के दुषित कृतियों के विरुद्ध सतत संघर्ष किया। और इसमें उन्हें अद्वितीय सफलता मिली। उन्होंने जातिवाद, नारी अशिक्षा, भेदभाव, दासता का जमकर विरोध किया। दलितों की कानूनी लड़ाई लड़ने

का जिम्मा सशक्त रूप में डॉ. आम्बेडकर ने उठाया उन्होंने दलितों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकारों की पैरवी की। भारतीय संविधानिक प्रस्तावना से लेकर सभी अनुच्छेद मानवीय की रक्षा करते नजर आते है।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर भारत के दाता थे। उन्होंने दलितों को स्वाभिमान से जीना सिखाया। उन्होंने कहा "भीक माँगना, ब्राम्हण का धर्म हैं, क्षत्रिय का नही इसीलिए भीक माँगना छोड दें। प्रकाश का आश्रय लो, क्योंकि तुम्हारे हेतु सफल होंगे। केवल धर्म बुद्धि से कुछ नही होगा, हमारी नीति अस्पृश्य वर्गों अन्यायों की धर्म बुद्धि पर आधारीत रहना, उन्होंने कहा छीने हुए तत्व वापस नही आ सकते। जिसे उसे अपनी बुद्धि से सफल करना चाहीए।" अंत में १४ अप्रैल, १९५६ में नागपुर के पवित्र दीक्षा भूमि पर लाखों लोगों की उपस्थिति में धर्म परिवर्तन कर एक नयी मानसिकता के, स्वावलंबन के, स्वतंत्रता के ,समाता के, न्याय के, प्रज्ञा-शील-करुणा आदि मूल्यों की माला दलितों को पहनाकर उन्हें सभी शोषण से मुक्ति की । इस प्रकार दलित अपनी मुक्ति के लिए, आत्म-सम्मान के लिए विद्रोह कर उठा। संक्षेप में दलित आंदोलन सदियों से लेकर आज तक बरकरार है। भले ही इसमें सनातनी शक्तियाँ रोडा डालते होंगें किंतु यह मानव मूल्य की लड़ाई है, लड़ते रहेगें। आज भले ही स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व दिखाई देता होगा लेकिन तरह-तरह से शोषण आज भी शुरु है, इसका प्रतिकार दलित आंदोलन का एक मात्र उद्देश्य है।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर भारत के दाता थे। उन्होंने दलितों को स्वाभिमान से जीना सिखाया। उन्होंने कहा "भीक माँगना, ब्राम्हण का धर्म हैं, क्षत्रिय का नही इसीलिए भीक माँगना छोड दें। प्रकाश का आश्रय लो, क्योंकि तुम्हारे हेतु सफल होंगे। केवल धर्म बुद्धि से कुछ नही होगा, हमारी नीति अस्पृश्य वर्गों अन्यायों की धर्म बुद्धि पर आधारीत रहना, उन्होंने कहा छीने हुए तत्व वापस नही आ सकते। जिसे उसे अपनी बुद्धि से सफल करना चाहीए।" अंत में १४ अप्रैल, १९५६ में नागपुर के पवित्र दीक्षा भूमि पर लाखों लोगों की उपस्थिति में धर्म परिवर्तन कर एक नयी मानसिकता के, स्वावलंबन के, स्वतंत्रता के ,समाता के, न्याय के, प्रज्ञा-शील-करुणा आदि मूल्यों की माला दलितों को पहनाकर उन्हें सभी शोषण से मुक्ति की । इस प्रकार दलित अपनी मुक्ति के लिए, आत्म-सम्मान के लिए विद्रोह कर उठा।

संक्षेप में दलित आंदोलन सदियों से लेकर आज तक बरकरार है। भले ही इसमें सनातनी शक्तियाँ रोडा डालते होंगें किंतु यह मानव मूल्य की लड़ाई है, लड़ते रहेगें। आज भले ही स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व दिखाई देता होगा लेकिन तरह-तरह से शोषण आज भी शुरु है, इसका प्रतिकार दलित आंदोलन का एक मात्र उद्देश्य है।

४.५ दलित साहित्य की अवधारणा

साहित्य के माध्यम से हम सामज की व्यवस्थाओं का अनुशीलन करते है। किसी भी देश या काल के तत्कालीन परिवेश को समझना हो तो हमें उस समय के साहित्य के माध्यम से जान सकते है इसलिए महावीर प्रसाद द्विवेदी कहते है, "किसी भी काल या देश का चित्र यदि हम कहीं देख सकते है तो उसके लिए उस देश के साहित्य में झाँकना होगा।" अतः

साहित्य के माध्यम से समाज की दशा और दिशाओं का आंकलन कर सकते है । हिंदी में दलित साहित्य का प्रादुर्भाव स्वतंत्रता आन्दोलन के पश्चात विकसित हुई लेकिन दलित साहित्य का बीज बौद्ध काल में ही पड़ गए थे । दलित साहित्य के संदर्भ में दो विचारधाराए प्रस्तुत होती है । जिसमें दलित साहित्य किसे कहा जाना चाहिए, उसे लेकर दलित साहित्यकार और गैरदलित साहित्यकारों में मतभेद दिखाई देती है । जो निम्न प्रकार से दलित साहित्य के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते है –

प्रेमकुमार मणि के अनुसार दलित साहित्य -

"दलितों के लिए, दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य ही दलित साहित्य है, यह विलास का नही आवश्यकता का साहित्य है सम्पूर्ण विज्ञान उसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता का उद्धार उसका इष्ट है। दलित साहित्य वह प्रकाश पुंज है। जो अंधेरे में उतरा है।"

डॉ. धर्मवीर के अनुसार -

“दलित साहित्य वह है, जिसे दलित लेखक लिखते है।"

मोहनदास नैमिशराय जी के अनुसार -

“दलित साहित्य यानि बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों और मुल्यों के प्रति उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है, जो संघर्ष से उपजा है जिसमें समता और बंधुता का भाव है और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।"

माता प्रसाद के अनुसार -

"दलित साहित्य वह साहित्य है जो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक क्षेत्रो में उत्पीड़ित अपमानित शोषित जनों की पीढ़ा को व्यक्त करना है। दलित साहित्य कठोर अनुभवों पर आधारित साहित्य है। दलित साहित्य में आक्रोश और विद्रोह की भावना प्रमुख है।"

परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। दलितों की पीड़ा की अभिव्यक्ति दलित ही कर सकता है। गैर-दलित सिर्फ दलितों के दुख के प्रति संवेदना प्रकट कर सकते है। इस प्रकार ज्योतिबा फुले द्वारा कहे कथन स्पष्ट है कि "यहाँ की गुलामी की यातना को जो सहता है वही जानता है वही पूरा सच कह सकता है । सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव।" अतः दलित साहित्य एक मानवीय संवेदनाओं से जुड़कर सामाजिक प्रतिबद्धता स्थापित करता है। सामाजिक परिवर्तन ही दलित साहित्य का एकमात्र उद्देश्य है। जिसे हम बाबूराव बांगूल के शब्दों में कहें तो "मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार्य करने वाला मनुष्य को महान माननेवाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।" साहित्य के विविध विधाओं जैसे कविता, नाटक, कहानी, आत्मकथा, उपन्यास आदि के माध्यम से दलित लेखकों ने अपनी समाज की दारुण स्थिति का विवरण किया है । सबसे अधिक आत्मकथा विधा के माध्यम से दलित लेखकों ने स्वयं की आपबीती स्थिति, दलितपन, अस्पृश्यता का दंश,

सामाजिक परिवेश का सजीव चित्रण किया है। उसके उपरांत कहानी, कविताओं में वेदना, आक्रोश, दर्द, स्वर समाज के प्रति घृणा संवेदना को अभिव्यक्त किया है।

४.६ दलित साहित्य की विकास यात्रा

दलित साहित्य, हिन्दू समाज के बनाए वर्णव्यवस्था के विरुद्ध का साहित्य है। क्योंकि जिस वर्ण व्यवस्था की स्थापना समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए किये गए थे। उसी की आड़ में धर्म के ठेकेदार ब्राह्मण समाज ने चतुर्थ वर्ण को शुद्र कहकर उसे सदैव अपने पायदानों पर रखा और निरंतर उसका शोषण किया। उसे अछूत कहकर समाज में शिक्षा, पूजा-पाठ से वंचित रखा। उनपर अस्पृश्यता के कड़े नियम लादे गए। स्वतन्त्रता के पूर्व दलितों की स्थिति अतिशय दयनीय थी। उनकी स्थिति का सुधार अंग्रेजों के राज प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजी शासन में दलितों के अधिकारों के लिए उनकी स्थिति में सुधार के लिए कई सामाजिक कार्यकर्ता, बुद्धिजीवी वर्ग सामने आये जिसमें राजाराम मोहन राय, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, राम मनोहर लोहिया, ईश्वरचंद विद्यासागर आदि थे। और उसी काल में दलितों के मसीहा के रूप में डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर जी ने अस्पृश्यता के विरुद्ध आन्दोलन किये। दलित साहित्य की बुनियाद डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर के विचारों पर खड़ी हुई।आन्दोलन के पश्चात सन १९६० से भारतीय हिंदी साहित्य में प्रत्येक भाषा में दलित साहित्य का सृजन प्रारंभ होने लगा था। समाज के समुख कई चुनौतियाँ खड़ी होने लगी। सबसे पहले दलित साहित्य की शुरुआत मराठी भाषा में शुरू हुई। मराठी साहित्य के प्रमुख दलित साहित्यकार कवि नामदेव ढसाल, शरण कुमार लिम्बाले, वामन निम्बालकर, केशव मेंश्रात, अर्जुन डांगले, जे बी पवार आदि अपने रचनाओं के माध्यम से जनजागृति का कार्य किया। तदुपरांत पंजाबी, तेलगु गुजराती आदि भाषाओं में दलित साहित्य लिखे जाने लागा, जो आगे चलकर विमर्श का रूप धारण कर लिया। गुजराती साहित्यकारों में जोसेफ मेंकवान, प्रवीन गढ़वी, हरीश मंगलम, राजू सोलंकी, दलपत चौहान, जयंत परमार, मोहन परमार आदि रचनाकारों ने दलितों के आवाज को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचायाँ। तमिल भाषा में ई.बी. रामास्वामी नायकर तथा पेरिया जी ने दलित चेतना को बड़ा आयाम दिया। कन्नड़ भाषा के बड़े लेखक सिद्धा लिंगप्पया ने कहानियों के माध्यम से दलितों के आवाज को उठाया। पंजाबी में गुरूदयाल सिंह ने गढ़ि का दीवा, उपन्यास और किरपाल, कजाक, प्रेमगोरखी आदि की रचनाओ में दलित साहित्य की धारा निरंतर प्रवाहित हो रही है।" इस प्रकार दलित साहित्य विविध भाषाओं में लिखा जाने लगा पत्र-पत्रिका के माध्यम से इसका प्रचार-प्रसार हुआ।

दलित साहित्य धीरे-धीरे वर्तमान समय में अधिक मात्रा में लिखा जाने लगा जिसके कारण दलितों का आक्रोश उभर कर सामने आने लगा। साहित्य के माध्यम से वे पूरानी परम्पराओं, जातिवाद, भेदभाव व शोषण के प्रति विरोध प्रकट कर समाज में समानता लाने की एक बदलाव लाने की पहल की है।

हिंदी साहित्य में कविता के माध्यम से दलित साहित्य का प्रारंभ हुआ। दलित साहित्य में सबसे पहली हिराडोम की कविता 'अछूत की शिकायत' है जो २०१४ में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। प्रकाशित होने के पश्चात् इस कविता ने साहित्य जगत में हलचल मचा दी। उसके उपरान्त कई कविताएं प्रकाशित हुई, जिसमें दलितों की संवेदना, उनकी मार्मिक वेदना का प्रकटीकरण हुआ। समकालीन परिदृश्य में प्रसिद्ध रचनाकारों में जयप्रकाश कर्दम (गूंगा नहीं था में, आज का रैदास), ओमप्रकाश वाल्मीकि (सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका, अब और नहीं), बिहारीलाल हरित (अछूतों का पैगम्बर, मैं चमार हूँ), डॉ. धर्मवीर (हीरामन) आदि की प्रसिद्ध कविताएं है। जिन्होंने अपने कविता के माध्यम से अपने अनुभूतियों तथा दलितों के हृदय की मार्मिक सवेदना को अभिव्यक्त किया है। कविताओं के साथ-साथ कहानियों के माध्यम से भी दलित जीवन के दशाओं का चित्रण किया जाने लगा, जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि तथा मोहनदास नैमिशराय एक मौलिक रूप में कथाकार है। उनकी कहानियां आवाजें, हमारा जवाब, रीत आदि दर्जनभर कहानियां चर्चित है। इनकी 'कर्ज' पहली कहानी है, जिसमें उन्होंने दलित जीवन के आर्थिक और सामाजिक पक्ष पर विचार किया है। कहानी का केंद्रीय कथ्य दलितों के आर्थिक और सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिकता के इर्द-गिर्द घूमता है। उनकी 'आवाजें' भी सशक्त कहानी है। जिसके मेंहत्तर ठाकुर अवतार सिंह गुलामगिरी करने से साफ मना कर देता है। आवाजे में दलितों की नई पीढ़ी जातीय चेतना से उभरकर ऐलान करती है। वह ऊंची जातियों के जूठन नहीं लेंगे, ना खाएंगे और ना ही गंदगी साफ करेंगे। उनकी १९९४ में प्रकाशित 'दौना' कहानी विशेष चर्चित है। इस प्रकार विभिन्न कविता एवं कहानियाँ हंस, सरस्वती, तद्भव तथा युद्धरत आदमी जैसे पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी। हिंदी साहित्य की विविध विधा कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक आदि विधाओं के माध्यम से दलित जीवन की संवेदना तथा उनका यथार्थ जीवन अभिव्यक्त होने लगा। दलित साहित्य में सबसे ज्यादा प्रभावित आत्मकथा विधा के माध्यम से हुआ, जहाँ दलितों द्वारा रचित स्वयं की आप-बीती का चित्रण किया, जिसमें वे खुलकर जातिवादी भेदभाव के काले पक्ष को वे बयान करने लगे। दलित आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिशराय की अपने अपने पिंजरे भाग- १ और २ , ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन, तूलसीराम की मुर्दहिया, सूरजपाल की तिरुस्कृत, कौशल्या बैसंत्री की दोहरा अभिशाप तथा माताप्रसाद का झोपड़ी से राजभवन तक आदि आत्मकथा प्रकाशित हुए। जिसमें दलित लेखकों के पारिवारिक जीवन, तत्कालीन सामाजिक परिवेश आदि सभी का ज्वलंत दस्तावेज है।

दलित विमर्श को संपूर्णता में समेंटने के लिए किसी एक व्यक्ति का नाम लिया जाए तो निश्चय ही हिंदी में रमणिका गुप्ता का नाम आएगा। रमणिका गुप्ता जी विगत २० वर्षों से हिंदी भाषा और साहित्य के लिए काम कर रही है। इसे भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने 'युद्धरत आम आदमी' के माध्यम से अनेक समस्याओं को उकेरा है। 'बहु जुठाई' उनकी बेजोड़ कहानियों में से एक कहानी है। इस कहानी में दलित समाज ऐसी अमानवीय प्रथा का शिकार है। कथा का भूगोल बिहार के चतरा और हजारीबाग क्षेत्र का आदिवासी दलित और मुसहर बहुल गांव है। गांव में जब नई दुल्हन आती है, उसकी पहली डोली ठाकुर के घर पर ही उतरती हैं। गौने की पहली रात उसे ठाकुर की दुल्हन बनकर ही रहना पड़ता है। इस कहानी में लेखक ने स्त्री के शोषण की भयानकता को प्रस्तुत किया है। इन कहानीकारों के

अतिरिक्त एन. सिंह की यातना की परछाइयां, काले हाशिए पर, सत्य प्रकाश की कहानी रक्तबीज, अरविंद राही की कहानी दृष्टिकोण, रत्न कुमार सांभरिया की कहानी हुकुम की दुग्गी आदि कहानियां भी दलित समाज के तमाम समस्याओं को रेखांकित करती हैं। इन कहानियों में बेबस, मेंहनतकश, शोषित, पीड़ित और दलित की करुण चीखें अभिव्यक्त होती हैं। इन कहानियों में दलितों के तमाम कष्टों, प्रताड़नाओं ,अपेक्षाओं, यातनाओं को भोगे हुए यथार्थ के आधार पर प्रामाणिक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है । समग्रता से कहा जा सकता है कि दलित साहित्य की रचनाएं एक सकारात्मक पहल है तथा उसके मूल स्वरूप दलितों में उत्पन्न हुई आत्म चेतना अपने 'स्व' की तलाश तथा अस्तित्व की पहचान इस पहल की सफलता की द्योतक है।

सच है कि दलित साहित्य गाली गलौज का साहित्य नहीं है। जिस परिवेश में दलित सांस ले रहा है, वे गालियां उसी परिवेश की होती हैं। दलित साहित्य का उद्देश्य सवर्णों को गालियां देना नहीं है। न ही दलित साहित्य सवर्णों का विरोधी है और उनको गालियां देने का पक्षधर है। वह तो व्यवस्था का विरोधी है, जो दलितों के दुखों और अन्याय का कारण है और जिसे सवर्ण अपने कंधों पर लेकर ढोते हैं। इस व्यवस्था के अनुयाई स्वर्ण समाज के सभ्य लोग जिन असभ्य शब्दों का प्रयोग करें दलित अस्मिता के अपमान के लिए करते हैं, यदि दलित लेखक उन शब्दों को ज्यों का त्यों सभ्य समाज को वापिस देना चाहते हैं, तो वे शब्द गाली कैसे हो गए?" अर्थात उसके ऊपर जरूर आत्म चिंतन करना अनिवार्य है। वैसे तो दलित साहित्य पर कई आरोप लगाए गए हैं दलित साहित्य अश्लील भाषा का साहित्य है, यह जातिवादी साहित्य है, ऐसे कहीं आरोप लगाए जाते हैं परंतु दलित साहित्य अन्याय और अत्याचार को नकारने करने वाला साहित्य है संक्षेप में यह कहना होगा कि समता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता निर्माण करने वाला यदि कोई साहित्य है तो वह दलित साहित्य है। राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में कहें तो यह ' भागो नहीं बदलो का साहित्य है।'

४.७ सारांश

सारांशता दलित साहित्य का जातिगत भेदभाव को मिटा कर और मानवता को स्थापना करना है। दलित साहित्य समाज में समता और बंधुत्व कायम करना चाहता है क्योंकि डॉ. बाबासाहेब अंबडेकर ने दलितों को समाज में समान दर्जा, आत्मसम्मान के लिए आंदोलन किए और समाज में समानता की भावना को प्रस्थापित किया और इसमें दलित लेखकों ने भी बढ़-चढ़ कर साहित्य के माध्यम से सहयोग दिया है। ओमप्रकाश जी दलित साहित्य के उद्देश्य को बताते हुए कहते है, "दलित साहित्य समाज सापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व की भावना को मानता है।" अतः दलित साहित्य 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की दृष्टि में समता एवं एकता का ही मूल केन्द्र है।

४.८ दिर्घोत्तरी प्रश्न

1. दलित साहित्य की पृष्ठभूमि को स्पष्ट कीजिये ।
2. दलित साहित्य का ऐतिहासिक परिप्रक्ष उदहारण स्पष्ट कीजिये।

3. दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ।
4. दलित साहित्य की दशा और दिशा का विवेचन कीजिए

४.९ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१) हिंदी दलित साहित्य की पहली आत्मकथा कौन सी है ।

उत्तर : जूठन

२) हिंदी दलित साहित्य की शुरुआत किस विधा से आरम्भ होती है?

उत्तर : कविता

३) गांधी जी ने दलितों को क्या कहकर संबोधित किया?

उत्तर : हरिजन

४) आरक्षण की शुरुआत सर्वप्रथम किसने की?

उत्तर : शाहू महाराज

५) मुर्दहिया आमकथा किसके द्वारा लिखी गई है ?

उत्तर : तुलसीराम

६) हिंदी की प्रथम दलित कविता किस पत्रिका में प्रकाशित हुई?

उत्तर : सरस्वती

७) "दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की व्यंजना देता है, भारतीय सामाज में जिसे अस्पृश्य माना गया है वह दलित है।" यह किसके द्वारा परिभाषित किया गया है ?

उत्तर : ओमप्रकाश वाल्मीकि

८) 'युद्धरत आम आदमी' यह पत्रिका किसके द्वारा संपादित की गई है ?

उत्तर : रमणिका गुप्ता

९) 'आज का रैदास' किसकी कविता है ?

उत्तर : जयप्रकाश कर्दम

१०) मोहनदास नैमिशराय की प्रथम कहानी कौन सी है ?

उत्तर : कर्ज

४.१० संदर्भ ग्रंथ

१. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि

२. दलित साहित्य : अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ - ओमप्रकाश वाल्मीकि

३. भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास - मोहनदास नैमिशराय

❄❄❄❄❄❄❄

५

ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व और कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

५.० इकाई का उद्देश्य

५.१ प्रस्तावना

५.२ ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व

५.२.१ जन्म एवं परिवार

५.२.२ शिक्षा और नौकरी

५.२.३ विचारधारा का प्रभाव

५.३ ओमप्रकाश वाल्मीकि की साहित्यसाधना

५.३.१ कविता

५.३.२ आत्मकथा

५.३.३ कहानी

५.३.४ अन्य रचना

५.३.५ पुरस्कार

५.४ सारांश

५.५ बोध प्रश्न

५.६ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

५.७ संदर्भ ग्रंथ

५.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे।

- ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व अर्थात जन्म, शिक्षा और विचारधारा का प्रभाव आदि से छात्र परिचित हो जायेंगे।
- ओमप्रकश वाल्मीकि की कविता, आत्मकथा, कहानी, अन्य रचना, पुरस्कार आदि साहित्य को जानेंगे।

५.१ प्रस्तावना

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध रचनाकार है। दलित समाज में जन्म होने के कारण इन्हें जीवन भर विषमता मूलक समाज द्वारा बनाई गई जातिव्यवस्था, अंधविश्वास एवं सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ा। स्वभाव से इनका व्यक्तित्व विद्रोहात्मक रहा है। वे ब्ड़ी-बड़ी कृति को भी प्रश्नचिह्न लगाने से हिचकिचाते नहीं थे।

उन्होंने, "एक भाषण में प्रेमचंद की 'कफन' कहानी का विवेचन करते समय उसे दलित विरोधी कहानी कहा और यह भाषण समकालीन 'जनमत' पत्रिका में छपा जिसमें 'प्रेमचंद' दलित चिंतको के चिंतन का ही विषय बन कर रह गए। उक्त कहानी एक वर्ष तक विवाद में रही उसके बाद 'नाच्यौ बहुत गोपाल' (अमृतलाल नागर) आदि जैसे अनेक कृतियों पर दलित चिंतक के रूप में प्रश्नचिह्न लगाया है।" इस प्रकार लेखक किसी भी साहित्य को प्रश्नचिह्न लगाने से हिचकिचाते नहीं थे। अतः इन्होंने दलित साहित्य को आयाम दिया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व की एक खास बात यह भी थी की अपने उपनाम (जाति) को बताने में कतराते नहीं थे | चाहे वो कितनी भी मुसीबतों का सामना करना पड़े। वह हमेशा सत्य का ही साथ देते। इन्होंने कभी भी अपने और पराया का भेद नहीं किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि पूरी तटस्थता के साथ दलित लेखकों के अंत:विरोध पर भी प्रहार करते रहे है। उनकी भाषा स्पष्ट, सरल आवेगमयी है। इनका समाज में बदलाव लाने के दृष्टिकोण रखता है कवि दलित साहित्य की संवेदना को रेखांकित करते हुए लिखे है कि, "वर्ण व्यवस्था से उपजी घोर अमानवीय, स्वतंत्रता-समता विरोधी सामाजिक अलगाव के पक्षधर सोच को परिवर्तित कर बदलाव की प्रक्रिया तेज करना दलित साहित्य की मूलभूत संवेदना है।" अतः वे अपने साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण शोषण की दासता को प्रस्तुत करते है।

५.२ ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व

५.२.१ जन्म एवं परिवेश

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म ३० जून, १९५० को उत्तरप्रदेश के मुज्जफर नगर, जिला बरला नामक गाँव में हुआ। जाति से वह चमार थे जिसके कारण सवर्ण समाज उन्हें चूहड़े कहकर चिढ़ाते थे। उस जाति को सवर्ण समाज निम्न तथा अस्पृश्य मानता है। जिस परिवेश में उनका जन्म हुआ उन सभी का वर्णन उन्होंनें अपनी आत्मकथा 'जूठन' में अभिव्यक्त किया है। उनका घर वहाँ है जहाँ आस-पास की सारी गंदगियाँ फेकी जाती थी और लोग खुले शौच के रूप में उपयोग करते थे। ऐसे गंदगी भरे माहौल में वाल्मीकि जी का जीवन गुजरा हुआ। जिसका वर्णन लेखक स्वयं करते हुए कहते है, "इस माहौल में यदि वर्णव्यवस्था को आदर्श-व्यवस्था कहनेवालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।" इस प्रकार लेखक ने जिस परिवेश में अपना बचपन व्यतीत किया वह बहुत ही संघर्ष पूर्वक था। वाल्मीकि जी बचपन से किशोरावस्था तक सवर्ण समाज की प्रताड़नाओं, अछूतपन को सहते हुए बड़े हुए दलितपन के जीवन को जी चुके है और उनसे संघर्ष करते हुए अपने जीवन के लक्ष्य को साध्य करने की चाहत रखते है।

५.२.२ शिक्षा और नौकरी

शिक्षा समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है | लेखक बचपन से ही पढाई में कुशाग्र थे | उनकी शिक्षा उस माहौल में हुई जहाँ दलितों को पानी छूने पर उन्हें अपमानित किया जाता था। उनकी प्राथमिक शिक्षा 'बेसिक प्राइमरी विद्यालय' जो कक्षा पांचवी तक था वहां पूर्ण होती है | लेकिन वहाँ भी शिक्षा प्राप्त करने की लिए जातिवादी भेदभाव का सामना करना पड़ता था | वहाँ के मास्टर पढ़ाते कम थे मारते-पिटते और साफ-सफाई अधिक

करवाते थे। स्कूल से मिलनेवाली प्रताड़नाओं को सहन करते-करते लेखक के मन में शिक्षक के प्रति मानसिकता घृणित हो जाती है | वे अपने शव्दों में स्वयं कहते है कि "अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है तो मुझे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ-बहन की गालियाँ देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे वाहियातपन करते थे।" प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के दौरान उन्हें आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है अपने भाभी के गहने गिरवी रखा कर 'बरला इंटर कॉलेज' में दाखिला करवाते है | आठवी कक्षा में पहूँचने के बाद स्कूल के पुस्तकालय में पुस्तकों से लेखक का परिचय हुआ जहाँ उन्होंने प्रेमचंद, रवींद्रनाथ टैगोर के किताबों से होता है | उनके पिताजी ने वाल्मीकि जी को आगे की पढ़ाई के लिए बड़े भाई जसबीर के पास देहरादून भेज दिये। वहाँ जाकर वाल्मीकि जी ने 'डी.ए.वी कोलेज' के बारहवीं कक्षा में प्रवेश ले लिया। वहाँ का माहौल भी उनके गाँव 'बरला' जैसा ही था। लेखक ने स्वयं को उस माहौल में ढाल लिया। वहीं से लेखक के जीवन में डॉ. आम्बेडकर जी के विचारधारा से जुड़े और प्रभावित हुए वही से उनके जीवन में परिवर्तन होना शुरू हो गया।

कॉलेज में ही पढ़ाई के दौरान ही वे 'आर्डिनेंस फैक्टरी' जाकर नौकरी के लिए फार्म भर देते है और वहाँ लेखक का चयन हो जाता है। वहाँ उन्हें ट्रेनिंग दिया गया प्रशिक्षण के दौरान भत्ते के रूप में 'एक सौ सात' रूपया प्रति माह मिलने लगा। वहाँ से लेखक ने नौकरी करना आरंभ कर दिया है। एक वर्ष के प्रशिक्षण के दौरान एक प्रतियोगात्मक परीक्षा हुई जिसमें लेखक को चुन लिया गया और उच्च प्रशिक्षण के लिए जबलपुर भेजा गया वहाँ दो वर्ष तक कार्य किया फिर वहाँ से महाराष्ट्र में 'आर्डिनेंस फैक्टरी प्रशिक्षण संस्थान', अंबरनाथ (मुंबई) में ढ़ाई वर्ष के ट्रेनिंग के दौरान चंद्रपूर फैक्ट्ररी मे इनकी नियुक्ती हुई। वहाँ १३ वर्षो तक कार्य करने के उपरांत २२ जून १९८५ को उनका तबादला देहरादून में हो गया। अंत तक वही रहकर उन्होंने अपना कार्यभार संभाला। आर्डिनेंस फैक्ट्ररी में कार्यरत रहने के दौरान स्वर्णलता भाभी की बहन 'चंद्रकला' उर्फ चंदा/चंदर से मुलाकात हुई। २७ दिसंबर, १९७३ में विवाह संपन्न हुआ है।

५.२.३ विचारधारा का प्रभाव

इंद्रेश नगर में एक पुस्तकालय जिसे जाट मिलकर चलाते थे। वहाँ पर पहली बार 'हेमलाल' द्वारा लेखक का परिचय आम्बेडकर के पुस्तकों से होता है | पुस्तक का नाम "डॉ.अम्बेडकर: जीवन-परिचय", लेखक - चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु की पुस्तक को पढ़ कर लेखक डॉ.आम्बेडकर जी के विचारों से परिचित हुए थे। जब उन्होंने उस पुस्तक को पढ़ा, मानो की लेखक को जीवन से जुड़ा सभी अध्याय खुलकर सामने जाते है | उनके विचारों को पढ़ने के बाद कई दिनों तक लेखक के मन में दुविधा तथा भीतर छटपटाहट बढ़ती रही फिर उसके बाद लेखक ने डॉ.आम्बेडकर जी के सभी पुस्तकों को पढ़ डाला। सभी पुस्तकों को पढ़ने के बाद उनके जीवन में एक नई विचारधारा का प्रवाह हुआ। डॉ. आम्बेडकर जी की पुस्तके पढ़ने के बाद गांधी जी के प्रति उनके मन में जो विचारधारा थी वह बदल जाता है। उस समय जिस प्रकार गांधी जी को हरिजन के हित के लिए उन्हें प्रसिद्ध किया जा रहा था तब उन्हें समझ आया कि "गांधी जी ने हरिजन नाम देकर अछूतों को राष्ट्रीय धारा से

नहीं जोड़ा बल्कि हिन्दुओं का अल्पसंख्यक होने से बचाया।" इस प्रकार गांधीजी के प्रति उनकी धारणा बदल गयी थी।

आम्बेडकर को पढ़नें के बाद उनके शब्दकोश में एक नया दलित शब्द जुड़ गया जैसे-जैसे वो उनके साहित्य से परिचित हुए वैसे-वैसे उनमे एक नई विचारधारा का प्रवाह होने लगा और उनके आवाज में आक्रोश मुखर होने लगा। मानो की उन्हें जीवन की एक नई दिशा मिल गई थी। इस प्रकार आम्बेरडकर के विचारों से जुड़ कर लेखक ने समाज से जुड़ी जातिवादी भेदभाव को कम करने के लिए कई आंदोलनों में हिस्सा लिया।

शिमला जाने के बाद वाल्मीकि जी अपने जीवन के अंतिम पढ़ाव में उनकी स्वास्थ में गिरावट आनी शुरू हो गई इनका वजन दिन-पर-दिन कम होता चला गया परंतु लेखक ने इस बात को गंभीरता से नहीं लिया। स्वास्थ अधिक ख़राब होने के कारण डॉक्टर के कहने के अनुसार लेखक हॉस्पिटल में एडमिट हो गए और ऑपरेशन का तारीख १० अगस्त दे दिया या था। अस्पताल में एडमिट होने के दौरान कई नामी लेखक और लेखिका उनसे मिलने वहाँ गए और साथ ही कई छात्र उनकी सेवा करने के लिए तत्पर हो गये। कई छात्र ऐसे थे जिन्होंने रक्त दान किया। छात्रों के सहयोग को देखकर उस पल वाल्मीकि जी भावुक होकर कहते है "आज सोचता हूँ इस त्रासदी के घड़ी ने मुझसे बहुत कुछ छिना है वहीं मुझे बहुत कुछ ऐसा भी दिया है जिससे मेरे भीतर जीने की एक गहरी ललक पैदा कर दी है। एक बहुत बड़े परिवार से मुझे जोड़ दिया, वहाँ न जाति की दिवारे है ना धर्म की।" ऑपरेशन के बाद भी उनका स्वास्थ बिगड़ते चला गया और पेट में कैंसर के कारण उनका १७ नवम्बर २०१३ को निधन हो गया।

५.३ कृतित्व

ओमप्रकाश वाल्मीकि की अपनी ख्याति दलित साहित्यकार के रूप में है। बचपन बाल्यावस्था से युवावस्था तक उन्होंने जातिवाद का दंश झेला। लेखक ने अपने आक्रोश को साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया है | सबसे पहले उन्होंने लेखन की शुरुआत कविता के माध्यम से करते हैं। उनकी कविताओं में से सदियों का संताप, ठाकुर का कुआँ, युग चेतना, विरासत, लावा आदि प्रसिद्ध कविताएँ है। उनकी प्रसिद्धि 'जूठन' आत्मकथा से होती है | इस आत्मकथा में उन्होंने जीवन के अपने समस्त अध्याय पाठकों के समरूप खोल देते है। आलोचना, नाटक, कहानी के माध्यम से उन्होंने समाज में दलितों के दर्द को संवेदनात्मक रूप में अभिव्यक्त किया।

५.३.१ कविता-संग्रह

दलित साहित्य में कविता का स्वर जाति व्यवस्था से पीड़ित दलित की वेदना है जिसमें उन्होंने अपनी वेदना, आक्रोश को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कविता के माध्यम से लेखक ने दलितों के आक्रोश को आवाज दी है। सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका,अब और नहीं, शब्द झूठ नहीं बोलते उनकी चार कविता-संग्रह प्रकाशित हुई है।

'सदियों का संताप' यह लेखक का पहली कविता-संग्रह हैं। इस संग्रह का प्रकाशन १९८९ में फिलहाल प्रकाशन से हुआ है। इस कविता में उन्होंने पुरखों द्वारा भोगे गए पीढ़ा की

दारुण स्थिति को अभिव्यक्त किया है। यह कविताएँ १९७४ से १९८९ के दरम्यान लिखी गई है। इस संग्रह में मात्र १९ कविताएँ है। यह कविता उन्होंने तब लिखी जब हिन्दी दलित कविता अपनी पहचान के लिए संघर्ष कर रही थी। इस संग्रह के अंतर्गत सदियों का संताप, युग चेतना, ठाकुर का कुआँ, तब तुम क्या करोगे, शम्बूक का कटा सिर आदि प्रासंगिक कविताएँ हैं। इन कविताओं में पूँजीवाद, सामंतवादी व्यवस्था के साथ-साथ दलितों से जुड़ी अपमान, प्रताडनाओं को संवेदनशीलता के साथ काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी है।

'बस्स! बहुत हो चुका' यह इनका दूसरा कविता-संग्रह है जिसका प्रकाशन १९९७ में हुआ। इसमें संग्रहीत कविताएँ हंस, नव भारत टाइम्स, आम-आदमी आदि पत्रकिाओं में छप चुकी थी। इस संग्रह में कुल पचास कविता है। पेड़, शायद आप जानते हो, मुट्ठी भर चावल, वह मैं हूँ, जैसी अनेक कविताएँ है, जो सामाजिक विषमताओं पर कटाक्ष करने के लिए लिखी गई हैं। यह दलित साहित्य में चर्चित कविता है। इस कविता संग्रह में कवि के भोगे हुए उनके अनुभव है|

'अब और नही' ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह तीसरा कविता-संग्रह हैं। इसका प्रकाशन २००९ में राधाकृष्ण प्रकाशन से हुआ। इस कविता संग्रह में सभी कविता जातिवाद, धार्मिक पाखंडता, क्रूर व्यवस्था में लिपटे समाज के प्रति आक्रोश है। इस कविता के संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय कहते है "इनकी कविताओं में अच्छी-खासी टपटाहट देखी जा सकती है। वे आक्रोश से लबालब होती थी।" नैमिशराय जी का कथन बिलकुल सही है। उनकी कविताओं में दलित समाज की छटपटाहट है।

'शब्द झूठ नहीं बोलते' यह चौथी कविता - संग्रह है, जो २०१२ में अनामिका प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल चालीस कविताएँ है। इस कविता-संग्रह में भी लेखक सवर्ण समाज से मिली उपेक्षा तथा अपमान को संवेदना के रूप से व्यक्त कराती है।

५.३.२ आत्मकथा

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की जूठन बहुचर्चित आत्मकथा है। इसका प्रकाशन १९९७ में हुआ। इसी आत्मकथा से लेखक को ख्याति प्राप्त हुई। लेखक ने इस आत्मकथा में अपने जीवन से जुड़ी यथार्थ स्मृतियों एवं अनुभवों को शब्दबद्ध किया है। आत्मकथा को लिखने के लिए राजकिशोर जी ने ओमप्रकाश जी को खूब प्रेरित किया। राजकिशोर जी 'हरिजन से दलित' पुस्तक बना रहे थे १०-११ पृष्ठों में वाल्मीकि जी को आत्मकथात्मक शैली में लिखने का आग्रह किया था। इसके उपरांत लेखक ने लिखना शुरू किया। यह पुस्तक काफी चर्चित में हुई फिर उसके बाद उन्होंने अपने दलित पन के अनुभवों को विस्तार पूर्वक लिखना शुरू किया लिखते वक्त कई यातनाओं से गूजरते हुए उन्होंने भूमिका में कहा, "इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे एक लंबी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रतानाओं को एक बार फिर जीना पड़ा उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएं मैंने भोगी। स्वयं को दर-परत-दर उधेड़ते हुए कई बार लगा कितना दुख दायीं है यह सब।" आत्मकथा को शीर्षक देने के लिए राजेन्द्र यादव जी की बहुत मदद मिली। वाल्मीकि जी की पांडुलिपि को पढ़ा। फिर जूठन शीर्षक का सुझाव दिया। इस आत्मकथा को पढ़ने के बाद आभास होता है कि सवर्ण समाज दालितों को मनुष्य नहीं समझता बल्कि पशुओं की भांति समझा तथा वर्णव्यवस्था के नाम पर उन

पर अत्याचार किया उन्हें निम्न से निम्न कार्य करने पर बाध्य किया, अछूत कहकर हाशिए पर जीने के लिए मजबूर किया।

'जूठन' भाग एक का प्रकाशन १९९७ में हो चुका था। जिसके अंतर्गत उन्होंने बाल्यावस्था सें किशोरावस्था के जीवन संघर्ष का वर्णन किया है। जूठन पाठकों के बीच अधिक चर्चित हुई। इस खंड में जीवन से जुड़ी शिक्षा का संघर्ष, अपमान दलितपन का बोध लेखक ने अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया है। अब जूठन का दूसरा खंड वाल्मीकि जी के देहांत के बाद प्रकाशित हुआ। बिमारी के कारण मृत्यु हो जाने से वाल्मीकि जी दूसरे खंड की भूमिका नहीं लिख पाए और बाद में भूमिका लिखने के लिए वाल्मीकि जी कि पत्नी श्रीमती चंदा जी ने डॉ. विमल थोरात को पांडुलिपी देकर लिखने का आग्रह किया। इस प्रकार से विमल थोरात जी भूमिका में लिखती है। वाल्मीकि जी ने जिस जाति के दंश को जीवन भर सहा, जाते-जाते उस व्यवस्था के बदलाव की पहल देखी। बीमार होने के दौरान कई छात्र उनके ठीक होने के लिए उनकी सेवा करने लगे कई प्रसिद्ध लेखक उनका हाल चाल लेने पहुँचे। यह सब उनके लिए एक धर्म-जाति से बढ़कर था। इस प्रकार वल्मीकि दलित समाज में रहकर तकलीफ, भेदभाव को झेला वह अपनी लेखनी के माध्यम से इस समाज को बदलता हुआ देखना चाहते है। यात्रा से मिली उपलब्धियों के साथ उनकी साहित्यिक सफर दूसरे खंड में विस्तार पूर्वक दिया गया है।

५.३.३ कहानी-संग्रह

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने कविता के साथ-साथ एक कथाकार के रूप में भी ख्याति हासिल की है। इनके द्वारा लिखी हुई हर कहानी दलित जीवन की वेदना, नकार, आक्रोश की तरह है उन्होंने उम्र भर जिस नकार को झेला उसकी अभिव्यक्ति लेखक ने कहानी तथा पात्रों के माध्यम से की है। वाल्मीकि के कुल तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुकी हैं जो 'सलाम', 'घुसपैठिए' और 'छतरी' है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'सलाम' पहली कहानी-संग्रह हैं, जो २००० में प्रकाशित हुई। इस कहानी-संग्रह का नाम सलाम एक हिन्दू समाज की कूप्रथा को उजागर करती है। सामान्यत: सलाम का अर्थ नमस्ते है परंतु यहाँ एक दलितों के लिए एक प्रथा के रूप में अभिव्यक्त होता है। जब भी दलित वर्ग का दूल्हा अपने दूल्हन को लेकर गाँव आता है तब उसे सवर्ण लोगों की बस्ती मे जाकर अपना व दुल्हन को सर झुका कर लोगों को सलाम करना पड़ता है। इस संग्रह की पहली कहानी सलाम इसी प्रथा को लेकर लेखक ने लिखी है। इस कहानी की सभी कहानियाँ दलित जीवन से संबंधित हैं। इस संग्रह में कुल चौदह कहानियाँ है। सलाम, पच्चीस चौका डेढ़ सौ, रिहाई, सपना, बैल की खाल, गोहत्या, ग्रहण जिन्नावर, अम्मा, खानाबदोश, कुचक्र, भय, बिरम की बहू, कहाँ जाए सतीश इन कहानी के संदर्भ में लेखक का इस प्रकार कहना है "मेरी कहानियों में दलित पात्र अपने स्वाभिमान, आत्मविश्वास के लिए संघर्ष करते हैं और जातियता से मुक्त होने की जद्दोजहद करते हैं।" प्रत्येक कहानी जाति व्यवस्था, धार्मिक पाखंडों पर प्रहार करती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानियों में सवर्ण समाज की कूप्रथा, रुढ़िवादी परम्पराओं, शोषण, स्त्रीयों की समस्या, धार्मिक पाखंडो को उजागर करते हुए दलितों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

'घुसपैठिए', सलाम के बाद इनकी दूसरी कहानी-संग्रह है। इस कहानी-संग्रह का प्रकाशन २००३ ई. में हुआ। इस संग्रह में कुल मिलाकर बारह कहानियाँ संकलित है। घुसपैठिए,

यह अंत नही, प्रमोशन, जंगल की रानी, शवयात्रा, प्रमोशन, कूडाघर, मैं ब्राह्मण नही हूँ, मुंबई काँड, दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्नदर्शन, रिहाई, ब्रम्हास्त्र, हत्यारे आदि कहानियों में दलित जीवन की यथार्थ से जुडी सभी समस्याओं का चित्रण किया हैं। लेखक भूमिका में ही इस कहानी के बारे में कहते है। "इस कहानी के अंतर्गत मेरे अनुभव जगत की त्रासदियों और दुखों से उपजी सामाजिक संवेदनाएँ हैं जिन्हें शब्द-दर-शब्द गहरे अवसादों के साथ यंत्रणाओं से गुजरते हुए लिखा है।" इस प्रकार लेखक अपने जीवन के अनुभव को पुन: जीते हुए कथा के माध्यम से अपनी भावनाओं को कहते है।

ओमप्रकाश जी की कहानी की शैली एक अदभुत है वह सरल और आकर्षित लहजे में दलित समाज की सभी समस्याओं को अभिव्यक्त कर देते है। जहाँ मैं ब्राहमण हूँ व दिनेशपाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन कहानी के पात्र अपना सर नेम बदल लेते है परंतु फिर भी जाति उनका पीछा नहीं छोडती। एक कूड़ाघर कहानी में सरकारी कार्यालयों की दशा को दर्शाया गया है। एक सामान्य श्रेणी के व्यक्तियों को नौकरी मिलने पर तुरंत ज्वाईन कराया जाता है परंतु एक आरक्षित व्यक्ति को महीनों के बाद कराया जाता है। उनके लिए संवैधानिक नियम का कोई मोल नहीं है। रिहाई, जंगल की रानी आदि सभी कहानियाँ अदभुत है जिसमें दलित समाज के दुख, दर्द, अपमान, उपेक्षा, तिरस्कार को संवेदनात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है।

'छतरी' तीसरी कहानी-संग्रह हैं, जो २०१३ में प्रकाशित हुई। इस कहानी- संग्रह में कुल बारह कहानियाँ हैं और दो परिशिष्ट कहानी, इनकी अधिकतर कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित चुकी थी। इनकी कहानियों में गहरी मानवीय संवेदना और सामाजिक जीवन के सरोकार परस्पर गुथें हुए दिखाई देते है। तरी कहानी-संग्रह में ग्रामीण जीवन का ऐसा चित्र है जहाँ लोग असुविधाओं में जीते है तोड़ती इच्छाएँ वेदनाओं का ऐसा संसार है, जहाँ इंसान जीवन जीने के लिए अपनी इच्छाओं को मार देता है। छतरी, चिड़ीमार, प्राइवेट वार्ड, गौकशी, शाल का पेंड़, रामेसरी अथकथा, बपतिस्मा, बँधुआ लोकतंत्र, मकड़जाल, कंडक्टरी, मंगलवार, आउटसोर्स, परिशिष्ट में वे साधारण वे ही विशिष्ट, दीपमाला के सवाल। इन कहानियों को लिखते समय लेखक उन तमाम वेदनाओं को पुन: जीते हैं जो लेखक को इस समाज से मिला था। कहानी की भूमिका में लिखते हे ,"इस कहानियों को शब्दबद्ध करते हुए अकसर मैं स्वयं गहरी वेदना और पीड़ा से गूज़रा हूँ चाहे वह तरी कहानी हो या शाल का पेड़, या फिर बपतिस्मा।" इस प्रकार लेखक ने इस कहानियों में दलित जीवन के अनुभव, संघर्ष, जिजीविषा, को कहानियों के केंद्र में रखा हैं। ओमप्रकाश जी की तीनों कहानी-संग्रह की कहानियाँ इनके जीवन की तमाम पहलुओं से जुड़ी हैं जो दलित जीवन के दर्द का हिस्सा है।

प्रस्तुत कहानियों के माध्यम से ओमप्रकाश जी हिन्दी जगत में चल रहे दलित-विमर्श और साहित्य-विमर्श के वैचारिक विचलन को भी समझने का प्रयास किया गया है। लेखक अपने कहानियों के माध्यम से दलितों की स्थिती में सुधार एवं समाज में बदलाव लाना चाहते हैं। हमारा समाज विकास के क्षेत्र में भले ही आगे बढ़ गया हो लेकिन सोच और विचारों में आज भी पीसा हुआ है, जो हर व्यक्ति अपने जाति के नाम से जाना जाता है लेकिन वह इंसानियत के संवेदनाओं को नहीं समझता।

५.३.४ अन्य रचना

दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र

ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह आलोचनात्मक पुस्तक २००१ में दिल्ली से प्रकाशित हुई। इनकी यह पुस्तक साहित्य के सौदर्यशास्त्र को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेखक ने पैनी आलोचनात्मक दृष्टि रखकर सौंदर्यशास्त्र की विवेचना की है। पुस्तक में इन्होंने दलित साहित्य की अवधारणा, दलित चेतना, दलित साहित्य की प्रासंगिकता, दलित साहित्य की धार्मिक, सांस्कृतिक मान्यताएँ, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, दलित साहित्य की वैचारिकता एंव दार्शनिकता, भाषा, मिथक, बिंम्ब, प्रतीक आदि पहलुओं का अनुशीलन किया है। उन्होंने एक नई दृष्टि रख कर दलित साहित्य को परिभाषित किया है। दलित साहित्य और उनकी सोच एवं दृष्टि को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। साहित्य के क्षेत्र में दलित साहित्य को समझने के लिए इनकी यह पुस्तक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

मुख्यधारा और दलित साहित्य

मुख्यधारा और दलित साहित्य यह पुस्तक ओमप्रकाश जी की आलोचनात्मक पुस्तक है जिसमें उन्होंने दलित विमर्श के वाद-विवाद संवाद पर विचार किया है। इसका प्रकाशन २००८ में हुआ। यह साहित्य दलित के संवेदनाओं को अभिव्यक्त करता है। मुख्यधारा के यथार्थ को उन्होंने वर्णवादी, सामंतवादी तथा परिवेश से कटी सौन्दर्यवादी धारा बताया है। इसमें भारतीय जाति व्यवस्था और दलित उत्पीड़न को यथार्थरूप से विवेचन किया है। जाति की उत्पत्ति उसकी अवधारणा, परिभाषा तथा उससे उपजी शोषण व्यवस्था को संवेदनात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है।

सफाई देवता

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गयी पुस्तक है। इसका प्रकाशन २००८ में हुआ। इस पुस्तक का उद्देश्य दलित समाज को मिली उत्पीड़न, शोषण, दमन का विश्लेषण करना तथा समाज के यथार्थ को उजागर करना है। समाज में वाल्मीकि और भंगी को समाज में किस तरह हीन और अछूत दृष्टि से देखा जाता है इसका इसमें विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ

इस पुस्तक का प्रकाशन २०१३ में हुआ। वाल्मीकि जी ने इस पुस्तक में दलित साहित्य की अन्त:चेतना को समझने की कोशिश की है। इसमें वाल्मीकि जी ने अपनी ही रचना प्रक्रिया के द्वारा दलित सहित्य को आन्तरिकता की तलाश के लिए कई स्तरों का संघर्ष करना पड़ता है उसके बारे में लेखक ने विस्तार से लिखा है।

'दो चेहरे' सन १९८७ में लिखी गई लघु नाटक है इस नाटक का देहरादून तथा अन्य शहरों में मंचन करके वाल्मीकि जी ने बहुत शोहरत हासिल की थी। ६० से अधिक नाटको में अभिनय, मंचन एवं निर्देशन, अनेक राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय सेमिनारों में भागीदारी। स्फुट साहित्य में पत्र-पत्रिकाओं में लेख, निबंध, भाषण और साक्षात्कार प्रकाशित हुए है। रानी दुर्गावती विश्व विद्यालय ,जबलपुर, अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय,अलीगढ़ में पुनर्श्या में

अनेक आख्यान दिए | प्रथम हिन्दी दलित साहित्य सम्मेलन १९९३ नागपूर के अध्यक्ष। २८वें अस्मितादर्श साहित्य सम्मेलन, २००८ चंद्रपुर महाराष्ट्र के अध्यक्ष रहे। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला सोसाइटी के सदस्य रहे।

५.३.५ पुरस्कार

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को नाटकों में अभिनय, निर्देशन एंव लेखन के रूप में कई सम्मानित पुरस्कार प्राप्त हुए है। डॉ. आम्बेडकर पुरस्कार (१९९३), परिवेश सम्मान (१९९५), जयश्री सम्मान (१९९६), कथाक्रम सम्मान (२००१), न्यू इंडिया बुक प्राइज (२००४), आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्मान (२००७) न्यूयार्क,अमेरीका, साहित्यभूषण सम्मान (२००८)। एक लंबी साहित्य साधना के उपरांत वाल्मीकि जी को विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया और एक दलित साहित्यकार के रूप में पहचाने गए।

निष्कर्तः ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सम्पूर्ण विवेचन के उपरांत वाल्मीकि जी ने अपने जीवन के कर्मक्षेत्र में समाज के बनाई इस धार्मिक व्यवस्था के कारण जीवन भर संघर्ष करते रहे। जातिवाद का सामना करके शिक्षा पूर्ण किया। एक दलित होने के कारण जीवन भर समाज ने उन्हें अछूत ही समझा। इस अछूतपन को जीने के कारण उनके साहित्य में समाज के प्रति आक्रोश दिखाई देता है। लेखक ने साहित्य के क्षेत्र में कई प्रसिद्ध रचनाएँ पाठकों को दी है जिसमें उनकी प्रमुख कृति आत्मकथा 'जूठन' है। इसमें लेखक ने जीवन के संघर्ष को विस्तार पूर्वक अभिव्यक्त किया है उन्होंने अपने आक्रोश को कविताओं एवं कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

५.४ सारांश

प्रस्तुत इकाई में ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व और कृतित्व को छात्र समझ गए होंगे। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के एक महत्वपूर्ण लेखक है। उनके लेखन से दलित साहित्य को नई दिशा मिल गई। उन्होंने डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर के विचारों को ग्रहण करके साहित्यिक क्षेत्र में एक मुकाम हासिल किया। अपने रचनाओं के माध्यम से दलितों की समस्या, नकार, विद्रोह को अभिव्यक्त किया। वह साहित्य के जरिए मानवमूल्यों को स्थापित करना उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। उनके आलोचनात्मक पुस्तकों ने भी दलित साहित्य के नये दृष्टिकोण को पहचान दी है। अपने जीवन के साहित्यिक क्षेत्र में एक लंबी ऊँचाई हासिल की जिसे एक इंसान को जानने के लिए साहित्य का लंबा सफर तय करना पड़ता है।

५.५ बोध प्रश्न

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि की साहित्य यात्रा और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए |
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर कैसे है ? स्पष्ट कीजिये |
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन पर डॉ. आम्बेडकर का प्रभाव किस प्रकार पड़ा ? स्पष्ट कीजिए |
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि उत्कृष्ट दलित साहित्यकार है इसे सौदाहरण समझाये |

५.६ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१) ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म कब हुआ ?

उत्तर : ३० जून, १९५०

२) ओमप्रकाश वाल्मीकि जाती से क्या थे ?

उत्तर : चमार

३) ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की अंतिम रचना कौन-सी है ?

उत्तर : छतरी

४) ओमप्रकाश वाल्मीकि के विचारधारा का प्रभाव किस पुस्तक के माध्यम से हुआ ?

उत्तर : डॉ. अम्बेडकर: जीवन-परिचय, लेखक - चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु

५) ओमप्रकाश वाल्मीकि किस फेक्ट्री में काम करते थे ?

उत्तर : आर्डिनेंस फैक्टरी

६) ओमप्रकाश वाल्मीकि के आत्मकथा का नाम क्या है ?

उत्तर : जूठन

७) ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की सफाई देवता पुस्तक कब प्रकाशित हुई ?

उत्तर : २००८

५.७ संदर्भ ग्रंथ

१. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि

२. दलित साहित्य : अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ - ओमप्रकाश वाल्मीकि

३. भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास - मोहनदास नैमिशराय

❄❄❄❄❄❄❄

६

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

१. जो मेरा कभी नहीं हुआ, २. जाति, ३. अंगूठे का निशान

इकाई की रूपरेखा

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ जो मेरा कभी नहीं हुआ

- ६.२.१ कविता परिचय
- ६.२.२ भावार्थ
- ६.२.३ निष्कर्ष
- ६.२.४ स्पष्टीकरण व्याख्या

६.३ जाति

- ६.३.१ कविता परिचय
- ६.३.२ भावार्थ
- ६.३.३ निष्कर्ष
- ६.३.४ स्पष्टीकरण व्याख्या

६.४ अंगूठे का निशान

- ६.४.१ कविता परिचय
- ६.४.२ भावार्थ
- ६.४.३ निष्कर्ष
- ६.४.४ स्पष्टीकरण व्याख्या

६.५ सारांश

६.६ बोध प्रश्न

६.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

६.८ संदर्भ ग्रंथ

६.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का अध्ययन करेंगे -

- 'जो मेरा कभी नहीं हुआ' कविता का परिचय और उसके भावार्थ का छात्र अध्ययन करेंगे।
- 'जाति' कविता का परिचय और भावार्थ को छात्र समझ सकेंगे।
- 'अंगूठे का निशान' कविता का परिचय और उसके भावार्थ का छात्र गहराई से अध्ययन करेंगे।

६.१ प्रस्तावना :

दलित कविता की विकास यात्रा में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है | उनकी कविता भारतीय व्यवस्था के दोहरे मापदंडों, सांस्कृतिक व्यवस्था के खोखले विचारों और धार्मिक अंधविश्वास तथा असमानता के विरुद्ध एक आक्रोश है| जो संघर्ष का रास्ता चुनती हुई, जातिवादी भेदभाव, अस्पृश्यता, कठमुल्लापन, ब्राह्मणवाद के प्रति विद्रोह करती है | इनकी कुल तीन कविता-संग्रह प्रकाशित है | ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता कल्पना लोक में नहीं, बल्कि जीवन के यथार्थ की अनुभूति है | इनकी कविता में वर्ण-व्यवस्था विरोध और सामाजिक विषमता के प्रति विक्षोभ है | 'अब और नहीं' कविता संग्रह की समस्त कविता भारतीय व्यवस्था के खोखले विचार और उनकी स्वार्थपण का पोल खोलती है| इस कविता संग्रह में संकलित 'जो मेरा कभी नहीं हुआ', 'जाति', 'अंगूठे का निशान' कविता दलित जीवन के भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है| इन कविताओं में कवि ने पारंपरिक शास्त्रों, ब्राह्मण वादी विचारधाराओं पर कटाक्ष किया है | जाति कविता के माध्यम से मनुष्यों के व्यवहारों पर प्रश्न उठाया है | उच्च-नीच के सभी अर्थ को अभिव्यक्त किया है | अंगूठे के निशान में कवि ने तमाम, इतिहासों पर प्रश्न चिन्ह लगाया है, जहाँ दलितों को उपेक्षित कर दिया गया है |

६.२ जो मेरा कभी नहीं हुआ

६.२.१ कविता परिचय :

'जो मेरा कभी नहीं हुआ' कविता में भारतीय सामाजिक व्यवस्था का क्रूर चेहरा दिखाया है| जिस धर्म, और संस्कृति में इनका जन्म हुआ उस व्यवस्था ने कभी उन्हें अपनाया ही नहीं | सदैव धर्मशास्त्रों ने नाम पर उपेक्षित ही रखा गया| और यह संवेदना मात्र लेखक की नहीं है सम्पूर्ण दलित समाज की है | भारतीय समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए शास्त्रों में वर्णव्यवस्था को कर्म के अनुसार चार भागों में विभाजित किया गया है | उसी व्यवस्था के उच्च वर्गों ने मनुष्य के कर्म के आधार पर ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित कर दिया है और निम्न कार्य करने वालों को शुद्र कहकर निम्न जाति का दर्जा दे दिया गया | शास्त्रों की दुहाई देकर उन पर उच्च जाति के लोगों ने अत्यचार किया और उन्हें अपने अधीन रखा | इसलिए कवि ने जन्म से जिस व्यवस्था को चाहा था, उसके विपरीत धार्मिक भेदभाव, जातिवाद, वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता जैसे माहौल में जन्म हुआ| कवि ने इस कविता के माध्यम से अपने दलितपन में जिए जीवन के तमाम विसंगतियों को अभिव्यक्त किया है| कवि ने गरीबी के दंश को झेला है | जिस परिवेश में उनका जन्म हुआ वहा रहना भी मुश्किल हो जाता है | वे निम्न वर्ग के होने के कारण आर्थिक रूप से अतिशय दयनीय थे | जूठन खाकर उन्होंने कई दिन व्यतीत किये | अस्पृश्यता का माहोल ऐसा था की जहाँ वे स्कूल जाते थे सवर्ण के बच्चे चूहड़े कहकर चिड़ाते थे | मास्टर साहब उन्हें स्कूल में सफाई करने का काम करवाते थे | इस प्रकार जीवन में मिली तमाम यातनाओं और असुविधाओं को कवि ने अपने कविता के माध्यम से दलित पैन और अपनी संवेदना को इमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया है |

६.२.२ कविता का भावार्थ :

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

1. जो मेरा कभी नहीं हुआ,
2. जाति,
3. अंगूठे का निशान

जो मेरा कभी नहीं हुआ

जन्म के समय/ सब कुछ वैसा ही नहीं था

जैसा मैंने चाहा था

बड़ा होने पर/घर था/ छत नहीं थी

खटिया थी बिस्तर नहीं था /

लिपा-पुता चुल्हा था/जो बदलता रहता था

अपनी जगह/ मौसम के साथ

स्कूल था/ जहां भरी जाती थी नस-नस में /जातीय हीनता

शब्दों की घुट्टी में घोलकर /नौकरी है /जहाँ पीछा करती नजरे

करने लगी खडा कठघरे में /यक़ीनन/बहुत मुश्किल है समय

जब चलना है आगे पीछे /दाए बाए /ऊपर निचे

अपने आपको बचाकर

जुटानी है रोटी सीधे चलते हुए /बिना किसी सिकवे सिकायत

कातिर गुहार के

सब कुछ था मेरे जन्म के पहले भी /और जन्म के बाद भी

लेकिन उसे अपने पक्ष में /कर लेने में रहा समर्थ

मेरी इस असमर्थता में/ बहुत बड़ा रहस्य था

मेरा धर्म का /जो मुझे बाँध कर तो/ चाहता है रखना

लेकिन वह मेरा कभी नहीं हुआ

भावार्थ :

प्रस्तुत कविता में कवि ने अपने जीवन से जुड़े जातिगत भेदभाव के कटु अनुभवों को व्यक्त किया है| कवि निम्न वर्ग में जन्म होने के कारण बचपन से ही अस्पृश्यता, भेदभाव, आर्थिक अभाव के साथ जीवन को व्यतीत करते आये है | बचपन से किशोरावस्था तक के जीवन-संघर्ष को संवेदनात्मक रूप से कविता के माध्यम से समाज की विसंगतियों पर प्रहार किया हैं | कवि स्वयं कहते है, मैंने जन्म लिया अर्थात वह जिस प्रकार मानवता को देखना चाहते थे, वैसा माहोल उन्हें कभी नहीं मिला | कवि का जन्म वहां होता है जहाँ उसे भारतीय सामाजिक व्यवस्था में चूहड़ा कहकर चिढ़ाया जाता है | वे जिस घर में जन्म लिए वह

आर्थिक रूप से दयनीय था| जो कहने को घर था लेकिन छत नहीं थी | खटिया था लेकिन सोने के लिए बिस्तर नहीं था | लिपा पुता चुल्हा था लेकिन मौसम के बदलते उसकी जगह निरंतर बदलती रहती थी | अर्थात मुख्यधारा के लोगों ने सदैव दलित समाज को अपने गाँव से उपेक्षित ही रखा | न उनके पास कमाने का कोई साधन न रहने का कोई ठिकाना ही रहता | कवि जिस माहौल में रहते थे जातिवाद, भेदभाव उन्हें निरंतर झेलनी पड़ती थी | जब वह स्कूल जाते थे, सवर्ण के बच्चे उन्हें चूहड़ा कहकर उनका उपहास करते थे | निम्न वर्ग से होने के कारण उन्हें पढ़ाई के नाम पर स्कूल में झाड़ू लगाने का काम दिया जाता था| शिक्षा के नाम पर मास्टरों से उन्हें गालियाँ ही सुनने को मिलती थी| यह इनकी अवस्था नहीं है, यह समूचे दलित वर्गों की यही दशा है| आज भी गाँव के बाहर उन्हें रहने का स्थान दिया जाता, पढाई के नाम पर दलित बच्चों का सिर्फ शोषण ही किया जाता | दलितों की यह स्थिति हमारे भारतीय समाज के क्रूर व्यवस्था को बयान करती है |

कवि अपने बचपन के स्कूली अनुभवों को वे व्यक्त करते हुए कहते है, स्कूल था लेकिन वहाँ भी बच्चों के मन में जातीय ऊँच-नीच का भेदभाव सिखाया जाता था | बच्चों के कोमल मन पर जातीय हीनता का जहर भरा जाता था| इस प्रकार शिक्षा में भी उन्हें सदैव जातिगत भेदभाव के कटु अनुभव ही प्राप्त हुए है| यह सिलसिला सिर्फ स्कूल तक ही नहीं थमा जब उन्हें नौकरी मिली वहां भी जहाँ शिक्षित वर्ग के लोग थे लेकिन संकुचित मानसिकता होने के कारण वहां भी कवि के साथ जातिगत भेदभाव किया जाता | कवि स्वयं अपने अनुभूतियों को व्यक्त करते हुए कहते है, नौकरी मिली लेकिन जातीयता की नजरे सदैव उनका पीछा करती रही है | जब भी कोई समय मिलता बार-बार उन्हें उनकी जाति का बोध कराया जाता| जाति के कठघरे में बार-बार उन्हें एक अपराधी के रूप में खड़ा कर दिया जाता था| ऐसे विषमता भरे सामाजिक माहौल में जीना बेहद मुस्किल हो जाता है | अपने आप को बचाकर चलना और दो वक्त की रोटी कमाना ऐसे जातिगत अस्पृश्यता भरे माहौल में बेहद मुश्किल हो जाता है| अपने आत्मसमान को बचाना और बिना किसी शिकायत के सीधे चलना |

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में धार्मिक भेदभाव, अस्पृश्यता का माहोल यह आज का नहीं है बल्कि सदियों पुराना है| कवि स्वयं कहते है जाति मेरे जन्म के पहले भी थी और मेरे बाद भी रहेगी | आधुनिक समय में कितने ही आन्दोलन हुए पर आज भी इस भेदभाव को मिटा नहीं पाए | साहित्य के माध्यम से लेखक ने भी इस भेदभाव को मिटाने के लिए कई भरसक प्रयास किये| सनातनी व्यवस्था धर्म के बन्धनों में बांधना चाहते है लेकिन संकुचित मानसिकता के कारण नही बांध पाए |

६.२.३ निष्कर्ष :

निष्कर्षत: प्रस्तुत कविता के माध्यम से सामाजिक वैषम्य तथा दलित जीवन के हीन दशा का वर्णन करते है| जहाँ जातिवादी व्यवस्था का विष बचपन से ही पिलाई जाती है | बचपन से दलित बालक को निम्न होने का एहसास कराया जाता है| अस्पृश्यता, जातिवाद, वर्णव्यवस्था की बेड़ियों में बांधकर आजीवन उन्हें प्रताड़ित किया जाता है| मुख्यधारा के लोग कितनी भी शिक्षा ग्रहित कर ले लेकिन वे अपने जातिवादी संकुचित मानसिकता को कभी नहीं मिटा सकते| गाँव हो या शहर आज भी दलितों को अपनी जिजीविषा के लिए

भटकना ही पड़ता है| अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष ही करना पड़ता है| जातिवादी व्यवस्था की यह खाई इतनी गहरी है उन्हें कभी एक होने ही नहीं देती| सवर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था से दलितों को ना ही विभक्त करना चाहती है ना ही उसे पूर्ण रूप से स्वीकारना ही चाहती है; सिर्फ उसे पाना गुलाम बनाकर रखना चाहती है| इस प्रकार कवि अपने जीवन के अनुभवों को व्यक्त कर दलित जीवन के यथार्थ का वर्णन करते है |

६.२.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) "स्कूल था

जहां भरी जाती थी नस-नस में

जातीय हीनता

शब्दों क घुट्टी में घोलकर"

संदर्भ: प्रस्तुत अवतरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक 'जो मेरा कभी नहीं हुआ' है | कवि ने इस कविता में जीवन में मिली हुई जातीय हीनता तथा उसके कारण भोगे अछूतपन को अभिव्यक्त किया है |

अर्थ : भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जातिवादी भेदभाव जन्म से ही सिखाया जाता है | जहाँ बच्चे समाज, परिसर और परिवार द्वारा सीखता है| इस पंक्ति के माध्यम से कवि भेदभाव की जड़ता पर प्रहार करते है | स्कूल जैसे शिक्षा मंदिरों में भी विद्यार्थियों के बीच ऊँच-नीच का भेदभाव वहाँ के मास्टरों द्वारा सिखाया जाता है | बच्चों ने नस-नस में जातीय विष भरी जाती है| शब्दों के माध्यम से उनके मस्तिष्क में जातीय हीनता के शब्द भरे जाते थे |

विशेष : इस पक्ति में कवि ने सवर्णों की मानसिक दशा और भेदभाव फैलाने के जड़ पर प्रहार किया है |

६.३ जाति

६.३.१ कविता का परिचय :

ओमप्रकाश वाल्मीकि स्वयं कहते है "भारतीय समाज में 'जाति' एक महत्वपूर्ण घटक है | 'जाति' पैदा होते ही व्यक्ति की नियति तय कर देती है | पैदा होना व्यक्ति के अधिकार में नहीं होता | यदि होता तो मैं भंगी के घर पैदा क्यों होता ? जो स्वयं को इस देश की महान सांस्कृतिक धरोहर के तथाकथित अलमबरदार कहते हैं, क्या वे अपनी मर्जी से उन घरों में पैदा हुए है ?" अतः जन्म लेना किसी के भी हाथ में नहीं है | फिर भी उच्च वर्गों ने उसे कर्म का नाम दे दिया | यानी जो अच्छा कर्म किया होगा वो उच्च जाति में जन्म लेगा और जो निम्न कर्म किया होगा वो निम्न जाती में पैदा होगा| इस प्रकार कथित धारणाओं को आधार बताते हुए सवर्ण दलितों पर अपना अधिकार समझने लगे| कवि इस कविता के माध्यम से जातिवादी व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाते है | जातिवादी व्यवस्था के भूमि पर उपजी दुनिया

मानवता को ख़त्म कर रही है | जातिवाद समाज में दीमक की तरह है, जो अन्दर ही अन्दर मानवीय व्यवस्था को खाए जा रहीं है | कवि इस कविता के माध्यम से जाति पर सवाला उठाते है कि जो निम्न जाति में जन्म लेने के कारण उन्हें जन्म से अछूत कर दिया जाता है| लेकिन सभ्यता का चोला पहने समाज को ठगने वाले सभी लोग वो किस वर्ग के कहे जायेगे उच्च की नीच, उनकी जाति क्या है ?

६.३.२ कविता का भावार्थ :

जाति

देखे है यहं हर रोज / अलग-अलग चेहरे

रंग रूप में अलग /बोली-बानी में अलग

नहीं पहचानी जा सकती /उनकी जाति

बिना पूछे!/मैदान में होगा जब जलसा

आदमी से जुड़कर आदमी /जुटेगी भीण्ड

तब कौन बता पायेगा /भीड़ की जाति

भीड़ की जाती पूछना /वैसा ही है

जैसे नदी के बहाव को रोकना

समंदर में जाने से /'जाति' आदिम सभ्यता का

नुकीला औजार है /जो सड़क चलते आदमी को

कर देता है छलनी

एक तुम हो / जो अभी तक चिपके हो जाति से

न ... जाने किस...ने /तुम्हारे गले में

दाल दिया है जाती का फंदा /जो न तुम्हे जीने देता है/न हमें

लुटेरे लुट कर जा चुके है /कुछ लुटाने की तैयारी में है

मैं पूछता हूँ /क्या उनकी 'जाति' तुमसे ऊँची हैं ?

भावार्थ :

जाति मूलतः संस्कृत का शब्द है, जिसका सामान्यत: अर्थ जन्म या उत्पत्ति से माना जाता है, किन्तु समय के साथ-साथ शब्द के अर्थ परिवर्तित होते गये और इस तरह शब्द अपना मूल अर्थ छोड़कर दूसरे अर्थ को परिभाषित कर रहा है |

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

1. जो मेरा कभी नहीं हुआ,
2. जाति,
3. अंगूठे का निशान

हिंदी साहित्य के जाने-माने दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी कविता ‘जाति’ में सामान्यत: समाज में हो रहे विभेदीकरण को स्पष्ट किया है | ओमप्रकाश वाल्मीकि जी बहुत ही उदार और स्वतंत्रतावादी विचारधारा के कवि है | उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में जन्में रूढ़िवादी प्रथाओं को सदैव खंडित किया है | ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का मानना है कि इस पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग रहते है | यहाँ निवास करने वाले मनुष्य कहीं बोलियों की वजह से भिन्न है तो कहीं रंग-रूप की वजह से भिन्न है | इतने भिन्न-भिन्न होने के बावजूद भी हम पूरे समाज में संपृक्त तरीके से रहते है | एक पूरे संपृक्त इस तरह भिन्न-भिन्न होने की वजह से इनकी जाति का पता हमें तब तक नहीं चलता, जब तक वे स्वयं अपनी जाति का परिचय हमें न दे | अगर व्यक्ति अपनी जाति न बताये तो शायद ही कोई उसकी जाति को जान पायेगा |

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी आगे कहते है कि एक अकेले व्यक्ति की जाति का पता लगाना कोई मुश्किल काम नहीं है किन्तु जब वही व्यक्ति समूह या जुलूस में खड़ा हो तो शायद ही उसकी जाति का पता लगाया जा सकता है क्योंकि भीड़ की कोई जाति नहीं होती और न ही कोई चेहरा ही होता है | परिणामत: हम कह सकते है कि भीड़ में खडे लोगों की जाति का पता लगाने का अर्थ है, रेगिस्तान में सुई ढूँढना जैसा है | इस तरह व्यक्ति जाति के कारण समाज में अलगाव वाद का जन्म होता है और फिर समाज धीरे-धीरे अलग-अलग जाति में बटकर सिमट जाता है | अंत में कवि उन लोगों को संबोधित करते है जो समाज में सभी बनकर लोगों के मन में जाति का विष घोलते है | जो हेतेशी मन कर लोगों के विश्वास को ठगते है | कवि पूछते है उनकी जाति क्या है ? क्या वो तुमसे ऊँचे है | अतः इस कविता के माध्यम से कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने हमें समाज के ऐसी रुढ़िवादी परम्परा से अवगत करा कर, समाज को नई चेतना और जागृत करने का कार्य किया है |

६.३.३ निष्कर्ष :

जातीय व्यवस्था हमारे भारतीय समाज में कालिक के सामान है| जहाँ मनुष्य को मनुष्य नहीं एक पशु समझकर उसके साथ पशुवत जैसा व्यवहार किया जाता है | इस कविता के माध्यम से निष्कर्षतः कह सकते है की कवि ने जाति व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह खड़ा किया है | जहाँ भिन्न-भिन्न लोगों की भीड़ में जो रंग-रूप और बोली से अलग-अलग भीड़ में मनुष्य के जाति को पहचानना मुश्किल हो जाता है | वहाँ मनुष्य जन्म के आधार पर निम्न और उच्च का भेद कैसे पहचान लेता है| जन्म के आधार पर कैसे उसकी नियति तय कर देती है| समाज में ऐसे लोग भी है सभ्य बन कर लोगों के मन में जाति का विष घोलते है| सामाजिक हितेषी बनने का ढ़ोग करते है| लोगों को लुट कर समाज में उच्च प्रतिष्ठित व्यक्तियों में शामिल हो जाती है | क्या ऐसे लोग समाज में ऊँचे है| जो इमानदारी से जीवन यापन करते है | जो लोगों की सेवा करते है वे निम्न है | इस प्रकार समाज की व्यवस्था पर कवि व्यंग करते है |

६.३.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) देखे है यहं हर रोज / अलग-अलग चेहरे

रंग रूप में अलग /बोली-बानी में अलग

नहीं पहचानी जा सकती /उनकी जाति

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह ‘अब और नहीं’ नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक है ‘जाति’ | कवि ने इस कविता में कवि ने जातिवादी व्यवस्था से उपजी भेदभाव और अलगाव वाद को प्रस्तुत करती है |

अर्थ : जाति यानी जन्म, उत्पत्ति | जहाँ जन्म से ही मनुष्यों का भविष्य बता दिया जाता है| जन्म से कौन ऊँचा है और कौन नीचा है उसका प्रमाण दे दिया जाता है | यह व्यवस्था उन चेहरे को कैसे पहचाने जो रंग रूप में अलग है | जिनकी भाषा-बोलियाँ भिन्न है लेकिन उनके कार्य निम्न से भी निम्न है | जो लोगों को ठगने का काम करती है | उनका शोषण करती है और समाज में सभ्य बने रहते है उनकी जाति कैसे पहचानोगे |

विशेष : इस पक्ति में कवि में लेखक ने अलग-अलग चेहरे, रंग-रूप, बोली बानी को व्यंग्यात्मक रूप से प्रयोग किया है| यहाँ पर सामाजिक ऐसे लोगों पर करारा प्रहार किया है जो सभ्य बने रहने की आड़ में लोगों का शोषण करते है |

६.४ अंगूठे का निशान

६.४.१ कविता का परिचय :

इतिहास की परिधि में इतिहास कारों ने हमेशा से उच्च वर्ग के ही इतिहास को उनके बलिदान को उनके ही शोर्य वीरता पर लेखन किया है | जहाँ मंगल पांडे के वीरता को दर्शाया वहीं संथाल की क्रान्ति का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया | क्योंकि इतिहास लिखने वाले भी ब्राह्मणवादी समाज के ही थे | हजारों सालों से राज करती हुई ब्राह्मणवादी समाज के क्रूरता को कहीं भी लेखन नहीं किया गया | निम्न वर्गों को तरह-तरह से प्रताड़ित करना | दलितों के प्रताडनाओं तथा उनके दर्द को कहीं भी इतिहास में दर्ज नहीं किया गया | ब्राह्मणों के वर्चस्ववादी सत्ता के कारण दलित समाज हमेशा शिक्षा से वंचित रहे | जिसके कारण वे अपना इतिहास स्वयं नहीं लिख पाए | शास्त्रों के चोट से उन्हें इतना पंगु बना दिया की वह अपना अधिकार भी नहीं समझ पाए | दलित व्यवस्था के दयनीय जीवन के कारण को पहचानते हुए कवि दलितों स्वयं अपना इतिहास दर्ज करने का आवाहन करते है |

६.४.२ कविता का भावार्थ :

अंगूठे का निशान

इतिहास की परिधियों से बाहर /नहीं खड़े हुए अपनी इच्छा से
वृत्ताकार दायरे में भी /चक्कर नहीं काटे
चाँद - तारों के लिए /जोर - जबर की दहशत में
नहीं भटके शहर - दर - शहर
दुच्चे लोगों की ठगी ने /बदल दी चेहरों की रंगत
रात और दिन का कभी नहीं जाना /सांसों में भरकर धूल के गुवार
जीये बरसो बरस/उसी तरह जैसे जिये पुरखे
इतिहास जानना /पहचानता/गढ़ना

नहीं सीख पाए
भूल गए पुरखो की वे तमाम स्मृतियां/जिन्हें रखना जरूरी था सहेजकर
भविष्य के अंधेरों के लिए/गोल घेरों से बाहर खदेड़े गए
हम नहीं जानते
क्यों मटमैला है इतना /मौसम का रंग
धूप झुलसाती है क्यों /हमारी ही त्वचा
बहा ले जाती है बारिश /हमारे ही घर
क्यों मर जाते हैं ठंड में /बूढ़े माँ - बाप हमारे ही
थोड़ा - थोड़ा जानने लगा हूं /टुच्चे लोगों की असलियत
कानफाड़ू शास्त्रीयता /और छद्म शब्द जाल का रहस्य
सच बोलने से नहीं रोक पायेंगे
अब शातिर देवता भी
फड़फड़ायेंगे इतिहास पृष्ठ /कहेंगे आओ , दर्ज कर दो
किसी भी पन्ने पर /अपने अंगूठे का निशान

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

1. जो मेरा कभी नहीं हुआ,
2. जाति,
3. अंगूठे का निशान

भावार्थ :

समाज के मुख्यधारा के लोगों ने प्रारंभ से ही निम्न वर्गों की अस्मिता पर प्रश्न चिह्न लगाते आये है | उन्हें अपने ही गाँव से बहिस्कृत कर, उन्हें बाहर रहने के लिए विवश किया | इतिहास के पन्नों में भी इनके अस्तित्व को दर्ज नहीं किया गया, वहाँ भी उन्हें उपेक्षित ही रखा गया इसलिए कवि स्वयं कहते है, इतिहास के परिधियों के बाहर बिना उनकी इच्छा से उन्हें बाहर कर दिया गया | समाज के बनाए दायरे में भी अपने अधिकार और मूल्यों को पाने के लिए भी भटकते रहे उन्हें सदैव उन्हें अपमानित किया गया| उन्हें उनके ही अधिकारों से वंचित किया गया | जातिवाद के फैले दहशत के कारण उन्होंने कभी वे अपना आवाज बुलंद नहीं कर पाए | हर समय धार्मिक ठेकेदारों के ब्राह्मणी समाज के कुछ लोगों ने मानवीयता के चहरे ही बदल दिए | जिस प्रकार दलित समाज में उनके पुरखों ने उपेक्षाए, प्रताड़ना, दुःख, संघर्ष, सवर्णों से अपमान ही सहते आये है | आज भी वह समय नहीं बदला है, आज भी दलितों को समाज से उपेक्षित रखा गया | जिसके कारण उनके बलिदान उनके स्वाभिमान और अस्तित्व को इतिहास के पन्ने में जगह नहीं मिली और धीरे-धीरे उनका वजूद खोता चला गया | इस कारण आज दलित समाज अपने पूर्वजों की स्मृतियों से वंचित हो गया है; किंतु अब समाज में जागरूकता आई है हम बुद्धिवादी चतुर चालाक इतिहासकारों शास्त्रीय पंडित के असलियत को समझने लगे हैं और अब हम अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक हो गए हैं हमारे पूर्वज ही नहीं सही लेकिन अपना अस्तित्व को इतिहास के पन्ने में जागरूक दर्ज कराएं |

कवि कहते हैं इतिहास लिखने वालों ने भी दलितों के कार्य बलिदान उनके वर्णों से मिली प्रताड़ना को अंकित नहीं किया ताकि जिससे पता चल सके कि आखिर क्यों वर्तमान समय में आज भी हमें गांव गांव के बाहर उपेक्षित रखा जाता है | आज भी मजदूरी करने के लिए विवश किया जाता है उनकी आर्थिक स्थिति इतनी विषम है कि बाढ़ से कुछ दिनों में उनके

कच्चे मकान बह जाते हैं | दयनीय स्थिति में जब कड़ाके की ठंड पड़ती है तब उनके पास रखने के लिए तन पर वस्त्र नहीं मिल पाते और गरीबी में ठंड के कारण वे दम तोड़ देते हैं | ब्राह्मणवाद पर अपना विरोध प्रकट करते हुए कहते हैं ब्राह्मणों ने सदैव शास्त्रों के आड़ में दलितों को मजबूर किया है उन्हें उनके अधिकारों से वंचित किया है और हमेशा अपने सामने अधीन बना कर रखा है | देवी-देवता का आड़ लेकर सिर्फ दलितों को अपना दास बनाकर रखते है | कवि आक्रोशित भाव में कहते है कि वर्त्तमान में आज दलितों को शिक्षा से जागृत होने लगे हैं | अब ब्राह्मण समाज छंद और अपने शब्दों के जाल के रहस्य में अब हमें बाँध नहीं पायेंगे | साहित्य के माध्यम से दलित अब अपना इतिहास स्वयं लिखेंगे |

६.४.३ निष्कर्ष :

निष्कर्षतः इस कविता के माध्यम से कवि ने तमाम इतिहास के पृष्ठों पर प्रश्नचिन्ह लगाये है जहाँ दलितों के परिश्रम, बलिदान उनके कार्य तथा उनके जीवन को दर्ज नहीं किया गया है| दलितों को समाज में अछूत तो रखा गया ही अपितु यहाँ भी उन्हें नहीं लिखा गया | यह सभी ब्राह्मण वर्ग की साजिस है जिसके कारण आज तक दलितों को उनका अधिकार और सम्मान नहीं मिला पाया | इसलिए लेखन के माध्यम से तमाम दलित साहित्यकारों को आवाहन करते है की हमे खुद ही इतिहास के पृष्ठों पर अपने अंगूठे के निशान छोड़ने होंगे और लिखना होगा हमें स्वयं का इतिहास |

६.४.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) कानफाडू शास्त्रीयता /और छद्म शब्द जाल का रहस्य

सच बोलने से नहीं रोक पायेंगे

अब शातिर देवता भी

फड़फड़ायेंगे इतिहास पृष्ठ /कहेंगे आओ , दर्ज कर दो

किसी भी पन्ने पर /अपने अंगूठे का निशान

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक है 'अंगूठे का निशान'| कवि ने इस कविता में दलितों की अस्मिता को इतिहास के पन्नों पर भी प्रश्नचिन्ह लगाते हुए, उनके दयनीय स्थिति और अधिकारों के बारे में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते है |

अर्थ : कवि कहते है, यह कानफाडू धार्मिक शास्त्रीय ग्रन्थ जिसके कारण ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने उन्हें गुलामी का जीवन जीने पर मजबूर किया | वर्तमान में वही शास्त्रों के रहस्य दलितों के विकास की यात्रा में बाधक नहीं बनने देंगे | आज का समय प्रायोगिक समय है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के लिए सजग है| आज के समय में वे नहीं रोक पाएंगे और उनके देवता भी दलितों के विकास में बाधक नहीं बन पाएंगे वे हमेशा शास्त्र और देवता की आड़ में यह दलितों को यातनाये ही देते आये है | अब वे स्वयं शिक्षा ग्रहण करके अपने इतिहास को दर्ज करेंगे | और इतिहास के पन्ने भी फड़फड़ाकर स्वयं उनका अस्तित्व दर्ज करेगी |

विशेष : इस पक्ति में कवि ने कानफाडू, जाल, रहस्य, फडफडाना प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया है | हमारे इतिहासकारों और इनके इतिहास-ग्रंथो पर प्रश्नचिन्ह लगाया है, जहाँ दलितों को वहां भी उपेक्षित रखा गया है |

६.५ सारांश

प्रस्तुत कविताओं में कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन से जुड़े जातिगत भेदभाव और उन्हें आये हुए अनुभव को दर्शाते है। दलित परिवार में जन्म लेने से उन्हें कही अभावों में जीवनयापन व्यतीत करना पड़ता है। और भारतीय समाज के जाती को लेकर व्यक्ति की नियति तय की जाती है। 'अंगूठे का निशान' में मुख्याधारा के लोग दलितों को बहिष्कृत कर बाहर रहने के लिए विवश करते है।

६.६ बोध प्रश्न :

१. ‘जो कभी नहीं हुआ’ कविता में चित्रित दलित संवेदना को व्यक्त कीजिये |

२. ‘जाति’ कविता का भावार्थ स्पष्ट कीजिये |

३. ‘अगुठे का निशान’ कविता का भावबोध स्पष्ट कीजिये |

६.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

१) कवि के अनुसार स्कूलों में नस-नस में क्या भरी जाती है |

उत्तर : जातीय हीनता

२) पीछा करती नज़ारे कवि को कहाँ खड़ा कर देती है |

उत्तर : जातीय कटखरे में

३) कवि के अनुसार क्या उनका कभी नहीं हुआ ?

उत्तर : धर्म

४) किसकी जाती नहीं छुपाई जा सकती ?

उत्तर : भीड़

५) आदिम सभ्यता का औजार क्या है ?

उत्तर : जाति

६) कवि को कौन सच बोलने से नहीं रोक पायेंगे

उत्तर : कानफाडू शास्त्रीयता

७) इतिहास की परिधियों के बाहर किसे खड़ा कर दिया गया है |

उत्तर : दलित समुदाय को

८) सच बोलने से अब कौन नहीं रोक पायेंगे ?

उत्तर : शातिर देवता

९) जाति शब्द मूलतः किस भाषा का शब्द है ?

उत्तर : संस्कृत

१०) कवि के अनुसार रहने का स्थान कब बदलता रहता था ?

उत्तर : हर मौसम

६.८ संदर्भ ग्रंथ :

१. अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

❊❊❊❊❊❊❊

७

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

१. काले दिनों में, २. विस्फोट, ३. मकड़जाल, ४. जहर

इकाई की रूपरेखा

७.० इकाई का उद्देश्य

७.१ प्रस्तावना

७.२ काले दिनों में

७.२.१ कविता परिचय

७.२.२ भावार्थ

७.२.३ निष्कर्ष

७.२.४ स्पष्टीकरण व्याख्या

७.३ विस्फोट

७.३.१ कविता परिचय

७.३.२ भावार्थ

७.३.३ निष्कर्ष

७.३.४ स्पष्टीकरण व्याख्या

७.४ मकड़जाल

७.४.१ कविता परिचय

७.४.२ भावार्थ

७.४.३ निष्कर्ष

७.४.४ स्पष्टीकरण व्याख्या

७.५ जहर

७.५.१ कविता परिचय

७.५.२ भावार्थ

७.५.३ निष्कर्ष

७.५.४ स्पष्टीकरण व्याख्या

७.६ सारांश

७.७ बोध प्रश्न

७.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

७.९ संदर्भ ग्रंथ

७.० इकाई का उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित कविताओं का अध्ययन करेंगे -

- 'काले दिनों में' कविता का परिचय और उसके भावार्थ का छात्र अध्ययन करेंगे।
- 'विस्फोट' कविता का परिचय और भावार्थ को छात्र समझ सकेंगे।
- 'मकड़जाल' और 'जहर' कविता का परिचय और उसके भावार्थ का छात्र गहराई से अध्ययन करेंगे।

७.१ प्रस्तावना :

हिंदी दलित कविता की विकास-यात्रा में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविताओं का एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। आक्रोशजनित गम्भीर अभिव्यक्ति में जहाँ अतीत के गहरे दंश हैं, वहीं वर्तमान की विषमतापूर्ण, मोहभंग कर देनेवाली स्थितियों को इन कविताओं में गहनता और सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है। दलित कविता के आंतरिक भावबोध और दलित चेतना के व्यापक स्वरुप को इस संग्रह की कविताओं में वैचारिक प्रतिबद्धता और प्रभावोत्पादक अभिव्यंजना के साथ देखा जा सकता है। दलित कवि का मानवीय दृष्टिकोण ही दलित कविता को सामाजिकता से जोड़ता है। 'अब और नहीं' संग्रह की कविताओं में ऐतिहासिक सन्दर्भों को वर्तमान से जोड़कर मिथकों को नए अर्थों में प्रस्तुत किया गया है। दलित कविता में पारंपरिक प्रतीकों, मिथकों को नए अर्थ और संदर्भो से जोड़कर देखे जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जो दलित कविता की विशिष्ट पहचान बनाती है। इस संग्रह में संग्रहीत 'काले दिनों में', 'विस्फोट', 'जहर', 'मकड़जाल' इन कविताओं में कवि ने सदियों से मिलने वाले यातनाओं तथा संताप को व्यक्त करते हुए सवर्ण समाज के जातीय काले पक्ष को दिखाया गया है | 'विस्फोट' कविता में दलितों का आतंरिक आक्रोश व्यक्त है | जिसमें वेदना ,दर्द, छटपटाहट, तृष्णा आदि है, जो सदियों से आक्रोश के रूप में विस्फोट हुआ है | 'जहर' कविता में जातीय हीनता का जहर है, जो दलितों के रक्तों में जमा है| 'मकड़जाल' में बौद्धिक शिक्षित सवर्ण वर्गों की संकुचित मानसिकता को लेकर कविता में उनकी मानसिक घृणा का रूप प्रदर्शित करते है| अतः इस संग्रह की कविताओं का यथार्थ गहरे भावबोध के साथ सामाजिक शोषण के विभिन्न आयामों से टकराता है और मानवीय मूल्यों की पक्षधरता में खड़ा दिखाई देता है । ओमप्रकाश वाल्मीकि की प्रवाहमयी भावाभिव्यक्ति इस कवितों को विशिष्ट और बहुआयामी बनाती है।

७.२ काले दिनों में

७.२.१ कविता परिचय :

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस कविता में हजारों वर्षों की भोगी यातनाओं को स्मरण करते हुए तथा उसे अपने जीवन से समतुल्य करते हुए दलित जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त किया है | ब्राम्हणों के साजिशों ने उन्हें अंधकूप में धकेल दिया है, जहाँ से निकलने के लिए निम्न वर्ग सदियों से छटपटाहट रहा है| कवि ने इस कविता में सवर्णों की शब्दों की चालाकियाँ

जहाँ मुह में राम बगल में छुरी जैसा व्यवहार की कटु आलोचना करते है| शास्त्रों की आड़ में सदियों से शुद्र कहकर उन्हें उन्हीं के अधिकारों से वंचित रखा, पानी भी छूना उनके लिए निषिद्ध कर दिया गया| पशुओं के भाति जीने के लिए मजबूर कर दिया | कवि काले दिनों की सभी यातनाओं इस कविता में संवेदनात्मक रूप से स्पष्ट करते है |

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१. काले दिनों में,
२. विस्फोट,
३. मकडजाल,
४. जहर

७.२.२ कविता का भावार्थ :

काले दिनों में

विनाशकारी साजिशों के निशान
मौजूद हैं /मेरे सीने और पीठ पर
दे रहे हैं गवाही/अतीत के स्याह दिनों की
शब्दों की कारीगरी से /छिपाओगे जितना
उघड़ेंगे और ज्यादा / दिखायी देगी तुम्हारी क्रूरता

तमाम कलाबाजियों जायेंगी व्यर्थ
नहीं ढक पाएंगी/अमावस्य - सी काली रातों को
भयानक शक्ल के देवता भी /नहीं बचा पाएंगे
तुम्हारा वजूद

मेरी आंखों में बसी दहशत /घृणा में बदल रही है
उस धर्म ग्रंथ के विरुद्ध /जो रास्ते में खड़े है
कटीले झाड़ झड़ाह की तरह /अवरोध बनकर

गंदे जर्जर पन्नों की इबारत/ मैं नहीं पढ़ पाया
तुम्हारे पाँव की आहटें/ पहचान लेता हूँ अच्छी तरह
अँधेरे में भी /तुम्हारे पदाघात सीने को दरकाते हैं।
नहीं रहने देते सही सलामत/मेरुदंड भी
टीसता है दर्द पसलियों में /एक - एक शब्द का
जिसे रचा है तुमने/ मेरे जिस्म पर काले दिनों में !

भावार्थ : इस कविता में कवि ने अतीत के काले चित्रों को अभिव्यक्त करते है | जहा दलित समाज को सवर्णों द्वारा अपमान, तिरस्कार ही मिले है| कवी को अपने बचपन में सवर्णों द्वारा मिली अपमान को याद करते हुए लिखते है जब वह बचपन में स्कूल जाया करते थे उन्हें शिक्षा के बदले सिर्फ पीठ पर मार के निशान मिलते थे | कवि कहते है जिस इतिहास को क्रूरता को जितना छुपाया जाएगा आज के वर्तमान समय में उतने ही इनके काले कारनामें सामने आते जायेंगे | तमाम कालाबाजरी, भष्टाचार भी देवता नहीं छुपा पाएंगी |

कवि कहते है, निम्न वर्ग के मन आक्रोश से भरा हुआ है | मनुस्मृति जैसे धर्म ग्रन्थ भी अब उनके अधिकारों के आड़े नहीं आ सकती है | जो प्राचीन ग्रन्थ है जो आज के समय में जर्जर बन चुके है | मैं उसे नहीं पढ़ पाया यानी वो सवर्णों ने हमें उपेक्षित कर दिया | आज भी ब्राहमण, सामंत, कठमुल्ला पहचान लेती है, अंधेरों में थी| उनकी साजिशों की आहाटे| सवर्णों के किये गए छल-कपट मेरे सीने में आज भी रहा-रह कर दस्तक दे रही है | उनके किये उए अत्याचार आज भी खड़े होने नहीं देते | आज भी उनके मार के निशान दलितों के शरीर पर बने हुए है | जिसकी पीढ़ा आज भी दर्द बन कर कह रही है |

७.२.३ निष्कर्ष :

इतिहास में दर्ज दलित जीवन के काले पक्षों को उजागर करते है | कवि इस कविता में ब्राह्मणों के काले चेहरे और उनकी जातीय हीनता से भरी मानसिकता को बाया करते है | जहाँ सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए ब्राह्मणवादी सत्ता शूद्रों का शोषण करती आई है | शास्त्रों की दुहाई देकर सदियों से ब्राह्मणों ने शिक्षा, पूजा-पाठ, धार्मिक क्रिया से वंचित रखा | अस्पृश्य कहकर अपने ही गाँव के पानी से अछूत कर दिया| पशुओं की भांति भटकने पर मजबूर कर दिया | ब्राह्मणों द्वारा दिए सभी प्रताडनाएं मानवता को ताड़-ताड़ कर देती है | इस प्रकार काले दिनों में मिले सभी प्रताड़नाओं की कवि संवेदनात्मक रूप से पाठकों के सामने अभिव्यक्त करते है |

७.२.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) मेरी आंखों में बसी दहशत /घृणा में बदल रही है

उस धर्म ग्रंथ के विरुद्ध /जो रास्ते में खड़े है

कटीले झाड़ झड़ाह की तरह /अवरोध बनकर

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह ‘अब और नहीं’ नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक ‘काले दिनों में’ है | कवि ने इस कविता में हजारों वर्षों में मिले दलितों के यातना भेरे जीवन को काले दिनों में संबोधित किया है | जिसमें वर्षों से भरी दहशत वर्तमान समय में आक्रोश बनकर उभरी है | अपने सवर्णों के प्रति इसी घृणा, नफरत को अभियक्त करते है |

अर्थ : प्रस्तुत पक्ति में कविं ने सवर्णों के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते है कि सदियों से जिन निम्न वर्गों को सवर्ण समाज ने प्रतिबंधियाँ लादकर उनको गुलाम बनाकर रखा है | जो दलितों को तमाम यातनाएँ देकर उनके आँखों में दहशत भर दिए है | आज समय बदल गया है वर्तमान समय में वही दहशन अब घृणा में बदलती जा रही है| सभी धार्मिक ग्रथों के प्रति कवि के मन में घृणा भर गई है | जिसके कारण सदियों से निम्न वर्गों को प्रताड़ित किया गया | कटीले झाड़ बनकर दलितों के मार्ग को अवरुद्ध करते रहे |

विशेष : कवि ने इस कविता में कटीले झाड जैसे बिम्बों का प्रयोग किया है | सवर्णों के प्रति अपने हृदय के आक्रोश तथा घृणा को व्यक्त किया है |

७.३ विस्फोट

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१. काले दिनों में,
२. विस्फोट,
३. मकडजाल,
४. जहर

७.३.१ कविता परिचय :

कवि ने यहाँ दलितों के आतंरिक आक्रोश की विषमता को विस्फोट कहा है| जहाँ आतंरिक क्रोध ने उनके बौद्धिक शक्ति का हनन कर लिया दिया है जहाँ वे सभी मानवीयता भूल जाते है और पुन: उसी अँधेरे रथ को वे भविष्य खीच लाते है| लेखक ने इस कविता में विद्रोह का वीभात्स्व चेहरा दिखाया है | जहाँ आतंरिक द्वेष के कारण मानवीयता के सम्बद्ध सब टूट जाते है | उस आक्रोश उस युद्ध को नकारते है जहाँ व्यक्ति अपना ही सपना झुलसा देता है उसी आग में |

७.३.२ कविता का भावार्थ :

विस्फोट

विस्फोट की उत्तेजना में/ उत्सव मनाते हाथ
खींच लाए हैं/भविष्य की आग में झुलसा
अंधेरे का रथ
युद्ध उन्माद में/मुश्किल होता है
रास्ता ढूंढ पाना/ बेमानी हो जाती है
सपनों की तलाश
पगडंडियों पर बिखरी किरिंचे
कर देती है/ लहूलुहान तलवों को
उल्लसित चेहरे/ जो दे रहे हैं देश निकाला
तथागत को
तथागत जानते हैं/ इस बार घर छोड़ा
तो लौट कर आना/संभव नहीं होगा

भावार्थ : विस्फोट का अर्थ है निम्न वर्गो का संचित आक्रोश हैं जो विस्फोट की उत्तेजना में धधक रही है| उनका आंतरिक ज्वर इतना विस्फोटित हो चुका है कि नफरत की आग में मानवता भी झुलसती जा रही है और भविष्य के आग में उनके सुनहरे सामने जलते जा रहे है पुन: वही पुरानी स्थिति वर्तमान में दिखाई देने लगी है जैसे वे पुनः अँधेरे का रथ वे खीच लाये है | वापस वही आकर खड़े हो गए है जहाँ पहले थे | बदले लेने की आक्रोश में हम अपने ही सपने जलाते जा रहे हैं |आपसी युद्ध में सपनो की तलाश कर पाना बेहद मुश्किल हो जाता है | आक्रोश के आग में सत्य का न्याय नहीं पर पाते एक प्रकार से वह बैमानी हो जाती है| जिन सपनों के लिए आगे बढ़े उसी सपनो को पूरा करने में बेईमान हो जाती है | सवर्णों ने व्यवस्था का अधिकार तो दिया लेकिन उसे अपनी मुढ़ी में रख कर जहा सिर्फ निम्न वर्ग को हर समय हर कदम पर अपनी आजादी के लिए प्रताड़ित ही किया जाता है | जैसे वह पगडंडियों पर तो चल रहे है लेकिन उसपर कई किरिचें बिखरी है, जो उनके सपनों को लहुलिहन कर देता है |

हमारे देश के ऐसे चेहरे जो अपने आप को देश हितेषी बताते है वही आज के तथागत बड़े विचारक बुद्ध को भी निकाल दिया गया है| आज की ऐसी व्यवस्थ में जो वे एक बार निकल गए है दुबारा उनका इस दलदली माहौल में आना संभव नहीं है|

७.३.३ निष्कर्ष :

कवि ने प्रारंभिक दिनों के दलितों के साथ घटित हुए दारुनिक जीवन को स्मरण करते हुए वर्तमान स्थिति को उजागर किया है | जहाँ मनुष्य अपने ही विरोह के आतंरिक ज्वर में जुलस जाता है और सही गलत का भेद भूल जाता है| मानवता को केन्द्रित करते हुए कवि यह कविता लिखते है |

७.३.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) विस्फोट की उत्तेजना में/ उत्सव मनाते हाथ

खींच लाए हैं/भविष्य की आग में झुलसा

अंधेरे का रथ

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक 'विस्फोट ' है | कवि ने इस कविता में सवर्णों के प्रति घृणा, नफरत को अभिव्यक्त करते है |

स्पष्टीकरण : विस्फोट का अर्थ है निम्न वर्गों का संचित आक्रोश हैं जो विस्फोट की उत्तेजना में धधक रही है| उनका आंतरिक ज्वर इतना विस्फोटित हो चुका है कि नफरत की आग में मानवता भी झुलसती जा रही है और भविष्य के आग में उनके सुनहरे सामने जलते जा रहे है पुन: वही पुरानी स्थिति वर्तमान में दिखाई देने लगी है जैसे वे पुनः अँधेरे का रथ वे खीच लाये है | वापस वही आकर खड़े हो गए है जहाँ पहले थे |

विशेष : इस पंक्ती में कवि ने विस्फोट को प्रतीकात्मक रूप से लिया है, प्रस्तुत कविता में कवि ने दलित समाज के संवेदना कश्मकश, बेबसी, सन्त्रासी और उससे प्रस्फुटित होता हुआ विद्रोह का विस्फोट है |

७.४ मकड़जाल

७.४.१ कविता का परिचय :

'मकड़जाल' कविता में कवि ने जातिगत हीनभावना से ग्रसित व्यक्तियों के सोच को मकड़जाल कहा है| शिक्षित होने के पश्चात भी वे जातिगत हीनभावना से ग्रसित मानसिकता को बदल नहीं सकते | किसी न किसी रूप ने निम्न समाज के लोगों को फ़सा कर उनपर गलत आरोप लगते है | यह कविता ऐसे संकीर्ण मानसिकता वालों पर कटाक्ष किया है |

७.४.२ कविता का भावार्थ :

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१. काले दिनों में,
२. विस्फोट,
३. मकडजाल,
४. जहर

मकड़जाल

जानता था/ वह बुलाएंगे मुझे एक दिन
मैं गया था/ निहत्था ही
उनके बुलावे पर
अपना डर तर्क में लपेट कर/ झूठ बोल रहे थे वे
लगा रहे थे/ आरोप मुझ पर
उनके शब्द कर रहे थे हमला/ डरी डरी आंखों से
कतरा रही थी उनकी नजर/ मेरी नजर से
अपने पक्ष में मेरा बोलना/ उन्हें गवारा नहीं था
इन्होंने बुल लिए थे/ मकड़ी के महीन जाले
अपने ही इर्द-गिर्द
मैं जानता हूं/ उनका अंत होगा
अपने ही बनाए जाल में/ मकड़ी की तरह
उतार कर/ फेंक दिए हैं मैंने
अपना डर |

भावार्थ : मकड़जाल एक सवर्ण समाज की संकुचित मानसिकता का प्रतीक है | ऐसी मानसिकता जो शिक्षित होकर भी समाज के बनाएँ जातिवाद, वर्णव्यवस्था के दलदल से निकल नहीं पाएं | आज के वर्तमान समय में जहाँ दलितों को आगे बढ़ने का मौका दिया जा रहा है, जहां बड़े-बड़े अधिकारी पदों पर उन्हें कार्य के लिए नियुक्त किए जा रहे हैं प्रशासनिक सेवाओं में तथा सरकारी संस्थाओं में उन्हें आगे बढ़ने का मौका दिया जा रहा है ऐसे माहौल में भी दफ्तरों में दलितों के प्रति घृणा भाव रखा जाता है| इसलिए उन्हें किसी न किसी रूप में किसी भी जाल में फंसा कर उन्हें हर समय अपमानित किया जाता है ताकि उन्हें हमेशा अपने सर का ध्यान रहे| इस कविता में ओम प्रकाश जी ने अपने जीवन में मिले अनुभव को व्यक्त करते हुए लिखते हैं मैं जानता था यानी सभी अपने आसपास परिश्रम से भलीभांति परिचित है फिर भी उनके यानी सवर्णों के बुलाने पर बिना झिझक और बिना किसी तर्क के सुरक्षा और इन हाथों हाथ उनके सामने जाते हैं| उनको नीचा दिखाने के लिए तमन समाज कोई भी मौका नहीं छोड़ता बिना कोई तर्क के उन पर आरोप लगाते हैं| कभी कहते हैं उनकी बनाई हुई इस साजिश में मुझ पर बार-बार हमला करते हैं लेकिन प्राचीन समय से प्रताड़ित उनके जीवन में बचपन से लेकर प्रताड़ना मिलने के कारण अब उनके मन में डर खत्म हो गया है|

समय उनके ऊपर दोष के दोष लगाए जा रहे थे लेकिन लेखक के आंखों में डर नहीं था | कभी-कभी यही निडर पर उन को निर्दोष साबित करता है कभी कहते हैं उनकी मानसिकता पर ब्राह्मण वर्ग के जातिवाद भेदभाव छात्रों के मकड़जाल आज भी बने हुए हैं| यानी आधुनिक समय में कितनी भी समय वैज्ञानिक आ जाए लेकिन समाज में ऐसे

मानसिकता वाले लोग सदैव रहेंगे जिनके बुद्धि एक मकड़ी के जाल की तरह जातिवाद में फंसी हुई है जिस प्रकार सांच को आंच नहीं उसी प्रकार बदलाव की लहर में कवि को विश्वास है कि एक दिन इस अराजकता और जातिवाद के जाल में व्यस्त अमन ब्राम्हण लोग खुद फंस जाएंगे| जो प्रतिदिन दलितों को फंसाने की साजिश रखते हैं एक दिन वह अपने ही बनाए हुए जाल में फस जाएंगे| आशावादी दृष्टिकोण रखते हुए कभी कहते हैं कभी अपने मन में उनके प्रति डर के भाव उतार दिए हैं उतार कर फेंक दिए हैं|

७.४.३ निष्कर्ष :

इस कविता के माध्यम से कवी ने वर्तमान समय के सभी शिक्षित वर्ग के सवर्ण समाज की मानसिकता को दर्शाया है| ऐसी मानसिकता जहा उन्हें निम्न समाज के प्रति घृणा, तिरस्कार, उपेक्षा ही है| ऐसे लोग जो दलितों को आगे बढ़ता हुआ नहीं देख सकते | ऐसे लोग हर जगह व्याप्त है गाँव में, शहर में, दफ्तरों में, पंचायतों में जहाँ वे निम्न लोगो को सिर्फ अपना पायदान समझती है| उनपर संकीर्ण आरोप लगते है| लेकिन आज दलित समाज पहले जैसा मजबूर और कमजोर नहीं है| वह भी सवर्णों चालाकियों, इल्जामों का जवाब देने लगा है| वह अपना डर मन से निकालकर आगे बढ़ने लगा है|

७.४.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) मैं जानता हूं/ उनका अंत होगा
अपने ही बनाए जाल में/ मकड़ी की तरह
उतार कर/ फेंक दिए हैं मैंने
अपना डर |

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक 'मकड़जाल' है | कवि ने इस कविता में जातिवाद हीनता रखनेवाले संकुचित मानसिकता पर प्रहार करते है |

अर्थ : इस पक्ति में कवि ने प्रतीकात्मक रूप मकड़ी के जाल को संबोधित किया है| जहा सभी सवर्ण समाज की मानसिकता अस्पृश्या, उच्च-निम्न के भेदभाव तक सीमित है| आज भी ऐसे कई लोग है, जो शिक्षित होते हुए भी जातिवादी भेदभाव के मानसिकता को बदल नहीं पाते है उनकी स्थिति मकड़ी के जले जैसे हो गई है जो अपने ही विजारों में घिरे रहते है और उसी में दम तोड़ देते है | कवि को आशा है कि परिवर्तन के समय में ऐसी मानसिकता का भी अंत होना निश्चित है| अगर वे समयानुसार परिवर्तन नहीं हुए तो वे अपने ही जाल में फास कर रह जायेंगे | इसीलिए कवि अपने ह्रदय से अब सवर्णों के डर को निकाल देते है|

विशेष : इस कविता में कवि ने मकड़जाल को जातिहीन मानसिकता का प्रतीक माना है| सम्पूर्ण कविता कवि ने प्रतीकात्मक लिखी है| जिसमें कवि ने शिक्षित सवर्ण के संकीर्ण मानसिकता पर केन्द्रित किया है |

७.५ जहर

७.५.१ कविता परिचय :

इस कविता में तमाम दलित लोगों को बात करते है जो किसान, मजदूर आदि रूप में है | जो श्रम करते-करते उनके हथेलियों में गाठे हो गई है | फिर भी उनका ह्रदय दहशत से भरा हुआ है| उनके मन में सवर्ण समाजों के प्रति नफरत, प्रतिशोध का जहर नसों में जैम गया है| किसी भी वक्त लावा की तरह फुट सकता है| कवी उस जहर की बात करते है जो सवर्णों ने खुद दलितों के मन में भरा है| जब भी वह आक्रोश बनकर फूटेगा तब कोई भी धर्म सूत्र उनको मर्यादा में नहीं बाँध पायेंगे।

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१. काले दिनों में,
२. विस्फोट,
३. मकडजाल,
४. जहर

७.५.२ कविता का भावार्थ

जहर

मेरे इर्द-गिर्द एक भीड़ है/जिसमें चेहरे हैं
धूप से झुलसे हुए/ जिनकी हथेलियों में
पड़ गई है गांठे/जबान पर चिपकी है दहशत
फिर भी/देखते हैं सपना
रात दिन/ जिंदा रहने का
उनके भीतर भरा है जहर/जिसे बचा कर रखा है
उन दिनों के लिए/ जब मना कर देगी
रक्त व हानियां/ जुनून धोने से
गर्म उबाल का/ तब उस जहर को
रक्त शिराओं में उड़ेल कर/ भूल जाएंगे वे
धूप से झुलसे/ त्वचा का रंग
हथेलियों में उभरी गांठों का दर्द
बाहर कर देंगे/ शब्दकोश में
धर्म सूत्रों की साजिश है/ महान ग्रंथ में रची घृणाए
जाना चाहोगे वे/ जीवन के तमाम स्वाद
जो कभी नहीं आए/हिस्से में उनके
हजार साल से

भावार्थ :

कवि कहते हैं मेरे इर्द-गिर्द भीड़ खड़ी है वह निम्न वर्ग, मजदूर, गरीब किसान, दमित वर्ग का समाज है| जिनके धुल से भरे, धुप में झुलसे चेहरे लेखक को दिखाई देते हैं, जिसमें एक मजदूर है, तो कोई किसान है| जिन का शोषण सामंती समाज, ब्राह्मण समाज करता आया है| उनके धुप में झुलसे हुए चेहरे लेखक को दिखाई देते हैं, जो रात दिन खेतों में मजदूरी करते हैं, कारखानों के भक्तों पर ही निर्भर होते हैं| जिसके कारण उनके चेहरे धूप में झुलस

चुके हैं, उनकी हथेलियों में हल उठाते-उठाते गांठ पड़ गई है और फिर उनके चेहरे पर ब्राह्मण, जमींदार, ठाकुर तथा सामंत की दहशत दिखाई देती है कवि यहाँ दलितों के उनकी दयनीय स्थिति को तथा आतंरिक वेदना को प्रस्तुत करते हैं| जिसमें कठोर परिश्रम करने के बावजूद, निम्न वर्ग के होने के कारण सामंती समाज के प्रति उनके चेहरे हमेशा दहशत से भरे रहते हैं; फिर भी ऐसे दहशत भरे माहौल में दिन-रात उनका एक ही सपना सजता है कि किसी तरह उन्हें दो वक्त की रोटी मिल जाए ताकि वह भी अपना जीवन चला सके कम से कम जिंदा रह सके| समाज के ऐसे अस्पृश्यता भरे माहौल में रहकर उनके साजिशों के शिकार होकर सदियों से सवर्णों के प्रति दलितों के मन में एक जहर भर गया है| सामंती तथा ब्राह्मण व्यवस्था के प्रति मन में घृणा भरा हुआ है, जिसे दलित समाज ने अब तक अपने हृदय में उस जहर को संचित कर रखा है| कवि कहते हैं, जब भी यह घृणा जहर बनकर बाहर आयेगी, तब उनके मन में उफान उठेगा और उन दिनों वे अपने अधिकारों के लिए सर्जक हो जाएंगे और अत्याचार के खिलाफ अपनी सारी सीमाएं तोड़ देंगे| सभी के रक्त में विद्रोह की चिंगारी भड़क उठेगी | यह सभी निम्न वर्ग के लोग अपने गुलामी के दिनों को भूल कर अपने अधिकारों के लिए खड़े हो जाएं |

कवि अपने विद्रोह की अग्नि में तमाम धर्म ग्रंथों को जलाकर बाहर फेंक देंगे | कवि उन धर्म ग्रंथों की बात कहते हैं, जिसकी आड़ लेकर ब्राह्मण समाज उन पर अधिकार जताते आए हैं भारतीय वर्णव्यवस्था की नीव ही जिनपर टिकी हुई है | ब्राह्मण लोग जो महान ग्रंथ के नाम परशूद्रों को पशु जीवन जीने पर मजबूर कर दिए हैं, वह धर्म ग्रंथ है, जिसमें सिर्फ और सिर्फ घृणाए भरी हुई है| दलित भी अपने अधिकारों का स्वाद जानना चाहेंगे जो उनके हिस्से में कई दिनों तक नहीं मिली | इस प्रकार कवि इस कविता में अधिकारों और उनके स्वतन्त्रता की बात करते है|

७.५.३ निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कह सकते है कि हजारों वर्षों की मिली यातना, गुलामी का जहर जब भी आक्रोश बनकर बहेगा तब तमाम गुलामी की बेड़िया बह जायेगीं | कवि यहाँ सवर्ण समाज को सचेत कहते हुए की दलित समाज का विद्रोह के आगे उनके सभी धर्म सूत्र खोखले पड जायेगी | उन्हें नहीं बाँध पाएंगी अपने मर्यादा में और तब अपने अधिकारों को स्वयं लेंगें जो उन्हें सदियों तक नहीं मिली।

७.५.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) मेरे इर्द-गिर्द एक भीड़ है/जिसमें चेहरे हैं

धूप से झुलसे हुए/ जिनकी हथेलियों में

पड़ गई है गांठे/जबान पर चिपकी है दहशत

फिर भी/देखते हैं सपना

रात दिन/ जिंदा रहने का

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक 'जहर' है | कवि ने इस कविता में मजदूर, किसान, निम्न वर्ग के आक्रोश को व्यक्त किया है, जो आज उनके आँखों की दहशत नस में जहर बनकर उभरने लगी है |

अर्थ : इस पक्ति में कवि ने निम्न कार्य करने वाले मजदूर वर्ग तथा निम्न समुदाय के विद्रोह का वर्णन किया है कवि के चारो और निम्न वर्ग, मजदूर लोगों की भीड़ खड़ी है| जिनका शोषण सामंती समाज, ब्राह्मण समाज करता आया है| उनके झुके हुए चेहरे लेखक को दिखाई देते हैं, जो रात दिन खेतों में मजदूरी करते हैं| कारखानों में काम करते हैं जिसके कारण उनके चेहरे धूप में झुलस चुके हैं | उनकी हथेलियों में हल उठाते-उठाते गांठ पड़ गई है| अब भी उनके चेहरे पर ब्राह्मण जमींदार, ठाकुर, सामंत की दहशत दिखाई देती है | कवि यहाँ दलितों की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कठोर परिश्रम करने के बावजूद निम्न वर्ग के होने के कारण सामंती समाज के प्रति उनके चेहरे हमेशा दहशत से भरे रहते हैं| फिर भी ऐसे दहशत भरे माहौल में दिन-रात उनका एक ही सपना सजता है|

विशेष : इस काव्य में लेखक ने ब्राम्हणों के दिए दर्द और प्रताड़नाओं की दहशत और आक्रोश को जहर शब्द से संबोधित किया है, जहाँ उनकी यही दहशत धीरे-धीरे नसों में ज़हर बन गई है | जो किसी भी समय उबल बनकर रक्त में फुट सकती है | आक्रोश बनकर अपना अधिकार के प्रति आवाज बुलंद कर सकते है |

७.६ सारांश

हिंदी दलित कविताओं में कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि के कविताओं का विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनकी कविताओ में हजारों वर्षों की भोगी हुई यातनाओं को दर्शाते है। साथ ही प्रारंभिक जीवन में दलितों के साथ घटित हुई घटनाओं को वर्तमान स्थिति से उजागर किया है। दूसरी तरफ मकड़जाल में सवर्ण समाज की मानसिकता के प्रतिक को दिखाया है। व्यक्ति शिक्षित होकर भी जातिवाद, वर्णव्यवस्था के दलदल में फसा हुआ है। अंत में जहर के माध्यम से किसान, मजदुर आदि की बात करते है।

७.७ बोध प्रश्न :

१. 'काले दिनों में' कविता में व्यक्त दलितों की संवेदना को स्पष्ट कीजिये|

२. 'जहर' कविता का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिये|

३. 'विस्फोट' कविता में व्यक्त दलितों के आक्रोश को स्पष्ट कीजिये

४. 'मकड़जाल' कविता की शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिये |

७.८ वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

१) विनाशकारी शाजिशों के निशान अब भी कहाँ मौजूद है ?

उत्तर : कवि के सीने और पीठ पर

२) कवि के आँखों में क्या बसी है ?

उत्तर : दहशत

३) कवि की घृणा किसके प्रति है ?

उत्तर : धर्म ग्रंथों के प्रति है

४) दलितों के उत्सव मानते हाथ क्या खींच लाये है ?

उत्तर : भविष्य की आग में झुलसा अँधेरे का रथ

५) पगडंडियों पर बिखरी किरिचे कर देती है ?

उत्तर : दलितों के तलवों और उनके उल्लासित चेहरों को लहूलुहान कर देती है |

६) देश निकाला किसे दिया गया है ?

उत्तर : तथागत

७) कवि किस प्रकार उनके बुलाने पर गए थे ?

उत्तर : निहत्था

८) कविं ने क्या फेक दिया है ?

उत्तर : डर

९) जहर कविता में दलित वर्ग दिन रात क्या देखते है ?

उत्तर : ज़िंदा रहने का सपना

१०) उनकी जबान पर क्या चिपकी है ?

उत्तर : दहशत

७.९ संदर्भ ग्रंथ

१. अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

❄❄❄❄❄❄❄

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

१. कथावाचक, २. शब्द चुप नहीं है, ३. अब और नहीं

इकाई की रूपरेखा

८.० इकाई का उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ कथावाचक

- ८.२.१ कविता परिचय
- ८.२.२ भावार्थ
- ८.२.३ निष्कर्ष
- ८.२.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण

८.३ शब्द चुप नहीं है

- ८.३.१ कविता परिचय
- ८.३.२ भावार्थ
- ८.३.३ निष्कर्ष
- ८.३.४ संदर्भसहित स्पष्टीकरण

८.४ अब और नहीं

- ८.४.१ कविता परिचय
- ८.४.२ भावार्थ
- ८.४.३ निष्कर्ष
- ८.४.४ संदर्भसहित स्पष्टीकरण

८.५ सारांश

८.६ बोध प्रश्न

८.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न

८.८ संदर्भ ग्रंथ

८.० इकाई का उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित कविताओं का अध्ययन करेंगे -

- 'कथावाचक' कविता का परिचय और उसके भावार्थ का छात्र अध्ययन करेंगे।
- 'शब्द चुप नहीं है' कविता का परिचय और भावार्थ को छात्र समझ सकेंगे।
- 'अब और नहीं' कविता का परिचय और उसके भावार्थ का छात्र गहराई से अध्ययन करेंगे।

८.१ प्रस्तावना :

कविता जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त करती है| ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी अपनी कविता में जीवन के सभी यथार्थ अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है | कवि जाति से चमार होने के कारण आजीवन उन्होंने दलितपन को भोगा है| आर्थिक रूप से दयनीय होने के कारण मजबूरन उन्हें वह कार्य करने पड़ते जिन्हें सवर्ण समाज घृणित समझता है| शिक्षा में हुशियार होने के बावजूद उन्हें षड्यंत्रों के कारण फेल कर दिया जाता | इस प्रकार आर्थिक तंगी, जीवन की अव्यवस्थता और दलितपन के दंश को सहन करते हुए जीवन जिया है और दलित साहित्यकार के रूप में लोकप्रियता हासिल की| उन्होंने अपने अभिव्यक्ति की शुरुआत कविताओं से किया | जिसमें 'अब और नहीं' की कविता संग्रह में से 'कथावाचक', 'शब्द चुप नहीं है' और 'अब और नहीं' कविता संकलित है| यह तीनों कविता बहुत प्रशांगिक है| तीनों कविता के माध्यम से कवि ने अपने जीवन के यथार्थ कटु अनुभवों को व्यक्त किया है| ब्राह्मणवादी विचारधारा पर कटाक्ष किया है| सभी दलित समुदाय को अपने अधिकारों के प्रति प्रेरित करते हुए अपने भविष्य को स्वयं निर्मित करने के लिए आवाहन करते है| दलित जीवन के तमाम विसंगतियों और अराजताओं को व्यक्त करते हुए रूढ़िवादी विचारधारों के प्रति घृणा प्रकट करते है| अपने कविता के माध्यम से समाज में सामाजिक नई विचारधारा, बंधुत्व मुल्यता और मानवतावाद को स्थापित करने का प्रयत्न करते है|

८.२ कथा.वाचक

८.२.१ कविता परिचय :

'कथावाचक' कविता में कवि ने अपने गाँव के पुराने सड़कों, पगडंडियों और अपने जीवन के स्मृतियों को याद करते हुए, एक कथावाचक की तरह जीवन प्रसंगों की स्मृतियों को कविता में अभिव्यक्त करते हैं| उनका जीवन दलितपन की तमाम यातनाओं से संगृहीत है | इस कविता में यातनाभरी जीवन जीने के कारण और मानवता, अस्पृश्यता तथा उच्च वर्ग द्वारा दिए यातनाओं को लेखक ने अभिव्यक्त किया है| कवि कहते हैं, दलित जीवन की और मानवीयता को कोई भी कथावाचक नहीं बयान कर सकता ना ही किसी कविता में उसे अभिव्यक्त किया जा सकता है| बचपन से लेखक ने जीवन में जूठन खाकर बढ़े हुए शिक्षा के नाम पर उन मास्टरों की गाली खाई है शिक्षा के नाम पर अछूत उत्पन्न देखा है| यहा तक की आर्थिक तंगी के कारण अपने भाभी के गहनों को बिकते देखा है तथा निम्न कार्य करने पर मजबूर होते देखा है| जीवन में मिली वेदनाओं की अभिव्यक्ति कवि इस कविता में करते हैं, जहां पर उनके गांव में बची सभी स्मृतियों को याद करते हुए, कथावाचक की तरह अपने गाँव के जीवन को अभिव्यक्त करते हैं|

८.२.२ कविता का भावार्थ :

कथावाचन

बहुत कोशिशों के बाद नहीं सूना सका मैं
गाँव देहात के किस्से कथा वाचक की तरह
हान्लाकिन अभी भी ज़िंदा है
मेरा देहाती पन /खुदा हुआ है

रेशे रेशे पर /गाँव देहात का आड़ा-तिरछा
उबड़-खाबड़ नक्शा
मटमैली लकीरों में
जिन्हें कुदेराते हुए बार बार जख्मी होता हूँ
अपने ही नाखूनों से /करता हूँ कोशिश
भूल जाने की /जंग खाए दिनों की
जो शूल सी गाड़ी हैं सीने में
पसीना और लहूँ /दाहकता भूलकर
हो गए है रंगहीन /खेतों की पगडंडिया
खो जाती है /रजबाहे की पुलिया तक
पहुँचने से पहले ही /सूरज की तपिश
और आग की आंच /संग साथ खेलती है
मेरे इर्द-गिर्द /सुखा भी लगता है दुःख ही
दुर्दिनों में /जिनकी परछाई पीछा करती है
महानगर की चौड़ी सड़कों पर भी
खेत-खलिहानों /कल-कारखनों
गाँव शहरों में बहता लहूँ
नहीं बन सका अभी तक ऐसी कविता
जो बता सके सही स्याह दिनों का रंग
सूना सके
आग में झुलसती बस्तियों की
दर्दनाक चीखे /डरा-डरा सा मैं
खड़ा हूँ भीड़ के बीच /तिलकधारी और उसका सहयोगी
मार देता है डंक किसी भी क्षण
तक्षक बन कर /सोख लेता है रक्त
मेरी उँगलियों से /नहीं होगा विश्वास
चका चौंध कर देनेवाले /उन असंख्य शब्दों पर
जो अटे पड़े है अलमारियों में /बड़े-बड़े पुस्तकालयों की
इसलिए मांफ करना भाई नहीं सूना सकता
किस्से झूठ बोलकर /कथावाचक की तरह

भावार्थ : कथावाचक अर्थात कहानी सुनाने वाला | कवि अपने पुराने समय को याद करते हुए अपने बिताए गाँव में उस पल को स्मृति करते हुए कहते हैं, दलित समाज में जितना शहरों में यातना भोगनी नहीं पड़ती उससे दुगना उन्हें गांव में अस्पृश्यता अपमान प्रताड़ना जैसे का सामना करना पड़ता है और हमेशा उन्हें निम्न होने का एहसास कराया जाता है|

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने बालपन में भोगे सभी यातनाओं को जो इतनी भयंकर है कि बहुत कोशिशों के बाद भी गाँव देहात के दलित उत्पीड़न को कथावाचक की तरह सुना नहीं पा रहे हैं| कवि कहते हैं अब यातनाएं उत्पीड़न आज उनके मन में जिंदा है | उनके शरीर के रेशों रेशों पर देहाती पर अर्थात गांव में जिस प्रकार देहाती जीवन उन्होंने अभिव्यक्त किया है| उस गाँव के नक्शे बट में लीन लकीरें में खुदा हुआ है, जब भी कवि सवर्ण से मिले हुए दलितपन को याद करते हैं, उनके ह्रदय में ऐसे लगता है, मानो बहुत समय बाद फिर से उनके जख्मों को कुरेद रहे है | वह फिर से उन सारे दर्द और यात्राओं से गुजरते हैं| वे बार-बार अपनी आंखों से अपने आप को जख्मी होता हुआ पाते हैं| कवि बार-बार बीते दिनों को भूलने की कोशिश करते हैं पर जैसे- मास्टर साहब जो शिक्षा के बदले गालियां उनको सुनाया करते थे, उनको जिस प्रकार बेरहमी से पीटा करते थे, वह रात जो भूख से बिताए थे| वह दिन उनको अन्दर ही अन्दर खाए जा रही हैं| वह विभस्य यादें उनका पीछा नहीं छोड़ती | बचपन के दिनों में मिली सभी प्रताड़ना उनके सीने में कील की भांति गढ़ी हुई है| उनके तन में लहू विद्रोह बनकर दहक रहा है| कवि गांव में व्यतीत किए हुए उन पलों को याद करते हैं | वे जब तपती धूप में खेतों में काम किया करते थे, सूरज की तपिश की आग की तरह उनका शरीर जल जाया करती थी| आंखों के आगे अंधेरा छा जाया करता था जिसके कारण खेतों की पगडंडियों से पुलियो तक पहुंचना मुश्किल हो जाता था| दुख के परछाई बनकर कवि का पीछा करते हैं| आज भी कवि महानगरीय जैसे क्षेत्रों में रहकर महानगरीय जीवन जीने के पश्चात भी वह उनके पुराने दिनों की स्मृतियाँ महानगर के चौड़ी सड़कों पर पीछा कर रही हैं| दलित समाज के व्यवस्थाओं पर कवि कहते हैं, आज तक कोई भी ऐसी कविता नहीं बन पाई है ,जो खेत खलिहान में खेती करते किसानों के दुख दर्द को बयां कर सके, आज तक कोई ऐसी कविता नहीं बन पाए जो कल कारखानों में काम करते मजदूरों की प्रताड़ना को बयां कर सके, उनकी संवेदना को बयां कर सके| गांव शहरों के किसान मजदूर के बहते लहू को ठीक से उनको मिले धब्बों को बयां कर रही हैं | दलित लोगों के दर्दनाक आज तक कोई कविता उसे बता नहीं पाई है|

बचपन से किशोरावस्था तक कवि ने अपने दलितपन को भोगा है| कवि शहरों में जीवन जीने के पश्चात आज भी ब्राह्मणी व्यवस्था से डरे-डरे समाज में खड़े हैं |जहां किसी भी क्षण ब्राह्मण के लोग, तिलकधारी लोग उन्हें कभी-भी तक्षक की भाती डंक मार सकते हैं| वे सभी यादे उन्हें दलित पन का एहसास दिलाता है अमानत करता है वह तक्षक उनका सारा रक्त सुख भी लेता है, अर्थात उन्हें बार-बार अपमानित करता है बाद में वह दलित हितैषी बनकर उनको सहारा देने की भी बात करते हैं| कवि कहते हैं आज भी उन्हें विश्वास नहीं है उन तमाम शब्दों पर जो समाज सुधारकों ने नेताओं ने दलितों के अधिकार की बात करते हैं, उनकी चकाचौंध कर देने वाले शब्द आज भी लेखक की अलमारी और पुस्तकालयों में सुसज्जित हैं | इसलिए कवि माफी मांगते हुए कहते हैं कि पुराने अतीत को वह नहीं बयां कर सकते| धर्मावलंबियों समाज सुधारकों की भांति झूठ बोलकर कथावाचक की तरह दलितों के हितों की बात नहीं कर सकते|

८.२.३ निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि इस कविता में लिखा कि नहीं शहरी जीवन के साथ-साथ गांव के जीवन को भी व्यक्त किया है गांव में बसे भेदभाव अछूत पर तथा निम्न वर्ग को दिए गए

प्रताड़ना को अभिव्यक्त किया है बचपन से लेखक ने गांव के उस परिसर में जिया जहां पर गंदगी सैलरी रहती थी जहां पर कड़क धूप में अपने शरीर को जलते देखा ऐसे भरे अस्पृश्यता वाले माहौल में उन्होंने जीवन व्यतीत किया और साथ-साथ वे शहरी माहौल में भी वही तब महसूस करते हैं शिक्षित होने के बावजूद भी आज तक दलितों को उनका अधिकार उनका सम्मान अब तक नहीं प्राप्त हो पाया जिसके लिए वे संघर्षरत है लेखक यही कहते हैं कि कोई भी कभी दलितों के दर्द को अभिव्यक्त नहीं कर सकता और मैं भी अपने जीवन के सभी संवेदना ओं को कथावाचक के तरह सुनाने में असमर्थ हुँ।

८.२.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) बहुत कोशिशों के बाद नहीं सूना सका मैं
गाँव देहात के किस्से कथा वाचक की तरह
हान्लाकिन अभी भी ज़िंदा है
मेरा देहाती पन /खुदा हुआ है
रेशे रेशे पर /गाँव देहात का आड़ा-तिरछा
उबड़-खाबड़ नक्शा

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण, ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक 'कथावाचक' है | कवि ने इस कविता में अपने गाँव के स्मृतियों को अभिव्यक्त किया है | दलित समाज के होने के कारण कवि ने अस्पृश्यता वाले गाँव के परिवेश में जीवन व्यतीत किया है | सभी स्मृतियों को याद करते हुए एक कथावाचक की तरह अपने अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर रहे है|

स्पष्टीकरण : इस अवतरण में कवि कहते है अपने गाँव ने जीवन अनुभवों को उस याद को एक कथावाचक की तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकता क्योंकि कवि निम्न वर्ग के होने के कारण असृश्यता, जातिगत भेदभाव, मास्टर साहब की प्रताडनाओं तथा जीवन भर मिलने वाली जूठन से अपना जीवन निर्वाह किया है जहाँ सिर्फ सवर्ण समाज से सुनने के लिए चूहड़े और भद्दी गालियाँ ही मिलाती थी | अस्पृश्यता का ऐसा भयावह माहौल था की गाय और भैसों को छूने में पाप नहीं लगता लेकिन किसी निम्न व्यक्ति को छू लिया जाए तो पाप चढ़ जाता था | इन सभी प्रताडनाओं को याद करते हुए कवि स्वयं कहते है की बहुत प्रयत्नों के बावजूद में अपने जीवन से प्रसंगों को अभियक्त नहीं कर सकता | कवि कहते है आज भी मेरे रेशे में यानि मेरे ह्रदय में आज भी वह देहाती पण जीवित है यानी आज भी सभी स्मृतियाँ जीवित है और गाँव से सभी आड़े-तेडे नक़्शे याद है| जहाँ उन्होंने जीवन जिया है |

विशेष : यह कविता कविं ने आत्मकथात्मक शैली में अभिव्यक्त किया है| जिसमें कवी ने अपने देहातीपन यानी गाँव के जीवन प्रसंगों को अभिव्यक्त करते है| इस कविता में देशज शब्दों का प्रयोग किया है|

८.३ शब्द चुप नहीं है

८.३.१ कविता का परिचय :

'शब्द चुप नहीं है' कविता में कवि ने शब्द के माध्यम से व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा अपने अस्तित्व की बात कहते है| शब्द को प्रतीक के रूप में संबोधित किया है| जिसमें प्रत्येक शब्द का एक स्वतंत्र अर्थ होता है, अपना अस्तित्व होता है| शब्द को अपना बोध करने के लिए वाक्य की पक्ति में खड़े रहने की जरुरत नहीं है| उसी प्रकार निम्न वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति का एक स्वतंत्र अस्तिव होता है|वे अपना बोध करने के लिए अपनी सामर्थ्यता को दिखने के लिए उन्हें अब किसी के सहारे की जरुरत नहीं है| उन्हें अब किसी के भी अधीन कार्य करने की जरुरत नहीं है |

८.३.२ कविता का भावार्थ :

शब्द चुप नहीं है

अखबार की हर पंक्ति में
पसरे शब्द /निरे शब्द नहीं होते
न होते है हाथ बांधकर
सर झुकाएं पक्तिबद्ध खड़े लोग ही
शब्द सिर्फ एक खबर भी नहीं होते
जिसे पढ़ा जाए और दुसरे ही पल
भुला दिया जाए
छपे शब्द दिख पड़ते है /जितने खामोश
उतने नहीं होते /एक दुसरे से सटकर
नहीं करते गुप्त मंत्रणा /न फुसफुसाकर कहते हैं कोई बात
शब्द सपनों में भी नहीं चीखते
लांघते भी नहीं एक ही झटके में
साधना चक्र की तमाम सीढ़ियाँ
शब्दों के चेहरों पर
चढ़ी रहती है अनेक रंगों की परते
जिसके पीछे छिपे होते है अनेक अर्थ
बरसो बरस लम्बी यात्रा पर निकले शब्द
भूल जाते है अपना वंश अपने नाम
फिर भी शब्द चुप नहीं रहते
वे बोलते है /खोलते है भेद
भरते है साहस /हाँ का हाँ
और ना का ना कहने का |

भावार्थ :

शब्द एक प्रतीकात्मक दलितों की आवाज है| कवि कहते हैं, जिस प्रकार अखबार में छपे प्रत्येक पंक्ति के शब्द निर्णय नहीं होते यानी चुप नहीं होते| समाज में हो रहे सभी विसंगतियों को उद्धृत करते हैं, उसी प्रकार जो लोग सामान्य वर्ग के सामने सिर झुका कर मुंह बंद कर पंक्ति में खड़े हैं | उनके खामोशी भी निरे नहीं होती है| दलित व्यक्ति जो हर समय काम आता है| यह सिर्फ जरूरत पर काम आने वाली वस्तु नहीं है, यानी एक खबर भी नहीं जिसे पढ़ा जाए दूसरे ही पल भुला दिया जाए मुखरित शब्द दिखते नहीं है| लेकिन छिपे हुए शब्द जिस तरह से दिख पढ़ते हैं अर्थात दलित व्यक्ति भी छपे हुए शब्द की तरह होते हैं| अंदर ही अंदर सेट कर एक दूसरे की गुप्त मंत्रणा नहीं करते ना खुद पता कर कोई बात दूसरे के बारे में कहते हैं| इस व्यक्ति को जितना भी शोषण किया जाए चुपचाप जीते हैं जैसे शब्द होते हैं, जो सपनों में भी नहीं सीखते यानी अपने अधिकारों के सपने नहीं देखते| निम्न वर्ग के अंदर संचित उज्जवल एक झटके में फूटता है वे एक ही झटके में सभी सीमाएं ला देते हैं साधना चक्र के तमाम चिड़िया अपने विकास के रास्ते में वर्ग के मंत्र द्वारा एक निश्चित है कि उनके चेहरे पर कई पीढ़ियों के पर चढ़ी हुई है फिर भी उनके संघर्ष में कोई न कोई अर्थ छुपा हुआ है| जब बड़े आंदोलन की यात्रा तथा अपनी आजादी की यात्रा पर जब यह निकल पड़ते हैं| तब स्वतंत्रता के लिए अपना वंश और अपना नाम तक भूलकर परिवर्तित होना चाहते हैं| उसके बावजूद भी उनका संघर्ष कम नहीं होता वह लगातार अपने अधिकारों के प्रति सजग रहकर बोलते हैं परंपरा और शास्त्रों के सभी भेद खोलते हैं और वे भी अब हां और ना में जवाब देने के लिए सजग हो उठे हैं|

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१. कथावाचक,
२. शब्द चुप है,
३. अब और नहीं

८.३.३ निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कह सकते है की यह कविता में लेखक ने शब्द के माध्यम से अपने स्वतंत्र होने का बोध करते है| शब्द का अपना अलग महत्त्व बताते है| वे कहते है वे किसी और की तरह नहीं होते सिर्फ दुसरे के उपर निर्भर नहीं रहते | वे स्थान स्थापित किये हुए है| जिस प्रकार सवर्ण के चहरे पर बनावट के आवरण रहते है| शब्द बनावटी आवरण नहीं ओढ़ते | वे हमेशा सही को सही और गलत को गलत कहने का दंभ भरने का काम करते है|

८.३.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) शब्दों के चेहरों पर
चढ़ी रहती है अनेक रंगों की परते
जिसके पीछे छिपे होते है अनेक अर्थ
बरसो बरस लम्बी यात्रा पर निकले शब्द
भूल जाते है अपना वंश अपने नाम

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक 'शब्द चुप नहीं है' है | ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चिंतन धारा के प्रसिद्ध साहित्यकार है| इनकी काव्यधारा ब्राह्मणवादी विचारधारा पर प्रहार करती है | दलितों को मिलने वाली यातनाओं तथा उनके ह्रदय की संवेदनाओं को व्यक्त करती है| यह कविता भी उसी प्रकार की कविता है जहाँ कवि ने एक शब्द के अस्तित्व

का बोध कराया है| शब्द की महत्वत्ता को बताया है| उसे निम्न वर्ग का प्रतीक मानते हुए उनके स्वतंत्र अस्तित्व की बात करते है |

स्पष्टीकरण : 'शब्द चुप नहीं है' कविता ने शब्द का पक्ति में क्या वजूद होता है और समूह में न हो कर भी उसका जो स्वतंत्र वजूद है उसपर प्रकाश डालते हुए दलितों के अस्तित्व का बोध कराती है | इस पक्ति में कवि कहते है शब्द का जो स्वतंत्र अस्तित्व होता है वह वाक्य में प्रयोग होने के बाद अपने ही अस्तित्व को खो देता है उनके रंग में दुसरे अर्थ में उनकी पुष्टि हो जाती है| अर्थात दलितों में जो सामर्थ है वो दूसरों की बेगारी करने में, दूसरों की सेवा करने में, दूसरों के खेत में काम करने में वह अपना स्वयं का रथ अपनी उपयोगिता भूल जाते है इसलिए शब्दों के चेहरे पर चढ़ी रहती है अनेक रंगों की परते और वे शब्द उसी अर्थ के रंग में ढल जाते है जैसे उन्हें पेश किया जाता है| दुसरे अर्थ में संबोधन देने के कारण शब्द स्वयं अपनी उत्त्पति अपने अर्थ भूल जाते है| उसी प्रकार निम्न वर्ग सवर्णों के सामने अपना अस्तित्व अपने अधिकार और अपना सामर्थ्य भी भूल जाता है|

विशेष : यह कविता शब्द के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप को स्पष्ट करती है | जिसमें शब्द निम्न वर्ग का घोतक है| जिसे अपने ही अस्तित्व का बोध नहीं है| सवर्णों के बनाए नियमों के कारण अपने ही अस्तित्व को खो देता है और जीवन भर उनकी गुलामी करते हैं जीवन व्यतीत कर देता है|

८.४ अब और नहीं

८.४.१ कविता परिचय :

वर्तमान समय मे ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्यकरों में अग्रणी है। जीवन में मिली जातिवादी दंश के कारण वे बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था तक अत्याचार को सहन करते आये है। भारतीय असमानता पर खड़ी सामाजिक व्यवस्था के बीच दलित कविता का आविर्भाव हुआ। जो दलितों के जीवन संघर्ष, विद्रोह और नकार की ज्वाला लेकर समाज में परिवर्तन लेने के लिए मशाल जलाये हुए है। हजारों सालो से निम्न जाति पर हुकूमत करती हुई यह ब्राह्मणी समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। लेखक उन तमाम मजदूर, किसान, दमित व्यक्ति, निम्न जाति का व्यक्ति इन सभी को अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठाने के लिए प्रेरित करते है। जीवन में तमाम मिली यातनाओं के विरुद्ध सामाजिक व्यवस्था से लड़ने के लिए आवाहन हारते है। वर्तमान समय में जहाँ विमर्श साहित्यों के माध्यम से निम्न वर्ग, शोषितों के मूक आवाज को शब्द दे रही है। ऐसे समय में लेखक उन्हें आगे बढ़ने के लिए कहते है। चाहे तमाम नेता साप्रदायिक दंगे क्यों न कर सके, पुराने जर्जर शास्त्र हमारे खिलाफ क्यों न खड़ा हो जाये लेकिन लेखक उन्हें अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलंद करने की प्रेरणा से रहा है |

८.४.२ कविता का भावार्थ :

अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि
१. कथावाचक,
२. शब्द चुप है,
३. अब और नहीं

अब और नहीं

आँख मिचौली खेलने का समय नहीं है यह
संभल-संभल कर रखने वाल भी
मारे जायेंगे फर्जी मुठभेड़ों में
या फिर सांप्रदायिक दंगों में
गन्दगी के ढेर में किलकिलाते कीड़ों की तरह
खामोश जी कर भी क्या मिला
होंठों की मुक्त हंसी /और उँगलियों की सहज सिंग्धता
कहाँ गयी/आदमी साहस और अपरिमित धैर्य
रक्त की गर्भ्दार बनकर वह गए
बरसाती गंदले पानी की तरह
या चिरायध फेलाकर जल गए
अकस्मात लगी आग में
हजारों साल का मैल /रगड़-रगड़ कर निकलने में
समय जाया मत करो /भीड़ भरी सड़कों पर
यातायात के बीच अपनी जगह बनाकर
रूकने का संकेत पाने से पहले
लालबत्ती का चौराहा पार करना है
छद्मवेशी शब्दों का प्रलाप जारी है
सुन चुके अर्थहीन तर्क भी
बहुत दिन जी चुके हताशा और निराश के बीच
कालाबाजारियों चौर चतुराई भेरे शब्दों का
खेल हो चुका अब और नहीं
तह करना होगा कहा खड़े हो तुम साए या धुप में

भावार्थ : कवि आवाहन करते हैं, यह समय अब चुप रह कर एक-दूसरे के ऊपर आरोप लगाने का समय नहीं है एक नेता, कार्यकर्ता, समाज सुधारक की आड़ लेकर जातिवाद का विष बोलते हैं, जो हर समय संभल कर चलते हैं | उन्हें अब खत्म करने का समय आ चुका है, जो सांप्रदायिक दंगे करवाते हैं, जो समाज में अराजकता फैलाते हैं| आज उन सभी को समाज से मिटाने का वक्त आ गया है| कवि कहते हैं, उनके अधिकारों की लड़ाई लड़ना है, जो गंदी बस्ती में रहने के लिए मजबूर हैं, जो कीड़े मकोड़े जिंदगी जीने के लिए मजबूर हैं| उनको इस तरह ख़ामोशी जीवन जी कर क्या हासिल कर पाए हैं| उनके फोटो की मुक्ति कहां गई और उनके उंगलियों की सहज सिंग्धता कहां गई क्यों वे लोग निम्न वर्ग के दैनिक जीवन को नहीं दिखा पा रहे हैं उनके प्रताड़ना को नहीं अभिव्यक्त कर पा रहे हैं उनकी

अदम्य साहस और ध्यान कहां गए उनके रक्त का उबाल कहां गया जो न्याय और अन्याय की बातें किया करते थे गंदगी पानी की तरह शब्द है बह गए आग की तरह सभी साहस जल गए | हजारों सालों से मिलते प्रताड़ना ओं का महल आज हम दलित साहित्यकारों को निकालने होंगे रगड़ रगड़ कर| कवी लेखकों को आवाहन करते है की समय जाया मत करो सड़कों पर भीड़ बहुत है हमें यातायात के भीड़ में जगह बनाकर जलना है| हम उनके द्वारा रोके जाए उससे पहले हमे अपने बल से आगे बढना है उस लालबत्ती के चौराहे को पार करना है |

८.४.३ निष्कर्ष :

निष्कर्षतः इस कविता में वर्णव्यवस्था के दोहरे मापदंडो, सामाजिक व्यवस्था के खोखले पन और ब्राह्मणवाद के विरुद्ध कवि ने अपना आक्रोश व्यक्त किया है। हजारों वर्षों के मिले यातनाओं को झेला है। उन्हें क्रूर व्यवस्थाओं से लड़ने तथा उनसे कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए आवाहन कर रहे है। इस कविता के माध्यम से उन्होंने दलित अस्मिता की पहचान का प्रश्न उठाया है और मानवीय मुल्यो को स्थापित करने का उद्देश्य रहा है| कवी कहते है की सदियों से प्रताड्राये, अस्पृश्यता, दुर्व्यवहार बहुत सहन कर लिया अब और नहीं अब अपने अधिकार के प्रति आगे बढ़कर सभी खोखले मापदडों को तोड़ना होगा| हमें अब खुद तय करना होगा की हमे कहाँ खड़ा रहना है| धुप में की छाव में |

८.४.४ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण :

१) बहुत दिन जी चुके हताशा हौर निराश के बीच
कालाबाजारियों चौर चतुराई भेरे शब्दों का
खेल हो चुका अब और नहीं
तह करना होगा कहा खड़े हो तुम साए या धुप में

संदर्भ : प्रस्तुत अवतरण ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य संग्रह 'अब और नहीं' नामक पुस्तक से उद्धृत है | जिसका शीर्षक 'अब और नहीं' है | ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चिंतन धारा के प्रसिद्ध साहित्यकार है | इनकी काव्यधारा ब्राह्मणवादी विचारधारा पर प्रहार करती है | दलितों को मिलने वाली यातनाओं तथा उनके हृदय की संवेदनाओं को व्यक्त करती है | मुख्यधारा द्वारा निर्मित की गई भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्राचीन से चली आ रही जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता के कारण दलितों की आवाज मूक बनी रही | मूक बनकर सदियों से सवर्णों के अत्याचार को सहन करती रही | वर्तमान समय में यही मूक आवाज दर्द, पीढ़ा बनकर आक्रोश के रूप में फुट पड़ी है | जिसकी अभिव्यक्ति कवि ने इस कविता में की है |

स्पष्टीकरण : अब और नहीं शीर्षक से ही आक्रोश तथा वेदना दिखाई देता है| जो सदियों से सहन करता हुआ दलित समाज के सहन की हदे पार हो चुकी है| कवि इस पक्ति में कहते है की आज भी सभी जर्जन पुराने छंद वेदी ग्रन्थ जिसके कारण दलितों को सदैव प्रताड़नाए ही प्राप्त हुई है जिसने उन्हें निम्न कार्य करने पर मजबूर कर दिया आज भी वे सभी ग्रन्थ दलितों को उनका अधिकार प्राप्त करने में उनका रास्ता रोक रही है| ब्राहमण और पंडितों को कालाबाजारिया कहा कर संबोधित किया है| जो अपनी चालाकियों के सदियों से दलितों

पर अपना अधिपत्य जमाते हुए आये है| उन्हें पायदानों पर रखते आये है| कवि उन तमाम शोषितों और निम्न वर्ग को आवाहन करते हुए कहते है बस अब और नहीं हमे उनके अत्याचारों को सहन करना है | अब हमें स्वयं अपना अधिकार, अपना भविष्य की राह तय करना है | हमे अपने अस्तित्व को पहचानना है कि आज हम कहाँ खड़े रहना है धुप में की छाह में |

विशेष : कवि ने छद्म शब्द तथा कालाबाजारियों जैसे प्रतिक शब्दों का प्रयोग किया है| यह कविता पुर्णतः आक्रोशात्मक कविता है| जिसमे कवि निम्न वर्गों को आवाहन करते है उन्हें अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठाने के लिए प्रेरित करते है |

८.५ सारांश :

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त किया है। 'कथावाचक' कविता में कवि गांव में बिताये पल का याद करते हुए महसूस करते है की शहरों के बदले गांव में ज्यादा अस्पृश्यता, अपमान, प्रताड़ना आदि का सामना करना पड़ता है। 'शब्द चुप नहीं है' में शब्द के माध्यम से व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अस्तित्व की बात रखते है। 'अब और नहीं' में कवि ने वर्णव्यवस्था के दोहरे मापदण्डो, सामाजिक व्यवस्था के खोखलेपन और ब्राह्मण के विरुद्ध आक्रोश को व्यक्त किया है।

८.६ बोध प्रश्न :

१. 'कथावाचक' कविता का भाव बोध स्पष्ट कीजिये |

२. 'कथावाचक' कविता में दलित संवेदना स्पष्ट कीजिये |

३. 'शब्द चुप नहीं है' शीर्षक की सार्थकता को स्पष्ट कीजिये |

४. 'अब और नहीं' कविता में व्यक्त दलितों के विद्रोह तथा उनके आक्रोश को स्पष्ट कीजिये |

८.७ वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

१) कवि अपने गाँव देहात के किस्से किस प्रकार सुना रहे हैं|

उत्तर : कथावाचक की तरह।

२) तक्षक का अर्थ क्या है ?

उत्तर : साँप।

३) कवि को डंक कौन मार रहा है ?

उत्तर : तिलकधारी लोग।

४) अखबार की पंक्ति में पसरे शब्द किस प्रकार नहीं होते ?

उत्तर : निरे नहीं होते।

५) शब्द एक दुसरे के साथ सटकर क्या नहीं करते ?

उत्तर : गुप्त मंत्रणा।

६) लम्बी यात्रा पर निकले शब्द क्या भूल जाते है ?

उत्तर : अपना वंश अपने नाम।

७) संभल संभल कर पाँव रखनेवाला भी कहाँ मारा जाएगा ?

उत्तर : फर्जी मुठभेड़ों में और सांप्रदायिक दंगों में।

८) कवि कौन सा चौराहा पार करना चाहते है ?

उत्तर : लालबत्ती का चौराहा।

९) किन शब्दों का प्रलाप जारी है ?

उत्तर : छद्मवेशी शब्दों का।

१०) किसका खेल अब बहुत हो चुका ?

उत्तर : कालाबाजारियों और चतुराई भरे शब्दों का।

८.८ संदर्भ ग्रंथ :

१. अब और नहीं - ओमप्रकाश वाल्मीकि

❄❄❄❄❄❄❄

९

धूणी तपे तीर : हरिराम मीणा

इकाई की रूपरेखा

९.० इकाई का उद्देश्य

९.१ प्रस्तावना

९.२ लेखक का परिचय

९.३ 'धूणी तपे तीर' उपन्यास का कथासार

९.४ सारांश

९.५ वैकल्पिक प्रश्न

९.६ लघुत्तरीय प्रश्न

९.७ बोध प्रश्न

९.८ संदर्भ सूची

९.० इकाई का उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं से छात्रों का परिचय होगा -

- आदिवासी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक हरिराम मीणा जी के व्यक्तित्व और कृत्तित्व से परिचित कराना हैं।
- आदिवासी उपन्यास 'धूणी तपे तीर' के कथावस्तु का छात्र अध्ययन करेंगे।
- आदिवासियों की गरिमा को छात्र समझ सकेंगे।

९.१ प्रस्तावना :

लेखक हरिराम मीणा ने 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में आदिवासी समाज, संस्कृति, उनकी समस्याओं, त्रासदियों, संघर्ष और आदिवासियों के सपनों को रेखांकित किया है। इसमें राजस्थान का दक्षिणांचल, सीमावर्ती गुजरात और मध्यप्रांत का पश्चिमी क्षेत्र के निवासी भील और मीणा आदिवासियों की कथा वर्णित हैं। उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, कुशलगढ़ रियासतों में भीलों की संख्या ज़्यादा थी और दूसरी बड़ी संख्या मीणा आदिवासियों की। प्रतापगढ़ रियासत में मुख्यतः मीणा आदिवासियों की आबादी। मानगढ़ के चारों ओर पसरा राजपूताना का दक्षिणांचल था और इस दक्षिणांचल की पूर्वी दिशा में सीमावर्ती रतलाम, सैलाना व झाबुआ रियासतें तथा पश्चिम में झालोद, सूंथ व ईडर की रियासतें। यह सब आदिवासियों से आबाद था। इस आदिवासी कथा को साहित्य क्षेत्र के सामने लाने और आदिवासियों के ऐतिहासिक परिदृश्य को स्थापित करने के लिए लेखक हरिराम मीणा ने १५ तथा २० साल तक संशोधन किया उसके बाद मानगढ़ की घटनाओं को प्रस्तुत किया है। इस घटना को उजागर करने का

कार्य लेखक ने 'धूणी तपे तीर' उपन्यास से किया है। लेखक प्रशासकीय पद पर कार्य करते हुए आदिवासियों का साहित्य और इतिहास में उनके योगदान को सम्मान देने के लिए घूम-घूम कर मानगढ़ की घटनाओं को सत्यता के साथ साहित्य जगत में 'धूणी तपे तीर' को सन् २००८ में साहित्य उपक्रम से प्रस्तुत किया।

९.२ लेखक का परिचय :

हिन्दी के आदिवासी साहित्यकारों में हरिराम मीणा का नाम बहूचर्चित है। साहित्य में उनका पर्दापण एक कवि के रूप में हुआ था। उनका जन्म एक साधारण आदिवासी किसान परिवार में १ मई १९५२ को 'कामगार दिन' के शुभ अवसर पर पूर्वी राजस्थान के सवाई-माधोपुर जिले में एक छोटासा इलाका बामनवास गांव में हुआ। मीणाजी का पूरा नाम हरिराम किशोरीलाल मीणा है और उनका आरंम्भिक जीवन मौलिक अभावों में बीता। हरिराम मीणा के पिता श्री. किशोरीलाल और माता सौ. राजोदेवी थी। उनके पिताजी एक साधारण आदिवासी किसान थे। आर्थिक परिस्थिति बिकट होने के कारण पिताजी की शिक्षा-दीक्षा नहीं हो पायी, फिर भी अपने जिंदगी में उपयोग होने तक और काम चला लेने तक का अक्षर ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया। माताजी अनपढ़, गवार और गांव में रहनेवाली थी इसलिए वह अपने घर का काम किया करती थी। मुश्किल से पिताजी ने हरिराम को शिक्षा के लिए प्रेरित किया। घर की आर्थिक स्थिती ठीक न होते हूए भी, माता-पिताजी ने कर्ज लेकर बेटे को शिक्षा देने की सफलता प्राप्त की। हरिराम मीणा की प्रारंम्भिक शिक्षा चिल्लास गांव में हुई और पूर्वी राजस्थान के सवाई-माधोपुर जिला बामनवास गांव में दसवीं कक्षा तक पढ़ाई हो गयी। ग्यारहवीं और बारहवीं की पढ़ाई कस्बे में हुई और बी. ए. के प्रथम एवं द्वितीय वर्ष की पढ़ाई राजस्थान के राजकीय महाविद्यालय करोली तथा तृतीय वर्ष की पढ़ाई राजस्थान कॉलेज में हिन्दी, इतिहास एवं नागरिकशास्त्र विषय लेकर अच्छे गुणों से पदवी प्राप्त की। आगे की पढ़ाई राजस्थान के विश्वविद्यालय, जयपुर से एम. ए. में राजनीति विज्ञान विषय लेकर सन १९७५ में उपाधि हासिल की। इसके साथ ही चार साल तक हेवाइन गिटार की शिक्षा लेकर शास्त्रीय संगीत से भी आंतरिक भावों के साथ जुड़े।

हरिराम मीणा का विवाह 'बाल विवाह प्रथा' के अनुसार जब आठवीं कक्षा में थे, तभी हुआ था। यह 'बाल विवाह की प्रथा' उनके समाज और अंचल में परम्परागत पध्दती से चली आयी हुई थी। उनका विवाह गाँव की लड़की रामधनी के साथ हो गया। फिर हरिराम मीणाजी ने अपने घर में पत्नी रामधनी का नाम रमा रखा। पत्नी रमा थेट ग्रामीण परिवेश से आई थी। वह अनपढ़ थी, लेकिन हरिराम मीणा के साथ रहकर आँठवीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की। हरिराम मीणाजी पुलिस की नौकरी एवं साहित्यिक सृजन के कारण परिवार को अपेक्षित समय नहीं दे पाए, इसका दुःख है, लेकिन एक कहावत है कि "कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है।" यह कहावत उनके जीवन में उतर आयी और जीवन तथ्यात्मक हुआ। हरिराम मीणाजी परिवार में पहले शिक्षा लेने वाले सदस्य है। परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी और परिवार का गुजारा करने के लिए उनको नौकरी की शख्त जरूरत थी, इसलिए एम. ए. की शिक्षा के दौरान नौकरी की तलाश करते रहे और समाज कल्याण विभाग में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के रूप में नौकरी मिल गयी। कुछ महिनों के बाद पंजाब नेशनल बँक, इलाहाबाद बँक, सेन्ट्रल बँक और अन्त में रिज़र्व बँक ऑफ इंण्डिया में क्लर्क के रूप में तीन-चार साल

नौकरी की। उनका मकसद एक ही था कि 'किसी भी तरह, किसी भी स्तर की, सरकारी नौकरी मिल जाए?' आखिर राजस्थान पुलिस सेवा में सन १९७९ में भर्ती हुए। सन १९९६ में आय. पी. एस. का प्रमोशन मिलकर पुलिस अधिकारी के रूप में राजस्थान के जिलों में कार्य करते रहे। उन्होंने राजस्थान के दस प्रभावित क्षेत्रों में जैसे भरतपुर, जोधपूर, नागौर आदि जिलों में उल्लेखनीय कार्य किया। आंतकवाद जिला श्रीगंगानगर में चार साल पुलिस सेवा का कार्य करने के बाद उनको पुलिस विभाग में उप महानिरिक्षक के रूप में पदोन्नती प्राप्त हुई। उसके बाद मई २०११ में पुलिस विभाग में ओर पदोन्नती मिलकर सशस्त्र बटालियन में पुलिस महानिरिक्षक सुरक्षा (आय. जी.) राजस्थान के पद पर कार्य करते रहे। और अब कुछ साल पहले पुलिस महानिरीक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए। संप्रति अखिल भारतीय आदिवासी साहित्य मंच, दिल्ली के अध्यक्ष के रूप में सक्रिय हैं।

हरिराम मीणाजी का बाहय और आंतरिक व्यक्तित्व में अलग तरह का आकर्षण हैं क्योंकि एकांत में 'मैं' हूँ इसलिए 'मैं' के अतिरिक्त मैं अन्य कुछ भी नहीं और 'मैं' होने का मुझे गर्व है। लेकिन 'मैं' के सत्य की खोज में इस 'मैं' एवं दृष्यादृष्य सृष्टि के विस्तार में स्वंय को यायावर सा अनुभव करता रहा हूँ। इससें स्पष्ट होता है कि उनका व्यक्तित्व निखरकर सामने आता है। वे प्रशासकीय अधिकारी हैं, इसलिए उनका व्यक्तित्व रूबाबदार हैं, उनके बोलचाल का अंदाज अलग हैं, वे हमेंशा अपने काम में तत्पर हैं, उन्हें किसी बात का गर्व नहीं हैं, वे हर समाज से जुड़े रहते हैं, वे लोकसेवा में सदैव कार्यरत हैं। वे आदिवासियों में सुधार लाना चाहते हैं इसलिए आदिवासियों से उनका निरन्तर सम्पर्क बना हुआ हैं। आदिवासियों के प्रति कटू सत्य खोजने का लगाव आदि गुणों से उनका व्यक्तित्व संपन्न हैं। हिन्दी साहित्य क्षेत्र में उन्होंने एक सफल लेखक के रूप में अपना स्थान बनाया हैं। वे लगातार समाज के नये रूप का दर्शन करते रहे, साहित्य बोध एवं सृजनशीलता का उनकी गद्य और पद्य रचनाओं में स्पष्टता निखर उठी हैं।

साहित्य लेखन की प्रेरणा के संदर्भ में हरिराम मीणाजी कहते है, "साहित्य लेखन की प्रेरणा संस्कारों की लम्बी प्रेरणा होती है, वह कोई घटना नहीं होती, इसलिए प्रेरणा को चित्रित करना कठिन काम है।" उनमें पढ़नें लिखने की रूची बचपन से ही रही है। स्कुल और कॉलेज के छात्र जीवन से ही अध्ययन काल में उन्हें साहित्य लेखन और फिलोसोफी पढ़ने का चस्का लगा था। हिन्दी साहित्य लेखन की रूची उन्हें बी. ए. व एम. ए. के अध्ययन काल में संगत, मित्रमंडली और अध्यापकों की प्रेरणा से मिली। उनकी यही प्रेरणा कविता एवं कथा साहित्य में फलश्रृत हुई। यह प्रेरणा जन्म से या पारिवारिक पृष्ठभूमि से जुड़ती है। उनके पिताजी लोकगींतो की रचना किया करते थे, खास करके सामुहिक गीत जिसें अंचल में कन्हैया कहते हैं, संभव है कि कविता अथवा साहित्य लिखने की प्रेरणा वहां से आयी हो।

हरिराम मीणाजी जी के जीवन में अनेक संघर्ष के अनुभव आते गये, जिसकी वजह से व्यवस्था के प्रति असंतोष, सामाजिक परिवर्तन एवं बेहतर भविष्य के सपने बनते गये और साहित्य के माध्यम से अपनी बात को प्रेरित किया। "लोकगीतों की मौखिक परम्परा के संस्कारों से समृध्द युवावस्था में छायावादी कविता से काफी प्रभावित हुए, लेकिन ग्रामीण परिवेश के लोकानुभवों के कारण अन्ततः कविता की लोकोन्मुखी परम्परा में ही साहित्य लिखने का चैन मिला।" सृजनधर्मी व्यक्ति की रचनाप्रक्रिया रूकती नहीं हैं इसलिए उन्होंने काव्यसृजन के साथ-साथ साहित्य के अन्य विधाओं में भी अपने अनुभव व विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

सन १९८८ में उन्होंने भरतपुर नौकरी के दौरान जयपूर में रखा साहित्य विशेष रूप सें वहीं मंगा लिया और नियमित रूप से अध्ययन करते रहे । इसी के साथ-साथ अपराध, मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय विषयों पर हिंदी और अंग्रेजी में आलेख लिखते थे। साहित्य लिखने में सबसें बड़ा सहयोग पत्नी रमाजी से मिला इसी सहयोग के कारण वे साहित्य का सृजन करते रहे और साहित्य एवं पुलिस क्षेत्र में विशेष पहचान बनायी।

लेखक अथवा साहित्यकार के रचनाकर्म को उसके व्यक्तिगत जीवन तथा अनुभवों से पृथक करकें नहीं परखा जा सकता है, क्योंकि रचनाकार के भाव एवं विचार उसके जीवन और अनुभव से ही निकलते हैं। रचनाकार जो कुछ भी देखता है, महसूस करता है, रचना की पृष्ठभूमि उसी से निर्मित होती है और वाणी उसे शब्दों द्वारा साहित्य में बदल देती है। साहित्य की विधा से हरिराम मीणाजी के सृजनता का परिचय प्राप्त होता है। उन्होंने कई विधाओं में कलम चलाकर साहित्य का सृजन किया और अपने अनुभव व विचारों की अभिव्यक्ति देकर सृजन के केन्द्र में दलित, दमित, शोषित मानवता, आदिवासी समाज, श्रमसंपन्न व्यापक लोक और अनवरत संघर्षरत प्रकृति एवं मानवेतर प्राणी जगत तथा बहुआयामी उत्तर आधूनिक विरूपताएँ हैं। साहित्य लेखन कर्म के स्तर पर उनकी दृष्टि, दिशा व लक्ष्य काफी हद तक सुस्पष्ट और निर्भान्त है। हरिराम मीणाजी के कविता संग्रह है, 'हाँ, चाँद मेरा है' (१९९९), 'सुबह के इंतजार में' (२००६), प्रबन्ध काव्य 'रोया नहीं था यक्ष' (२००८) आदि है। उनके यात्रा वृत्तांत है, 'सायबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक' (२००१), 'जंगल-जंगल जलियांवाला' (२००८) आदि। उनका उपन्यास 'धूणी तपे तीर' (२००८) आदि। आदिवासी विमर्श की दो पुस्तकें तथा समकालीन आदिवासी कविता (संपादन) पर एक पुस्तक प्रकाशित हैं। इसी के साथ हरिराम मीणाजी को कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके है। उसमें से भारतीय पुलिस पदक, राष्ट्रपति पुलिस पदक, वन्यजीव संरक्षण के लिए पद्मश्री सांखला अवार्ड (१९९९), डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार (२०००), राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च 'मीरां पुरस्कार' (२००३), केन्द्रीय हिंदी संस्थान द्वारा महापंडित राहुल सांकृत्यायन सम्मान (२००९), बिड़ला फ़ाउंडेशन के बिहारी पुरस्कार और विश्व हिंदी सम्मान आदि से विभूषित हैं।

निष्कर्षतः हरिराम मीणा जी के विविध आयामों की चर्चा करने पर यह बात सामने आती है, कि उनका जीवन गरीबी, शोषण, विद्रोह, सामाजिक, आर्थिक अभावों, पीड़ित, वंचित दलित और आदिवासी समाज के प्रति आस्था से उभरकर सामने आता है। समाज की वेदनाओं से व्यवस्था के प्रति विद्रोह और अपनी अस्मिता और अस्तित्व का गहराई से सम्बन्ध दिखाई देता है। अतः हरिराम मीणाजी आदिवासी समाज के एक वरिष्ठ बुद्धिजीवी, कवि, चिंतक, विचारक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

९.३ 'धूणी तपे तीर' उपन्यास का कथासार :

साहित्यकार हरिराम मीणा की यह प्रथम औपन्यासिक कृति है। इस उपन्यास में औपनिवेशिक अंग्रेजी शासन एवं देसी सामंती प्रणाली के विरूद्य गोविंद गुरू के द्वारा स्थापित 'सम्प-सभा' संगठन से आदिवासी समाज में जागृती व संघर्ष और मानगढ़ पर्वत पर घटित हुआ आदिवासी विद्रोह का यथार्थ चित्रण लेखक हरिराम मीणा ने किया है। उपन्यास में मेवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ और कुशलगढ़ सहित ईडर और संतरामपुर रियासत

तक की कथा केंद्र में रखी है। उपन्यास में प्रमुख पात्र गोविंद गुरू का है और कुरिया, पूंजा धीरा और अन्य कई पात्रों के साथ देशी रियासत और अंग्रेज़ पात्र को भी कथा में शामिल किया है। उपन्यास के प्रारंभ में बनजारा जाति का एक साधारण लड़का चकमक पत्थरों से आग निर्माण करता है । यह आग आदिवासियों में धीरे-धीरे एक स्वतंत्रता-संघर्ष का समुह बनाती है । गोविन्दा लोकनायक के रूप में परिवर्तित होकर गोविन्दा से गोविन्द, गोविन्द भगत और अतः गोविन्द गुरू के रूप में आदिवासी समाज में व्याप्त बुराइयों और रूढ़ियों को खत्म करने का सामुहिक प्रयास करता है । जहाँ तक संभव है, राजकाज के सामंती दमन का अहिंसक तरीके से विरोध भी करता है । गोविन्द गुरू सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और शोषन के विरूद्य आदिवासी समाज में समाजसुधारक तथा समाज को जागृत करने का कार्य करता है । गोविन्दा बचपन से ही आदिवासियों की सेवा करने की लालसा मन में पाला हुआ था । भुखिया गाँव में आदिवासियों की संख्या अधिक थी, वहाँ अनेक हादसे हुए थे, इस गाँव से गोविन्दा और उसके साथी बांसवाड़ा रियासत में जागीर का मुख्यालय गढ़ी गाँव की ओर जा रह थे । वहाँ चौक पर इक्कठा हुए लोगों को आधार देते हुए ज्ञान की बाते करता है कि "करम प्रधान जगत रचि राखा" अर्थात सदकर्म ही जीवन का आधार है । यह ज्ञान की बाते सुनते ही आदिवासी लोग चकित हो जाते है और उसे भगत आदमी कहना आरंभ करते हैं । इस बात से गोविन्दा को मन ही मन में खुशी होती है और आगे बढ़ता है । गढ़ी गाँव के भीलड़देव स्थान पर रूक कर बुर्जुगों से अभिवादन के साथ कुरिया सभी का परिचय देते हुऐ कहता है कि हम गाँव-गाँव में भ्रमण करके आदिवासी लोगों की सेवा करना चाहते है । तब उसी वक्त गाँव का आदिवासी मोदाना डामोर फसल बर्बाद के कारण महुड़ी की दारू पीकर रास्ते मे बड़बड़ता हुआ जाता है । इस दृश्य को गोविंद गुरु देखता है और मुखियाद्वारा गाँव की पंचायत बुलाकर, वहाँ प्रवचन देने से आदिवासी लोगों में सांमतशाही के विरोध में क्रोध की भावना निर्माण होने लगती है ।

उधर उदयपुर दरबार के महाराणा सज्जन सिंह सुनारी बाजार में हुई चोरी के बारे में विशेष रूप से ध्यान रखता है । महाराणा का सचिव दिल्ली से भारत सरकार के विदेश सचिव से मिला सन्देश पढ़कर सुनाता है । उसके बाद दरबार में आदिवासी समस्या लेकर आते है । लेकिन मेवाड़ का महाराणा भेदभाव का दृष्टिकोन अपनाकर और दबाव डालते हुए, समस्याओं को न सुलझाते हुए आदिवासियों को भगा देता हैं । दूसरी तरफ़ बारापाल के थानेदार ने पड़ोना गाँव के गमेती को मारने की खबर गांव में फैल गई और इस खबर से सैंकड़ो आदिवासी अपने पारम्पारिक हत्यार लेकर हमला करते है । हमले में थानेदार सहित शराब का ठेकेदार और अन्य लोग मारे जाते है, रियासत की इमारत ध्वस्त कर दी जाती है । महाराणा द्वारा हथियार बन्द फौज भेजकर गाँव में आग लगाकर ओर आंतक पैदा किया जाता है । आदिवासी भड़ककर पुलिस चौकी में आग लगा देते है । ऋषबदेव में भी छह-सात हजार आदिवासी ने फौज की तुकड़ी पर हमला किया । खैरवाड़ा छावनी पर भी विद्रोह ने आक्रमण करने का प्रयास किया । इन सभी घटनाओं पर अंग्रेजों की नज़र थी। विद्रोह को शान्त करने के लिए अंग्रेजोंने संदेश दिया कि महाराणा उनकी समस्याओं पर सहानुभूति पूर्वक विचार करेंगे । महाराणा के सचिव श्यामलदासने अहम् मुद्दों के साथ समझौता किया था, परंतु इस समझौते से अंग्रेज नाखुश थे । दूसरी तरफ अंग्रेज अधिकारी ए. जी. जी. ने 'गवर्नर जनरल आँफ कौंसिल' को विद्रोह का रिर्पोट भेज चुके थे कि “इतना बड़ा विद्रोह शांति वार्ता के माध्यम से समाप्त करने में अंगे्रज अफसर सफल रहें और आदिवासिंयो की संभावित टकराहट टल

गयी ।" अंग्रेज अधिकारीयों ने ए. जी. जी. द्वारा महाराणा पर दबाव बढ़ाकर नया संशोधित समझौता तैयार किया और अपने हित के अनुसार रियासत में प्रशासनिक सुधार व परिवर्तन किये।

डूंगरपुर रियासत के महारावल उदयसिंह का सहयोगी ठाकूर दलपतसिंह महारावल के प्रति शिकारगाह एवं मोर्चा तैयार करने के लिए हर परिवार से एक आदमी को बेगार के रूप में जबरदस्ती से काम करवाते है। उसी समय आदिवासियों के खेतों की फसल कटाई पर थी। गोविन्द भगत वहाँ जाकर काम बंद करवाता है। इसकी सफलता के बाद ऋषबदेव, बारापाल और पड़ोना में घटी हुई घटनाओं की जानकारी गोविंद भगत को मिली थी। सुरांता गाँव के सम्मेंलन में 'सम्प-सभा' स्थापन करने की घोषणा गोविन्द भगत करते है। 'सम्प-सभा' की स्थापना से कुरिया और पूंजा धीरा जैसे विश्वासु और खंबीर भगत मिलते है। महारावल उदयसिंह के मृत्यू के बाद किशोरावस्था में ही विजयसिंह डुंगरपूर दरबार के महारावल बनते है। दरबार में गोविन्द गुरू को बुलाकर रियासत के खिलाफ आदिवासियों को भड़काने, उनके हक, अकाल में बेगार, रियासत के विरोधी बाते, दारू बन्दी आदि पर चर्चा करते वक्त तनाव निर्माण हो जाता है। महारावल एक तरफ फैसला लेकर गोविन्द गुरू को गिरफ्तार करते है। यह गिरफ्तारी की खबर आग की तरह गांव, जंगल के कोने-कोने तक पहूंच जाती है। इसी समय अंग्रेजों ने टंट्या मामा और जोरिया भगत को फासी दी थी। गुरू को छुड़वाने के लिए सैंकड़ो आदिवासी कुरिया के नेतृत्व में डूंगरपुर की ओर बढ़ते है। कुरिया ने ऐैलान किया कि "सब भाई डुंगरपूर की ओर कुच करो। रास्ते में जो लोग मिलेंगे उन्हे भी साथ लेना है और गोविन्द गुरू को छुड़वाकर वापिस लाना हैं।" गुरू को छुड़वाने के लिए खाली पेट, अर्धंनगे और बुलंद हौसले से डुंगरपूर की तरफ आदिवासी रवाना हुए। गिरफ्तारी के बाद गोविन्द गुरू कोठरी में बैठे थे तब उन्हें अकाल का दृश्य आँखों के सामने दिखने लग जाता है। डुंगरपूर दरबार की तरफ बढ़ रहे लोगों को महारावल ने मारने का आदेश दिया परन्तू उनके ऊपर दबाव बढ़ता ही जा रहा था, इसलिए मध्यस्थता के रूप में सेठ दलपतराय मेहता की नियुक्ति की जाती है, और वह चालाकी से गोविन्द गुरू के साथ चर्चा करते है। अंत में कुरिया के जमानत पर गोविन्द गुरू को छोड़ दिया जाता है। गुरू को पुनः अपने बीच देखकरआदिवासी खुश हो जाते और जयकारा के नारे आकाश में गुंज उठते है। इस समय छप्पन्या का भीषण अकाल पड़ा था। लोग अन्न, पानी के लिए तरस रहे थे, भुखे-प्यासे इधर-उधर भटकते हूए मरने लगे। चारों तरफ मौंत का क्रुर तांड़व फैंलने लगा। रियासत के गैर जिम्मेदारी से आदिवासी भागों मे अन्न-जल-चारा पहुँच नहीं रहा था। दक्षिणी के पाँच रियासतों में आदिवासियों की भारी संख्या में मौत हो गयी थी। अंग्रेज अधिकारीयों ने भारत सरकार को रिपोर्ट भेजकर कहा कि जितनी मौत हुई उससें पहाड़ी क्षेत्रों में तीस प्रतिशत मौत हुई है। यहाँ कि आदिवासियों की श्रम-क्षमता अत्यंत कम होकर उनका मनोबल नीचे आया हैं। इन हालात में आदिवासी विद्रोह के लिए आगे नही आयेगें।

छप्पन्या का भीषण अकाल में गोविन्द गुरू परिवार को खो देते है और बासिया की छाणी मगरी छोड़कर गुजरात के संतरामपूर रियासत के नटवा गांव में बसते है। वहां विधवा स्त्री गनी से दुसरी शादी करके खेती व कृषि कर्म से जीवन गुजारने लगे। वहाँ गुरू को दो पुत्र पाप्त हुए। एक दिन अचानक अधेड़ उम्र का साधू आकर गोविन्द गुरू को आशिर्वाद देकर चला जाता है और गुरू सोचता है कि "यह कोई साधारण साधू नहीं लगता। अवश्य ही कोई दिव्य दूत है। ....शायद यह साधु मुझे चेताने आया है।" इसका गुरू पर गहरा असर पड़ता है और

विचार करते हूए गहरी नींद में सो जाता है। इस मीठी नींद में सुरंग का अद्भूत सपना देखता है। पत्नी उसे झिझोंड़कर जगाती हुई अर्ध निद्रावस्था में बड़बड़ाने लगते है। सुबह होते ही गोविन्द गुरू नटवा गांव छ़ोड़कर अपने जन्मभुमी पर पाँच साल बाद वापस लौट आते है। छाणी मगरी पर चल रहे कार्य को देखकर गोविन्द गुरू को सुख की अनुभूति हो जाती है। स्थानिक कार्यकताओं ने सीख के अनुसार 'सम्प-सभा' आन्दोलन को आगे बढ़ाया था। रियासत के महारावल व अंग्रेज आदिवासी विरोधी जो षड़यंत्र रचते थे, उसपर विचार-विमर्श करते हैं। गुरू के निर्देश में प्रमुख कार्यकताओं की गोपनीय बैठक पूंजा धीरा के घर आयोजित की थी, उसमें सम्प-सभा की गतिविधियों का केन्द्र मानगढ़ पहाड़ी को बनाया। बैठक में "अक्ल के घोडे पर सवार होकर चेतना आगे बढ़ती है।" इस चेतना के अनुसार गुरू 'सम्प-सभा' का काम करने के लिए कहते है। मानगढ़ के धूणी स्थल पर लगे पुरणमासी मेले में आदिवासी पारम्पारिक वेश भुषा धारण करके हजारों की संख्या में आये थे। मेले में गुरू के प्रवचन के बाद मानगढ़ का वायुमण्डल नारे लगाने से गुंजने लगा और घाटियों से प्रतिध्वनि आने लगी।

आदिवासियों के हित के लिए 'सम्प-सभा' का गठन करने की बाद सभी सदस्यों को मांसाहार, बुरी आदत आदि से वर्जित किया था। कुरिया को दारू बन्दी के अलावा गाँवों-गाँव में जागरती का काम करने की जिम्मेदारी दी जाती है। भक्ती, लोककल्याणकारी कार्य एवं स्वरक्षा आदि प्रमुख कार्य क्षेत्रों का बटवारा किया। आदिवासी गाँवों, इलाकों में समय की राह पर धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा था। मानगढ़ की मुख्य धूणी पर लगनेवाला पुन्यों का मेला केवल पन्द्रह दिन के बाद था। इस मेले हर रियासत के आदिवासी पुन्यों के मेले में पुर्व संध्यातक मानगढ़ पहुँच जाते है। आसपास के लोग सुबह आते है और कोई रास्तो पर चल रहे थे। 'सम्प-सभा' के भगत और सदस्य एक दिन पहले वहाँ पहुँच चूके थे। इस मेले के अवसर पर शांती के प्रतिक सफेद ध्वज लगाये। श्रध्दालू लोग धूणी में घी ड़ालकर हवन क्रिया करते है और गुरू के चरण स्पर्श करके आशीर्वाद लेते थे। हर जगह पर मौज-मस्ती, गीत-भजन, जान-पहचान, रिश्तेदारों से भेट, नृत्य व अन्य शारिरीक करतबो से गुजरते हूए मेले का हिस्सा बनते जा रहा थे। लोग अपने तरीके से पारम्पारिक वेश-भुषा व अलंकार पहनकर मेले का आनंद लेते हैं। भगत व कार्यकर्ता धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के उपदेश से लोगों को सम्बोधित करते हैं। मेले में 'सम्प-सभा' के चिन्ह और भैरव बाबा की प्रतिमा लगायी थी। गुरू का उपदेश था कि अंग्रेजों द्वारा विलायती कपड़ा व नमक बेचा जाता है, इसीकारण हम विदेशी वस्तूओं के गुलाम बनते है इसका हमें विरोध करना चाहिए। हमारे ऊपर अंग्रेजो ने जासुस लगा रखें है। हमें सावधानी से रहना होगा।

अंग्रेजों के द्वारा आयोजित कौंसिल कि बैठक में गोविन्द गुरू और सम्प-सभा की गतिविधियाँ, राज-कोष में आय की कमी, लेवी का असर, आदिवासियों में अंसतोष और शोषण कैसे किया जाए आदि बातों पर सदस्यों की राय लेकर अंकुश लगाने में गंभीरता से विचार करते है। मध्यस्थता के रूप में सेठ दलपतराय मेहता को गोविन्द गुरू के पास भेजने का निर्णय लिया जाता है। सेठ मेहता बासिया गाँव जाकर गोविन्द गुरू से कहते कि संत शिरोमणि मेरे हृदय में आपके लिए बहुत बड़ा सन्मान है। मुझे माफ करना। कौंसिल की सदस्यों के मन में यह धारणा बैठ गयी है कि सम्प-सभा के कार्यकर्ता राज की नितियों का खुलकर विरोध करने लगे हैं और आदिवासियों को उकसा रहें है। कहते है कि गोविन्द गुरू के कहने पर सब कुछ हो रहा है, जो राज-विरोधी की गतिविधि है। सेठ मेहता ने बहूत ही चतूराई से गुरू के सामने कौंसिल के

विचार प्रस्तुत किये और सुझाव देकर निकल जाते। छाणी मगरी पर पुजा पाठ होने के बाद गुरू अपने प्रवचन का प्रारंभ दोहे से करते है -

"दया धर्म का मुल्य है, पाप मुल्य अभिमान।

तुलसी दया न छोड़िये, जब लागि घट में प्राण ।।"

इसके साथ ही 'अहुड़ा वाला पाटोड़' सतयुग की भविष्य वाणी गुरू लोगों को सुनाते है।

सेठ मेहता के बीच बातचीत के बाद भी रियासतों के प्रति गोविन्द गुरू और भक्तों का दृष्टिकोन बदला नहीं था। रियासत के द्वारा नज़र रखने से गोविंद गुरू ईड़र रियासत के पालपट्टा में चले जाते है। वहाँ पर जागीर ठाकूर पृथ्वीसिंह भील व गरासियों पर जुल्म, अत्याचार करता था। इसकी जानकारी सोमा भगत गोविंद गुरू को देते है। गुरू ने गांव-गावों में जाकर 'संम्प-सभा' के उपदेशो से आदिवासियों में जागरती और भक्ती पैदा की। लोगों में नया रूप व नेतृत्व उभर कर आने से गांव के गमेती और मुखिया का प्रभाव कम होने लगा था। साम-दाम-दण्ड़-भेद की कुटनिती से ठाकुर पृथ्वीसिंह दक्षिणी राजपुताना व सीमावर्ती गुजरात के सम्पूर्ण इलाकों में आदिवासियों पर अत्याचार व शोषन करता है।

रोजड़ा गाव में धूणी स्थापना के बाद वहाँ धर्म और भक्ती प्रचार के निशान गुरू ने लगाये थे। धर्माभाई भगत 'सम्प-सभा' के नियमों का प्रचार-प्रसार करता है लेकिन कई गाँवों में आदिवासी समाज को जागृत करने के बावजुद खुद के लक्ष्मणपूरा गाँव में सौ प्रयासों के बाद भी जागरती का काम नहीं हुआ। इसलिए भोपा धूणी पर आकर गुरू को धर्माभाई भगत में खोट होने की बात करता है। रोजड़ा गाव के धूणी धाम पालपा जागीर के मुख्यालय में 'सम्प-सभा' के माध्यम से समस्याओं का निराकरण करने के लिए सोमा भगत व कलजी भगत के द्वारा जागीरदार के पास संदेश भेज दिया जाता है। रोजड़ा गाव में हुई बैठक में लक्ष्मणपूरा के आदिवासी गये थे। इसीलिए जागीरदार ठाकुर दड़वाह की जमीन पर बाबन्दी लगाने का आदेश देता है। इस जमीन को आदिवासीयों ने खुन-पसीना बहाकर खेती के लायक बनायी थी। इस संदर्भ में आदिवासियों का मुखिया अर्थात गमेती पीतरभाई और पटेल समाज का मुखिया जस्सुभाई ने जागीरदार से बातचित की लेकीन उसका कुछ नतीज़ा नहीं निकला। बाद में गमेती ने पंचायत बुलाकर फैसला लिया लेकिन गाँव में दो गट तैयार हो जाते हैं। अधिकांश आदिवासी सम्प-सभा के साथ जुड गये। अचानक धर्माभाई के मौत की खबर गांव के कोने-कोने में पहूंच गयी। गावों में आशंका जताई जा रही थी कि जागीरदार व पटेलो ने मिलकर हत्या की है। इस गर्माये माहोल में गुरू लोगों को शान्त करते है। ईड़र के कोतवाल ने काफी मशगत करके हत्यारों को पकड़ा लेकिन गुरू व लोगों के मन मे शंका बनी रहीं। गुरू ने सम्प-सभा के कार्य में तेजी लाने का ऐलान किया और सैंकड़ो आदिवासी पालपा जागीरदार व ईड़र रिसासत के विरूद्य विद्रोह के लिए तैयार हुए। इस परिस्थिती को देखते हुए महारावल ने सन्देश भेजकर बातचीत करने का आश्वासन दिया कि "लक्ष्मणपुरा के दड़वाह की जमीन गांव के आदिवासीयों मे बांट दी जायेगी। उन्हें स्थायी पैसे भी दे दिये जायेगें। बशर्ते कि वे नियमानूसार लेवी देने को राजी हो।" इस सन्देश से गुरू व सम्प-सभा के कार्यकर्ताओं ने जागीरदार से बातचित करके समझौता किया। दुसरे दिन गोविंद गुरू बासिया के लिए रवाने हुए।

अंग्रेजोंने दिल्ली दरबार के आयोजन में देश के पाँचो नरेशों के साथ मेवाड़ का महाराणा को भी आमंत्रित किया था। महाराणा फतेंहसिंह दिल्ली के लिए निकलते है लेकिन आधे रास्ते में 'चेतावणी रा चुंगट्या' दोहा मिलते ही दिल्ली में जाकर दरबार में भाग नहीं लेता है। इस दरबार में बांसवाड़ा, डुंगरपूर व ईड़र के महारावलों को भी आमन्त्रित किया था। महारावलोंने वायसराय को गोविन्द गुरू व सम्प-सभा के गतिविधियों से परिचित किया। उसकी गंभीरता से दखल लेते हुए उसके ऊपर कड़ी निगराणी के साथ कार्यवाही करों और ब्रिटिश क्राउन के प्रति निष्ठावान रहने को कहां जाता है।

'सम्प-सभा' के आन्दोलन का केन्द्र मानगढ़ पर्वत बनाया था। यहाँ हर रियासत में होनेवाली घटनाओं की जानकारी आती थी। पिछले पुर्णिमा की मेले में हजारों की संख्या में भाग लेकर जागरती की भावना दिखाई दी थी। जागीरदार व ठेकेदार द्वारा धूणियों को नुकसान पहुँचाया जाता है। इस खबर को गंभीरता से लेकर धूणी धामों की होनेवाली छेड़खानी बर्दाश्त नहीं कि जाएंगी, का आदेश गुरू द्वारा दिया जाता है। छपन्या के अकाल के दौरान रियासतों में जयराम पेशा कानून के तहत आदिवासी और सम्प-सभा के कार्यकर्ताओं का जागीरदार व पुलिस निर्दोष लोगों पर अत्याचार और उनका शोषण करते थे। इन ऐसी घटनाओं से गोविन्द गुरू चिंतित होकर महाराणा मेवाड़ व महारावलों को विरोध पत्र लिखकर भेज देते हैं लेकिन किसी ने भी पत्र का जबाब नहीं दिया। ऊपर से सम्प-सभा को बदनाम करने और आन्दोलन को कुचलने के लिए रियासतों द्वारा योजनाबद्य रणनिती तैयार की जाती है।

गोविंद गुरू ने हर रियासत में धूणियों की स्थापना की और निशान के रूप में सफेद रंग के ध्वज लगाये थे। मानगढ़ पर्वत पर सम्प-सभा के भगत व कार्यकर्ताओं से विचार-विमर्श करते हुए धूणियों की रक्षा खुद करने की घोषणा करते है। पूंजा धीरा गाँवों-गाँवों में घुमकर युवाओं को सम्प-सभा में शामिल होने के लिए प्रेरित करते थे, सेवानिवृत्त फौजीद्वारा बंदूक चलाने और निशाना लगाने सीखाया जाता है। पूंजा का सहायक थावरा रक्षा दल के सदस्यों को छापामार कैसी करनी, यह सीखाता है । पूंजा धीरा की बेटी कमली सहेलियों के साथ गोफन में पत्थर लेकर फेकने का अभ्यास करती है, तब एक पत्थर का तुकड़ा रक्षा दल का सदस्य नंदू को लगता है। नंदू उसे देखकर क्रुर होता है मगर थोड़ी ही देर में दोनों एक-दुजे पर प्रेम करने लगते है। होली में कमली दुल्हन की तरह सजी हूई थी और नंदू सज-धजकर युवक-युवतियों के साथ गेर नृत्य दोनों ही एक-दूसरे का हाथ पकड़कर खुब नाचते है। रात में सोने के लिए कमली को पानों व नंदू ने सम्प-सभा के भगत के घर पहुंचाया। उसके बाद नंदू धूणी धाम के शिलाखण्ड़ पर बैठकर बासुरी बजाता है। इस बासुरी की आवाज कमली को मधुर, मिठास लगती है। रात के अंतिम पहर में नंदू को निंद आती है और दोनों ही एक जैसा सपना देखते है।

वागड़ प्रदेश के जंगलो में सब वृक्ष गंभीर व शांत दिखाई दे रहे थे। आजू-बाजू का माहौल गरम होता जा रहा था। ब्रिटिश व रियासतों का चेहरा और क्रुर होने से आदिवासी मजबूर होकर पुरानी स्थिती मे लोट रहे थे। खजानों मे घट होने की वजह से रियासत, जागीरदार व ठेकेदार चिंतित होने लगे। आदिवासियों को भु-राजस्व, वनोपज, बेगार व आबकारी को लेकर परेशान करना तेज किया। इन सबकी खबर अंग्रेज के पास पहुँच जाती थी। इसलिए अंग्रेज अधिकारी ए.जी.जी. ने भारत सरकार के विदेश व राजनितिक विभाग को कोई ठोस निर्णय लेने का सुझाव दिया था। थावरा भगत के नेतृत्व में गुप्तचर की स्थापना की गयी थी और इन गुप्तचर

के सदस्यों द्वारा घट रही घटनाओं की जानकारी मानगढ़ धूणी धाम पर पहुँचा दी जाती थी। धूणी धामों की सुरक्षा व्यवस्था देखने के लिए गोविंद गुरू मुख्य इलाकों के गावों में जाने का निर्णय लेते है। धूणी धामों के प्रवास के दौरान आदिवासियों पर वनोपज पाबंदी, रियासतों के कठोर नियम आदि लागु किये हुए बताए जाते है। इसके बदले में जवाबी कार्यवाही करके रियासत क्या कदम उठाती हैं, इसपर सोचना होगा। आदिवासियों को वनोपज लुटने व उकसाने के आरोप गोविंद गुरू, कुरिया, थावरा व कलजी पर लगाये थे। गिरफ्तारी संभव होने से गुरू ईड़र रियासत के रोजड़ा गाँव में चले जाते है।

गोविन्द गुरू ईड़र रियासत के प्रवास के दौरान सम्प-सभा के भगतों को बुलाकर मार्गशीर्ष के मेले में अधिक से अधिक आदिवासियों को एकत्रित करने का सन्देश गमेतियों को देता है। रणनीती के तहत दीपावली के बाद रोग फैलने वाला है, उससे छूटकारा पाने के लिए मानगढ़ में आने का संन्देश दिया जाता है। 'हलकारो पाड्यो' का संदेश दक्षिणी राजपुताना के पाँच रियासत व गुजरात के दो रियासत में जगह-जगह ढोल बजाकर प्रचार किया जाता है। रियासतों के महारावल चिंतित होकर यह सम्प-सभा आन्दोलन राजपूत शासन के विरूद्ध मानते है। यह आदिवासी राज स्थापना का संकेत है। अंग्रेजों के द्वारा गुरू व पूंजाधीरा को गिरफ्तार के आदेश दिए जाने के बाद गोविन्द गुरू अधिक सुरक्षा व्यवस्था में रहने लगे और मानगढ़ पर दिन-रात पहारेकरी लगाये गए। 'हलकारो पाड्यो' के सन्देश से शैकड़ो आदिवासी मानगढ़ की तरफ रवाना हो चुके थे। रास्तों में आदिवासी लोगों ने प्रतापनगर दुर्ग पर हमला किया और कहीं-कही आदिवासी नियन्त्रण से बाहर हो गये थे। रियासतों मे चारों तरफ आहांकार मचा हुआ था।

आदिवासी विद्रोह को रोकने के लिए अंग्रेज अधिकारी 'चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ' ने ब्रिटिश सरकार के विदेश व राजनैतिक विभाग से अनुमति लेकर भारतीय पैदल सेना की एक कम्पनी मशिनगन और १०४ वेल्सले रायफल की कम्पनी रिझर्व के रूप में तैयार की। ए.जी.जी ने भारत सरकार के राजनैतिक विभाग व विदेश विभाग सचिव से अनुमति लेकर दो कम्पनी सामान ठोनेवाले खच्चरों के साथ मानगढ़ की ओर रवाना किया। मेवाड़ भील कौर खेरवाड़ा का कमाण्डेंट जे. पी. स्टोक्ले दो शशस्त्र कम्पनीयों को लेकर मानगढ़ के लिए रवाना हुए। देशी राज्यों की फौज भी मानगढ़ की तरफ निकली। इन फौजी दस्तों ने धूणी-धामों पर पड़ाव करते मांसाहारी खाना पकाया और धूणी धामों को अपवित्र करने का सिलसिला जारी रखा और मानगढ़ की ओर जानेवाले लोगों को रोका गया। मेले की तारीख से पहले पुरूष, स्त्रियाँ व बच्चे मानगढ़ पहुँच चुके थे। अंग्रेज गमेती के माध्यम से संदेश मानगढ़ भेजते है परंतु यह संदेश सकारात्मक न होने के कारण गुरू ने उसे नीचे नहीं जाने दिया। इस दरम्यान रेवकांठा के पोलिटिकल एजेंट का हस्ताक्षर युक्त सन्देश आया कि अंग्रेज समझौता करने के लिए तैयार है आपका प्रतिनिधि आम्बादरा भेज दीजिए। गुरू ने तीन प्रतिनिधी सदस्यों को समझाकर आम्बादरा के लिए रवाना किया। वार्ता असफल हो गई और फिर से धमकी भरे पत्र को पाकर निराश हो गए। आदिवासियों को सम्बोधित करते हुए गुरू कहते है कि "भुरेटियों हमारी मांगे नही मान रहे हैं और हमें मारने की धमकी दे रहे हैं। उनकी धमकियों से हमे ड़रना नहीं हैं। उनकी बन्दुको की नली से गोलिंयो की जगह पानी निकलेगा। इसलिए सभी निश्चिन्त रहें और मुकाबले के लिए डटे रहें।" गोविन्द गुरू ने समझौते के लिए दुसरा संदेश भेज दिया लेकिन इस सन्देश का अंग्रेजों की तरफ से कोई जवाब न आने पर गुरू ने अंग्रेजी फौजी का मुकाबला करने की कार्यवाही तेज कर दी। फौज धीरे-धीरे चढ़ाई करते हुए मानगढ़ पहाड़ पर पहुँच चुकी

थी। पहाड़ पर दो-तीन सौ सशस्त्र आदिवासी रखे थे। घने जंगल से अंग्रेजों की फौज उन्हें दिखाई नहीं दी। सैकड़ो की संख्या में आये हुऐ लोगों का ऊपर-निचे से सम्पर्क तुट चूका था। गोविन्द गुरू तनाव में ही लोगों को आशीर्वाद दे रहे थे और इस तनाव में भी आदिवासी भजन व किर्तनों से जीत की आशा करते रहे। श्रध्दालू आदिवासी धूणी हवन चढ़ाने की क्रिया करते रहे। तब मानगढ़ पठार के दक्षिण दिशा की ओर अंग्रेजी फौज की खबर आमोलिया का माधोनाई ने चिल्लाते हूए गोविन्द गुरू को देते है। भुरेटियों ने हमारे साथ दगा किया, उन्हें ललकार कर वहीं खड़े रहने की चेतावनी दी जाये। हमारे तरफ से कोई बन्दूक या तीर मत चलाना। धूणी स्थल के पास लोगों में हलचल मचने से गुरू ने तुरन्त ऐलान करके उत्तर दिशा की ओर जाकर शिलाओं व पेड़ो की ओट में छिप जाने का आदेश दिया। इस आदेश से हड़बड़ाहट व भगदड़ की परिस्थिती निर्माण हुई। सम्प-सभा के सदस्य, कार्यकर्ता और रक्षादल के सदस्य परम्परागत हत्यार लेकर सावधान हो गये। आदिवासी लोग समुह बनाकर धनुष-बाण, गंड़ासा, लाठी आदि हत्यार लेकर मुकाबला करने को तैयार रहे।

अंग्रेज अधिकारी कैप्टीन स्टोक्ले ने भीड़ का नजारा एक शिलाखण्ड़ पर चढ़कर पच्चीस-तीस हजार का अनुमान लगाया। भीड़ के जयकारे से आभास हो रहा था कि गुरू के एक इशारे पर आदिवासी कुछ भी कर सकते है। कैप्टीन स्टोक्ले ने दाहिने व बायें शिलाखण्ड़ो के आसरे में मशीनगन व रायफलों के साथ फौजी तुकड़ीयों को आदेश दिया, फायर! तड़.... तड़.... तड़ातड़..... गोलियों की आवाज सुनकर गोविन्द गुरू दौड़े गये। रक्षादल के सदस्योंने जबरदस्ती से रोककर घेराबंदी की और धूणी स्थल के पास झौपड़ी में सुरक्षित जगह पर लेकर आये । उस समय एक-दो सदस्यों को गोली लग गई । गुरू धूणी की ओर देखते रहें और मुँह से गीत के कुछ शब्द निकलते है -

"मानगढ़ मारी धूणी है

भूरेटिया नी मानु रे.....

नी मानू रे.................."

गुरू धूणी की राख अपने ललाट पर लगाते हुए मानगढ़ पठार पर पैदा हुए अप्रत्याक्षित दृश्य को देख रहे थे। "बहुत कलपाया है इन भूरेटियोंने। नीली छतरी वाले, अपना अदीठ हाथ हमारे माथे पर रखना। जय भोले नाथ! जय भैरव बाबा!!" यह पेट से पैदा हुए शब्दों को गुरू ने ऊंचे आवाज में बाहर निकाले, उन्हें महसूस हुआ कि उनके भीतर ‘मारू’ ढोल बज रहा है और नेपथ्य में सुनायी दे रही थी ‘धूमाल’ की प्रतिध्वनि। धूणी स्थल पर आदिवासी समुहने एक स्वर में गुरू ‘महाराज की जय’ का नारा दिया। इस जयकारा से मानगढ़ पठार का वातावरण गुंजायमान हो उठा। कैप्टीन स्टोक्ले के आदेश से आदिवासियों पर फ़ौज अधाधुन्द गोलियाँ चला रहे थे। रक्षादल के सदस्य एक के बाद एक ढेर होने लगे और कुछ रक्षादल के सदस्य पीछे से छुपकर वार करते थे। पठार पर मौत का क्रुर तांड़व मचा हुआ था। रक्षादल के सदस्यों में जोश था, मगर लढ़ने के लिए वे विवश हो गये थे। भागते भी कहा, भीड़ में भगदड़ मची हुई थी।

आदिवासी महिलाओं का दल हाथ में कुल्हाड़ी, पत्थर व गोफन लेकर लढ़ाई में आगे बढ़ता रहा। सुगनीने बुलंद आवाज में कहा कि "जब हमारे आदमी ही मर रहें है तो हम जी कर क्या

करेंगी। संकट की इस घड़ी में हमें जान की परवाह नहीं। जो बन पड़ेगा वह हम करेंगी।" महिलाओं का दल फौजियों से लढ़ता जा रहा था। इसमें बहादूर महिलाओं में सुगनी, कमली, पानों, मंगली आदि अंग्रेज फौजियों का सामना कर रही थी। अंग्रेज़ मशीनगन से लगातार गोलियों की बरसात कर रहे थे उसमें बहादूर स्त्रियों की मौत हो जाती हैं। गुरू की नजर धूणी के दिपक ज्योती पर गई, आग में तपे तीरों की तरह अंग्रेजों पर धावा बोल रहे थे। यह सब दृश्य गुरू ने अपने आँखों से देखा। "नरभाखी भेडियो, तुमने बहूत सारे भोले-भाले आदमियों की हत्या कर दी। निहत्थों, बुजुर्गो, औरतों व नादान बच्चियों पर भी रहम नहीं किया।" कहते हूए हताहतों के बीच में दौड़े। गुरू अंतर्द्वंद में फसकर सोचते है "सम्प-सभा के माध्यम से आरम्भ किये और इस मोड़ पर पहूंचे इतने बड़े और लम्बे आन्दोलन का ऐसा त्रासद अन्त! भक्तों, कार्यकर्ताओं व अगणित अनुयायियों का इस कदर सामूहिक नरसंहार!!" गुरू ने सोचा भी नहीं था कि जागृति की अखंड ज्योति शोषणकारी व आततायी फौज के सामने कुछ ही घड़ी में यूं बुझ जायेगी। गुरू की आँखे पहली बार अंगारीत हुई और सहज रहने वाला चेहरा तमतमने लगा।

"हम इन्सान हैं
इन्सानी हकों के लिए मुहिम छेड़ी है
जियेगें तो सन्मान से
मरेंगे तो सन्मान से!
बहादुर भगतो,
यह पीढ़ियों की लड़ाई है
लड़ाई जारी रहेगी
हां,
लड़ाई आरपार की.............।"

गोलियों की बौछारों के बावजूद संघर्ष जारी था। गुरू के ऐैलान के बाद सदस्यों और रक्षादल में नया जोश आता है। यह हौसला देखते कैप्टिन मशिनगन से और गोलियाँ चला देता है। कुरिया हताहतों के ढेर से होता हुआ कुण्डा घाटी की तरफ चला गया। धनुष्यबाण लेकर कैप्टिन की तरफ चलाया लेकिन तीर फौजी को लगा। उनके ऊपर गोलियाँ चलायी पर कुण्डा घाटी की ओर छिप गया। बौखलाया हूआ कुरिया भूरेटियों को गालियाँ दे रहा था। फौज की मशीनगन अंधाधून्द गोलियाँ बरसाकर नर-संहार का ताण्ड़व नृत्य करने के बाद थक चुकी थी। फौज ने आदिवासी नायकों को पकड़ना शुरू किया। सुबेदार अपनी बहादूरी पर नाज कर रहा था, तब सिंह की तरह दहाड़ते हुए हरियाने कुल्हाड़ी से एक ही वार से गर्दन काट दी। यह दृश्य को देखते अंग्रेज अधिकारी हतप्रभ हो गये। हरिया अदृश्य हो गया और नीचे घाटी से बुलन्द आवाज सबको सुनायी दी "दल्ली ऽ ऽ ऽ! मेंई बैर लेइ ली दो!! वह दल्ली का बदला लेकर अपना महाभारत जीत गया।"

मानगढ़ पठार से गिरफ्तार किए गोविन्द गुरू व आदिवासी लड़ाकुओं को फौजी घेरे में कतार बनाकर नीचे उतारा जा रहा था। बुलन्द आवाज में कुरिया ने 'हलकार' दिया और कुण्ड़ा की घाटी मे धूमाल की प्रतिध्वनि आने लगी। कुरिया का ऐैलान सुनकर मन के भीतर प्रवाहित आशा की नदीं में अचानक उफान आया। बंधे हुए दोनों हातों की मुठ्ठियां अपने आप भिंजती

चली गयी। गुरू अपना दाहिना हाथ आशीर्वाद के लिए उठाना चाहते थे, लेकिन वे विवश हो गये। फिर सिर ऊंचा करके आशीर्वाद दिया "हम एक मां के पेट के जाय तो नहीं, पर धूणी माता की गोद में पलकर हम एक-से भगत बने हैं। मुझ जैसी साधू की साधना का पूण्य-परताप तेरे साथ है। अब तू ही मेरी दाहिनी भुजा है। तू लड़ते रहना मेरे बांका भगत! धरम के कुरछेत्तर में देर-सबेर भोलेनाथ हमें जरूर जितायेगा!!"

इसतरह से देसी राजे व अंग्रेज के विरूध्द संघर्ष का यथार्थ चित्रण उपन्यास में लेखक हरिराम मीणाजी ने किया है।

९.४ सारांश :

आदिवासी लेखक हरिराम मीणा द्वारा लिखित उपन्यास 'धूणी तपे तीर' में आदिवासी परिवेश के उन अनछुए तथ्थों को प्रकाशित करता है, जिन्हें कभी मुख्यधारा के लोगों के द्वारा सामने लाने का प्रयास नहीं किया गया। आदिवासी समाज को सामाजिक रूप से तो उपेक्षित किया ही गया है, बल्कि स्वाधीनता संग्राम में आदिवासियों के योगदान को भी नजरअंदाज कर दिया। हरिराम मीणा ने इस उपन्यास में राजस्थान के आदिवासियों की सामाजिक स्थितियों को सामने लाते हुए स्वतत्रंता आंदोलन में उनके योगदान और शहादत को उजागर कर महत्वपूर्ण कार्य किया है। इतिहास की सुरंगों में छिपा रहा मानगढ़ पर्वत। देश का पहला जलियावाला कांड अमृतसर सन १९१९ में घटित होने से पहले दक्षिण राजस्थान के बांसवाड़ा में घटित हो चुका था, जिसमें जलियांवाला बाग से चार गुणा अधिक शहादत हुई।' १७ नवम्बर १९१३ के दिन अंग्रेजी हुकूमत और रियासत के राजा, महाराजा, जांगीरदार आदि ने मिलकर बड़ी बेरहमी से आदिवासियों को कुचल दिया। इसमें करीब-करीब १५०० के ऊपर आदिवासियों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। इस घटना को देश के सवर्ण इतिहास कारों ने अपने इतिहास ग्रंथों में इसे अंकित करने लायक नहीं समझा। क्योकि इस जलियांवाला कांड के नायक आदिवासी थे। भारतीय समाज-व्यवस्था और मुख्य धारा से अलग आदिवासी समाज मुख्यतः जंगल में रहने वाला समाज है। उनका वनों से सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उनकी जीवनयापन करने की शैली भी जल, जंगल और जमीन से जुड़ी रही है।

९.५ वैकल्पिक प्रश्न :

१. लेखक हरिराम मीणा 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में कहाँ की घटना प्रस्तुत करते है?

(क) डूंगरपुर (ख) मानगढ़

(ग) चिल्लास (घ) बछिया

२. हरिराम मीणाजी का जन्म सवाई माधोपुर जिले के किस गांव में हुआ?

(क) डूंगरपुर (ख) बामनवास गांव

(ग) करोली (घ) चिल्लास गांव

३. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में बंजारा जाती का लड़का किसके आग निर्माण करता हैं ?

(क) फूलों से (ख) पत्थरो से

(ग) लकड़ी से (घ) जादुई से

४. गोविंदा बचपने से ही किसकी सेवा करना चाहता था?

(क) महारावलों की (ख) आदिवासियों की

(ग) अंग्रेजों की (घ) ठाकुरों की

५. आदिवासी अपनी समस्या दरबार में लेकर जाते है तब कहाँ का महाराणा समस्याओं पर ध्यान नहीं देता है?

(क) डूंगरपुर दरबार का महाराणा (ख) उदयपुर दरबार का महाराणा

(ग) बांसवाड़ा का महाराणा (घ) ईड़र रियासत के महाराणा

६. रोजड़ा गांव में हुई सम्प-सभा कि बैठक में कहां के आदिवासी शामिल हुए थे?

(क) लक्ष्मणपूरा गांव (ख) बासिया गांव

(ग) पालपट्टा गांव (घ) मानगढ़ के

९.६ लघुत्तरीय प्रश्न :

१. लेखक हरिराम मीणा के व्यक्तित्व और कृतित्व को संक्षिप्त में स्पष्ट करें?

२. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में कुरिया के संघर्ष को स्पष्ट कीजिए?

३. 'धूणी तपे तीर' में मानगढ़ पठार पर निर्माण हुई परिस्थिति का वर्णन कीजिए?

९.७ बोध प्रश्न :

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास के कथानक पर विस्तार से प्रकाश डालिए?

२. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में गोविंद गुरू के कार्य को विस्तार से लिखिए?

३. लेखक हरिराम मीणा का परिचय देकर 'धूणी तपे तीर' उपन्यास के कथानक को स्पष्ट करों?

९.८ संदर्भ सूची :

१. लेखकिय साक्षात्कार

२. सीमा संदेश - (वृत्त पत्र - राजस्थान)

३. धूणी तपे तीर - हरिराम मीणा

❋❋❋❋❋❋❋

१०

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में पात्रों का चरित्र-चित्रण

इकाई की रूपरेखा

१०.० इकाई का उद्देश्य

१०.१ प्रस्तावना

१०.२ 'धूणी तपे तीर' उपन्यास मे पात्रों का चरित्र-चित्रण

  १०.२.१ गोविंद गुरू

  १०.२.२ कुरिया दनोत

  १०.२.३ पूंजा धीरा

  १०.२.४ कमली

१०.३ सारांश

१०.४ वैकल्पिक प्रश्न

१०.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१०.६ बोध प्रश्न

१०.७ संदर्भ सूची

१०.० इकाई का उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्याय में निम्नलिखित बिदुंओं का छात्र अध्ययन करेंगे -

- 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में चित्रित पात्रों का छात्र अध्ययन करेंगे।
- उपन्यास के चयनित पात्रों के चरित्र-चित्रण को विस्तार से जान सकेंगे।

१०.१ प्रस्तावना:

आज उपन्यास सिर्फ मनोंरजन का शौक पुरा करने का साधन नहीं रहा है, बल्कि उसमें मानव जीवन का यथार्थवादी, आदर्शवादी या आदर्शोन्मुख यथार्थवादी चित्र बन गया है। जीवन की जटिलता, यथार्थ और उसका असली रूप चरित्र-चित्रण के माध्यम से ही व्यक्त होता है। जीवन के सम्बन्ध में बात करतें समय कहीं न कहीं व्यक्ति के अनुभव के सन्दर्भ में ही बोलना पड़ता है इसलिए उपन्यास में कई बार कथा जटिल, बोझ के परिपार्श्व में चली जाती है और उपन्यास के मुख्य कथा नायक ही याद रह जाते है। मुख्य पात्र वह होता जो आदि से अन्त तक मौजूद रहते हुए कथानक को विशेष बना देता है। कथानक के केन्द्र में मुख्य पात्र होता है, मुख्य पात्र के माध्यम से कथानक का विकास होता है। गौण पात्र भी कथानक के विकास

में योगदान देते है, किन्तू प्रमुख पात्र ही उपन्यास में एक विशेष पहचान बनकर पाठक के ह्दय में अपनी जगह बना लेता है। उपन्यास की सारी कथावस्तु मुख्य पात्र के ईर्द-गिर्द घुमती है। प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य पात्र के रूप में गोविन्द गुरू का चरित्र-चित्रण किया गया है।

१०.२ 'धूणी तपे तीर' उपन्यास मे पात्रों का चरित्र-चित्रण :

१०.२.१ गोविंद गुरू:

आदिवासी उपन्यास 'धूणी तपे तीर' में लेखक हरिराम मीणाजी ने कई पात्रों का चित्रण किया है। परंतु नायक के रूप में गोविंद गुरू के चरित्र-चित्रण को बखुबी से चित्रित किया है और उपन्यास में सबसे अधिक आकर्षक, सजीव, प्रभावी एवं जीवन्त चरित्र है गोविंद गुरू का। यह उपन्यास का प्रमुख और केन्द्रिय पात्र के रूप में रहा है। उपन्यास कि कथावस्तु गोविंद गुरू के इर्द-गिर्द घूमती हुई नज़र आती है और वे आदिवासियों के गुरू और मसिहा के रूप में दिखाई देते है। सभी पात्र गोविंद गुरू के चरित्र से प्रभावित है। वे एक गतिशील चरित्र हैं। गोविंद गुरु आदिवासी नहीं थे। वे बंजारा समाज के है। उनके गुरू राजगिरी गोसाईं थे। "डुंगरपुर रियासत के बासिया गाँव में गोवारिया गोत्र के एक साधारण बंजारा परिवार में गोविंदा का जन्म हुआ था। बाप का नाम बेसर और माँ का नाम लाटकी था। गोविंदा ने बचपन में अनौपचारिक शिक्षा राजगिरी गोसाईं से ग्रहण की। राजगिरी गोसाई गाँव के मंदिर में पुजारी था।.... गुरूवत, राजगिरी का गोविंदा पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह स्वंय को गोविंद गिरी कहलाना पसन्द करने लगा।" गोविंद गुरू बचपन में गोविन्दा नाम से प्रसिद्ध हुए थे और उसके बाद गोविंदा एक होनहार व ज्ञानी किशोर के रूप में उभरता है।

गोविंद गुरू सेवाभावी पर दुःख भंजक व्यक्तित्व है। गोविंदा से गोविंद भगत बन जाता है। गोविन्द भगत अपने साथियों के साथ गावों-गावों में घुमकर दुःख तकलीफों से निजात दिलाने का रात-दिन प्रयास करता है और दारू से होनेवाले नुकसान के बारें में लोगों को अवगत कराता है। गोविंद गुरू एक समाज सुधारक इंसान के रूप में भी कार्य करता है। वे निरंतर आदिवासियों में जागरती का काम अपने चुनिंदा साथियों को लेकर कर रहे थे। चोरी-लूट, बेगार, शराब सेवन, माँसाहार आदि को लेकर अभियान चला रहे थे। निरंतर अपने कार्य को अंतिम कार्य समझकर आदिवासियों को समझाता है। लगान, स्वदेशी के साथ-साथ शिक्षा को ज्यादा महत्व देता था। इसलिए कहते थे "पढ़ाई लिखाई के महत्व को समझो। मैं स्कूल में नहीं पढ़ा, लेकिन इधर-उधर से आखर ज्ञान सीख लिया। तुम भी सीखो। बच्चों को पढ़ाओ। तभी वे समझदार बनेंगे। गाँव-गाँव में जो भी थोड़ा पढ़ा-लिखा हो, उसका धर्म है कि अन्य लोगों को पढ़ाये। पढ़ाई घर के वातावरण से होती है इसलिए बड़े आदमी भी शिक्षा प्राप्त करें। राजा, जागीरदार, हाकिम की बेगार मत करो। इनमें से किसी का भी अन्याय मत सहो। अन्याय का मुकाबला बहादुरी से करो।"

गोविंद गुरू निर्भय और नीडर व्यक्तित्व के थे । डूंगरपूर दरबार में महारावल विजयसिंह के साथ बातचीत के दौरान गोविंद गुरू के निर्भय व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त होता है । वे आदिवासियों के मुक्तिदाता के रूप में सामने आते है। "मानव सेवा के लिए कोई पद की जरूरत नहीं होती महाराज। मैं मेरा काम संतों की परंपरा के अनुसार कर रहा हूं। मुझे ऐसे ही करने दो।" महारावल को गोविंद गुरू की बाते चुभी जाती है। साथ ही उनके व्यक्तित्व की महानता की भी एहसास हो रहा था। "गोविंद! मैं तेरी इज्जत करना चाहता था। लेकिन तू तो सर पर चढ़ा जा रहा है। तू जो बोल रहा है वह राजद्रौह है। आखिरी बार चेता रहा हूं। हमारी बात मानेगा या जंगली व उत्पाती आदिवासियों को उकसाता रहेगा ? मैं अन्याय के खिलाफ लडूंगा। गोविंद गुरू ने कुछ देर चुप रह कर अन्त में अपना मत दृढ़ता के साथ गम्भीर मुद्रा में महारावल के सामने रख दिया।" गोविंद गुरू आदिवासी लोगों के लिए हर परिस्थिति में मसीहा बनकर खड़े होते है। गोविंदा से गोविंद भगत और अब गोविंद गुरू बन चुके थे। गोविंद गुरू का आदेश आदिवासी लोग मानने लगे थे। आदिवासी गोविंद गुरू को मुक्तिदायक महान पुरूष की तरह मान रहे थे। उनके एक-एक शब्द को अत्यंत पवित्र और आदेशात्मक मानने लगे थे।

गोविंद गुरू नये धर्म के संस्थापक थे । गुप्तचर हेमिल्टन ने बम्बई सरकार को भेजी अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "गोविन्द गुरू द्वारा प्रवर्तित नई धार्मिक आस्था राजपूताना, मध्य भारत और गुजरात के आदिवासी अंचलों में जंगल की आग की तरह फैल रही है। इसकी सफलता वास्तव में इतनी जबरदस्त है कि किसी भी व्यक्ति के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या गोविंद गुरू, जो वस्तुतः स्थानीय लोगों में एक बनजारा के रूप में जाना जाता रहा था और न वह अधिक पढ़ा लिखा है, न ही उसमें कोई चमत्कार फिर वह इस नये धर्म का संस्थापक-प्रवर्तक के रूप में कैसे पूजा जाने लगा ? गोविंद गुरू का जैन या ऐसे किसी धर्म से कोई लेना-देना नहीं है । उसका स्वयं का धर्म है, जिसके मूल सिद्धांत धूणी, हवन और सदाचरण है जिसमें शांति व अहिंसा प्रमुख तत्व है।" गोविंद गुरू जो वस्तुतः वहाँ पर स्थानीय लोगों में एक बनजारा के रूप में जाना जाता था और इसी बनजारा समाज का महान व्यक्ति आदिवासियों का गुरू बना। वहीं सम्पसभा का सुत्रधार रहा। सम्पसभा के आंदोलन का केंद्र मानगढ़ पर्वत को रखा था । वहीं पर धूणी की स्थापना करके आवास बनाया था । उनका नेतृत्व प्रभावी, कुशल और सर्वसामान्य था। उनका विराट व्यक्तित्व बेहद ही आकर्षक और एक क्रांतिकारी व्यक्तित्व के रूप में उभरा था। इसी के साथ गोविंद गुरू एक बेहद स्वाभिमानी व्यक्ति थे । अंग्रेजों के साथ आर-पार की लड़ाई के लिए वे अपने योद्धाओं को संदेश देते है और लड़ने के लिए तैयार करते है।

"हम इन्सान हैं
इन्सानी हकों के लिए मुहिम छेड़ी है
जियेंगे तो सम्मान से
मरेंगे तो सम्मान से।

बहादुर भगतो,
यह पीढ़ियों की लड़ाई है
लड़ाई जारी रहेगी
हाँ,
लड़ाई आरपार की....।"

अतः गोविन्द गुरू का चरित्र, उस गोविन्दा से जो उपन्यास के प्रारम्भ में बहुत गौर से अपने परिवेश को देखता पाया जाता था, अन्त होते-होते अपने कुशल नेतृत्व से एक बड़े मानवीय संघर्ष को अंजाम देता है। यह ऐतिहासिक घटना विद्रोह का रूप ले लेती है पर गोविन्द गुरू का चरित्र सत्य के प्रति आग्रहवान् नायक सा चरित्र प्रस्तुत होता है। गोविन्द गुरू सत्य की साक्षात मूर्ति लगती है। सत्य को जीवन में धारण करने के कारण ही गोविन्द गुरू वंदनीय बन गए है। उपन्यासकार ने नायक के चरित्र को विशेष रणनीति के तहत सवारा है। लेखक का आग्रह तो रहा ही है कि गोविन्द गुरू एक ऐसे रूप में उजागर हो जो हमारे देश के समसामयिक यथार्थ की धूणी में तपे तीरों को अपने लक्ष्य तक पहुंचा सके।

१०.२.२ कुरिया दनोत:

उपन्यास दूसरा महत्वपूर्ण पात्र है कुरिया दनोत। कुरिया एक जीवन्त, सजीव, सशक्त व प्रभावी चरित्र है। उपन्यास में आरंभ से लेकर अंत तक बना रहा है। संपसभा के संस्थापकों में से एक है। वह शुरूआत से लेकर अंत तक संपसभा के आंदोलन को एक विशिष्ट स्तर पर ले जाता है। गोविंद गुरू का दाहिना हाथ के साथ चेहता भी है। वह बहादुर है, निडर है, आत्मविश्वासी है और स्पष्ट वक्ता भी है। गोविंद गुरू के गिरफ्तारी के समय गाँवों - गाँवों में घुमकर रियासतों के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए आदिवासी लोगों को इकट्ठा किया था। "कुरिया भगत तेल और तेल की धार देखने वाला मरद आदमी था। वह पते की दो टुक बात कहनें में भरोसा रखने वाला शख्स था। नाटा कद, चेचक के दागों से भरा गोल चेहरा, सांवली देह, तांबई आंखें, चपटी नाक, बेतरतीब दाढ़ी, मगर नैसर्गिक रूप से बल खाती तनी हुई मुंछें। जिस काया को टंकने के लिए कभी पूरा कपड़ा न मिला हो, जिस शख्स को सोने के लिए सुरक्षित छत न मिली हो - वह कुरिया दनोंत भीड़ को सम्बोधित कर रहा था और भीड़ में शरीक लोग केवल उसकी ओर मुखातिब थे। कुरिया का हर हाव-भाव उन्हें प्रभावित कर रहा था। नेक, ईमानदार, पहाड़ों का लाल, बहादुर कुरिया आत्मविश्वास से भरा व्यक्तित्व बनता जा रहा था।"

कुरिया दनोत पढ़ा लिखा नहीं था। फिर भी काफी समझदार इंसान था। गोविंद गुरू के नये धर्म के प्रति वह बड़ा सशंकित रहता था। वह अपनी शंका को बेधड़क से गुरू के सामने रखता था। कहता था "गोविन्द गुरू आदमी तो भला है, धर्म की बातें करता है, आदिवासियों में पड़ी बुरी लतों को छुड़ाने की बात करता है। फिर यह हमारे लोक देवताओं और पुश्तैनी धरम की सीख की जगह केवल धूणी वाले धरम की बात क्यों करता है?" कुरिया गर्म मिजाजी एवं उग्र

स्वभाव का व्यक्ति था। वह अति उत्साही व साहसी था किंतु गंभीरता का सदंतर अभाव था। अर्थात वह वीर था किन्तु धीर नहीं था। छोटी-छोटी बातों को लेकर न केवल आवेशयुक्त हो जाता था किंतु अपना आपा भी खो बैठता था। नयी पीढ़ी के युवा वर्ग में कुरिया काफी लोकप्रिय था। इसीकारण उसे आदिवासी भागों में संपसभा के सदस्य बनाने की जिम्मेदारी गोविंद गुरू के द्ववारा दी जाती है। "गोविंद गुरू को जितना पूंजा प्रिय था, कुरिया उससे कम प्रिय नहीं था। कुरिया को उम्मीद थी कि उसे रक्षा-दलों का प्रभारी बनाया जायेगा, लेकिन ऐसा नहीं किया गया। अति उत्साही होने की वजह से कुरिया युवावस्था से ही आदिवासियों की नयी पीढ़ी में काफी लोकप्रिय था और वह युवाओं को रक्षा-दलों में कुशलता से सम्मिलित करने में निपुण था। गोविंद गुरू और पूंजा धीरा ने यह सोचा कि कुरिया थोड़ा गर्म स्वभाव का है। कहीं बिना बात कोई बखेड़ा खड़ा न कर दे, इसलिए उसे रक्षा दल का नेतृत्व न दिया जाकर दूसरा काम सौंपा गया जो उन हालात में उसके लिए भी अधिक महत्वपूर्ण था।.... यह किसी को पता नहीं था कि कुरिया के भीतर आदिवासी नायक का एक बड़ा चरित्र धीरे-धीरे पैदा होता जा रहा था।" अंत में सौपी गई जिम्मेदारी को स्विकार भी करता है।

कुरिया अपार साहसी व जुझारू योद्धा था। वह एक क्रांतिकारी को आगे लेकर बढ़ने वाला चरित्र था। वह आर-पार की लड़ाई में विश्वास रखता था। गोविंद गुरू की ढीले-ढाले नेतृत्व से काफी हद तक नाराज था। इसलिए उपन्यास में बार-बार 'धूमाल' की बात करता है। शत्रु सेना के पहाड़ पर चढ़ आने से बौखलाकर आवेश में कहता है "गुरू महाराज, भूरेटिया छाती पर चढ़ आये हैं। मोर्चाबंदी के लिए खड़ी की गयी पत्थरों की दीवार के उस तरफ फौजें आ चुकी हैं। रक्षा दल के सदस्य व हमारे अन्य हथियारबंद आदमी आपके हुकुम का इंतज़ार कर रहे हैं। भूरेटिया की फौज धावा बोलनेवाली है। धूमाल अब नहीं होगा तो कब होगा?" इस तरह से कुरिया के चरित्र को लेखक हरिराम मीणा जी एक आक्रमक, संघर्षशील एवं परिस्थिति के अनुसार विद्रोही के रूप में उसे चित्रित किया है।

१०.२.३ पूंजा धीरा:

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में तिसरा महत्वपूर्ण चरित्र है पूंजा धीरा का। वह उपन्यास में अंत तक बना रहता है। पूंजा धीरा धीर और गंभीर प्रकृति का व्यक्ति था। गोविंद गुरू का सर्वाधिक प्रिय भगत था। डूंगर गाँव के गमेती का बेटा। गोविंद गुरू के उमर से कुछ साल बड़ा था। फिर भी गोविंद गुरू का सम्मान के साथ आदर करता था। "पूंजा धीरा गोविन्द गुरू से तीन साल बड़ा था। उसका पिता धीरा पारगी संतरामपूर रियासत के डूंगर गाँव का निवासी था और डूंगर, भावरी व गडरा का गमेती था।" इसकारण रियासत के आदमी पुलिस घर मे आकर लोगों से बैठ बेगार लेते थे और आदिवासी महिलाओं का अपमान करते थे। इसे देखकर पूंजा धीरा क्रोधित हो जाता था। सन् १८७८ में उसने रियासत के अधिकारी व पुलिसकर्मियों के अन्याय व अत्याचारों का विरोध करने के लिए संपसभा नामक सामाजिक संगठन की स्थापना की। अतः पूंजा धीरा ही संप सभा के संस्थापक थे। वह एक विचारशील व्यक्ति था। संपसभा के

किसी भी कार्य के लिए उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी और कार्यविभाजन की प्रक्रिया को भी सम्मान के साथ निभाता है। गोविंद गुरू रक्षादल के प्रशिक्षण की जिम्मेदारी पूंजा धीरा को सौपते है। क्योंकि पूंजा धीरा गोविंद गुरू से तीन साल बड़ा था। गोविंद गुरू आयु में बड़े व्यक्ति को सम्मान के साथ स्थान देते थे। विशेषता पूंजा धीरा गोविंद गुरू का प्रमुख सहयोगी था। पूंजा और कुरिया दोनों ही गोविंद गुरू की भूजाएँ थे। कोई भी फैसला हो तो गोविंद गुरू हमेशा पूंजा धीरा से सल्ला-मसलत करते थे। गोविंद गुरू के गिरफ्तारी के समय पूंजा धीरा गाँवों में भ्रमण करके गोविंद गुरू को छुड़वाने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संपसभा से जुड़ने के लिए आदिवासी युवकों को अभिप्रेत करते थे। “वागड, मेवाड़ व सीमावर्ती गुजरात के सम्पूर्ण आदिवासी क्षेत्र में चल रहे सम्प-सभा के आन्दोलन के सुत्रधार गोविंद गुरू का प्रभाव, वर्चस्व व नेतृत्व सर्वमान्य था। इसके बावजूद आन्दोलन सम्बन्धी जो भी अहम् फैसले करने होते थे, उनपर गोविंद गुरू अपने विश्वसनीय भगत साथियों से सलाह-मशाविरा करते थे। यूं तो सभी भगत और अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ता उनके प्रिय थे, लेकिन पूंजा धीरा और कुरिया दनोत सर्वाधिक निकट थे। ये दोनों गोविंद गुरू के साथ सम्प-सभा के संस्थापक सदस्य थे।” गोविंद गुरू के गीतों को सूनने के बाद कई बार पूंजा के मन में आशंका उठती है लेकिन इस गीतों के माध्यम से चुनौती के ऊपर विचार-विमर्श करता है। पूंजा धीरा बहुत गहरा आदमी था। बात को पेट में रखना महत्वपूर्ण समझता था। इस तरह से उपन्यासकार हरिराम मीणा जी ने पूंजा धीरा को बड़े संयम से सँवारते हुए चरित्र के वृद्धि को बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है। इसके साथ ही मान-सम्मान, सुख-दुख, आशा-निराशा और समझदार आदि भावनाओं को पुरी विविधता के साथ इस पात्र का निर्माण उपन्यास में किया है।

१०.२.४ कमली:

प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री पात्र के रूप में 'कमली' नाम का चरित्र चित्रण हैं। वह सम्प-सभा के भगत पूंजा धीरा की होनहार बेटी है। उपन्यास की कथा के उत्तरार्द्ध में कमली का बड़ा प्रभावकारी चरित्र है। उपन्यास में गिने चुने स्त्री पात्रों में कमली का सबसे अधिक आकर्षक और क्रांतिकारी चरित्र है। वह सुंदर युवती है और संप सभा का सदस्य नन्दू से प्रेम करती है। “छरहरी बदन की कमली। साँवला रंग। सलौनी सूरत। गोल चेहरा। चमकीली आँखें। आँखों के ऊपर नैसर्गिक काली भौहें। राता रंग के घाघरा व पीली ओढ़नी में कमली वसंत-सुंदरी लग रही थी। कुँआरी लड़कियाँ माथे पर ओढ़नी नहीं रखतीं। पीठ तक लम्बे घने व काले केश लटके हुए थे। सिर के ऊपर बालों में ललाट के ऊपर चाँदी की राखड़ी गुँथी हुई थी।” कमली बड़ी ही होनहार और समझदार युवती थी। पिताजी और गोविन्द गुरू के सानिध्य में रहकर सम्प-सभा की गतिविधियों से भलीभाँति वाकिफ हो चुकी थी और सहेलियों में जागरती की भावना जागृत करती रही हैं। गोविन्द गुरू की पत्नी गनी के साथ रहकर उसे ममता की छाया मिलती हैं। वह गोफन का अभ्यास करते वक्त रक्षादल की तरफ इशारा करती हुए सहेलियों को कहती है "छोरे जब बंदुक चलायेंगे तो हम क्या गोफन नहीं चला सकती?" सम्प-सभा जागरती के प्रति सहेलियों को तैयार करती है।

मासुम कमली परिपक्व होकर नंदु से प्रेम करने लगती है। वह दुल्हन की तरह सज धजकर गोविन्द गुरू की सहमती से होली त्यौहार के लिए पानो के साथ आमलिया जाती है। "कमली भी दुल्हन की तरह सज-संवर कर आमलिया पहुंची थी। उसकी कलाइयों में लाख की चूड़िया व कुक्कड़ विलास के भोरिये थे। चांदी का कंदोरा कमर में पहन रखा था। बाजुओं में झुमकेदार चांदी के बाजूबंद थे। सिर पर चांदी की राखड़ी गुंथी हुई थी। बालों की चोटी में काला फुंदा कमर तक झूल रहा था। उसने राता घाघरा व लाल छींटों वाली पीली ओढनी पहन रखी थी जिसका पल्लू कंधे पर लटका हुआ था।" युवक-युवतीयों के साथ गैर नृत्य में कमली नंदु का हाथ पकड़कर खुब नाचती है और रात में सोते के वक्त बासुरी की मीठास मोहक धून सुनती है। अन्ततः नंदु के काल्पनिक स्पर्श की अनुभूति के साथ गहरी नींद आती है और एक सपना देखती हैं।

मानगढ़ पठार के पुरणमासी मेले में भुरटियों की फौज व देसी सामंतशाही की गतिविधियों से मासुम कमली अनजान थी। कमली का गुरू महाराज और पिता के प्रति लगाव के साथ ही उसके मन में नंदु भी बसा था, इसलिए वह छोड़कर जाने में अड़ी रही। अंग्रेजों की गोलियों से आदिवासी नायक ढ़ेर होने लगे। बहादुर कमली रक्षादल के झौपड़ियों की औट से सखियों के साथ पत्थर के तुकड़े फेंकती थी। हताहतों और भगदड़ की माहोल में नंदु को देखने निकलते ही कमली के पेट में गोली लगी। उसे होश आने से टूटे-फुटे शब्दों में बड़बड़ाई 'नं-दु'। 'सम्प-सभा' के आन्दोलन में बहादुर स्त्री कमली ने प्राण की आहुति दे दी।

इसी के साथ स्त्री पात्रों में गोविंद गुरू की दुसरी पत्नी गनी, सुगनी, पानो, मंगली आदि स्त्री पात्र उपन्यास की कथा क्रम को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण पात्र रहे है।

१०.२.५ गौण पात्र:

प्रस्तुत उपन्यास में उपयुक्त पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्र भी है। इन गौण पात्रों का भी उतना ही महत्व है जितना की प्रमुख पात्रों का । इसमें -

आदिवासी पात्र हैं - मेमा भील, थावरा (झाडकड़ा गाँव), दीना डामोर, थावरा (नवागाँव), कलजी, सोमा परमार, जोरजी, लेम्बा भगत, जेता भगत, सेंगाजी साध, भाणिया भनात, रामा कटारा, डुंगर परमार, गोमना डामोर, मानजी डामोर, रूपाजी, हीरा, भजन्या, दीना, घसीटा कटारा, सोदाना डामोर, मंगल्या डामोर, भांवता कटारा, नानजी गरासिया {गमेती}, सोहना बनजारा, सुंदर बाबा, जोरजी लखजी लेम्बा, नगजी, जोरिया भगत, रूपा, नायक गललिया, गोपी गमेती, सोपत मीणा, भरत्या, सोमा परमार, डूंगर, सगत्या भगत, दीपा गमेती, जेता, बाला, हीरजी, गलिया, लेम्बा भगत, कलुआ नट, नगजी कटारा, पतजी {कलजी का भाई} अणत्या, धर्माभाई बोदर, भोपा गुरू, जस्सुभाई पटेल, पीतरभाई भणात, मंगल्या, गोमाजी लालजी निनामा, हालिया भगत, धरजी काका, सुक्खा, गज्जा, कोदर, खुमा, रामला, बेबरिया, वाला, कलिया, मेहा, परताबिया, जाला, भुरा, बिज्जिया, कानजी, रणजी, तरासिया, सुम्भा,

मोती, गमेती भैरू, दल्ली, पांच्या निनामा, हरिया, लाखा जीवन, मुनिया तेजा गाला, माधो नाई, रूकस्या, हिंसल्या, मिसरा आदि है।

देसी रीयासती के पात्र है - महारावल विजयसिंह, महाराणा सज्जनसिंह, महारावल उदयसिंह, रहमत अली बख्स, श्यामलदास, ठाकुर दलपत सिंह, दिवान गणेश राम, पूजारी रासबिहारी गोस्वामी, धना सिपाही, तेजा सिपाही, महारावल शम्भुसिंह, ठाकुर पृथ्वीसिंह, महारावल दौलतसिंह राठोड, सेठ दलपतराय मेहता आदि है।

अंग्रेज पात्र हैं - कमांडेण्ट लेटिनेंट ए. कानोली, ए.जी.जी. कर्नल वाल्र्टस जलसे, ए. जी.जी. कैप्टीन सी ब्राइटलैंस, ए.जी.जी. ट्रेवर, कर्नल ए. टी. होम, वायसराय मिण्टो, वायसराय लार्ड हार्डिग्स, ए.जी.जी. कर्नल जे. एल, जमादार युसुफ खान, सिपाही गुल मोहमद, जे. पी. स्टोक्ले, मेजर वेली, कमिश्नर आर. पी. बोरो, एजेंड हड़सन, रेंजर किसन सिंह, सुबेदार लियाकत खान किसनसिंह, कैप्टीन पीटरसन, कर्नल ब्लेयर, कैप्टीन एन्सले आदि पात्रों का उल्लेख गौण पात्र के रूप में चित्रित हुआ है।

१०.३ सारांश :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'धूणी तपे तीर' के चरित्र चित्रण का सामग्रिक मूल्यांकन से विदित होता है कि हरिराम मीणा के औपन्यासिक पात्र कथानक को विकसित करने में सहायक सिद्ध हुए है। उपन्यास में चित्रित पात्र अत्यंत सुदृढ़ और कलात्मक है, वस्तुतः यह उपन्यास का मूल आधार हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र ऐतिहासिक होकर गतिशील दिखाई देते है। पात्रों के चरित्र की गतिशीलता के लिए अर्थ और काम कारणीभूत बना हैं। उपन्यास में परिस्थितियों के घात प्रतिघात से अंतर्द्वन्द्व का सजीव चित्रण हुआ है। नए मोड़ पर आने से पहले ये अनेक मानसिक स्थितियों से गुजरते हैं, जो व्यावहारिक मनोविज्ञान के अनुकूल चित्रित हुआ हैं। इसके साथ ही उपन्यास में वर्णित पात्र सजीव एवं प्रभावशाली दिखाई देते है।

१०.४ वैकल्पिक प्रश्न :

१. गोविंद गुरू के गुरू का नाम क्या था?

(क) विजयसिंग सिंह (ख) दलपतराय मेहता

(ग) राजगिरी गोसाई (घ) पुंजा धीरा

२. गोविंद गुरू महारावल विजयसिंह से बातचीत करते है तब किस प्रकार के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है?

(क) निर्भय व्यक्तित्व (ख) उग्र स्वभाव

(ग) क्रोध व्यक्तित्व (घ) मुक्तिदाता का व्यक्तित्व

३. कुरिया दनोत किसके प्रति बड़ा संशकित रहता था?

(क) गोविंद गुरू के धर्म के प्रति (ख) अंग्रेजों के प्रति

(ग) महाराणाओं के प्रति (घ) सम्प सभा के भगतों के प्रति

४. पूंजा धीरा गोविंद गुरू से कितने साल बढ़े थे?

(क) पांच साल (ख) तीन साल

(ग) दो साल (घ) सात साल

५. पूंजा धीरा किसके बेटे थे?

(क) गमेती (ख) ठाकुर

(ग) सिपाही (घ) इसमें से कोई नहीं

६. पूंजा धीरा की बेटी कमली किससे प्रेम करती थी?

(क) गोविंद गुरू (ख) कुरिया

(ग) नन्दू (घ) पानो

१०.५ लघुत्तरीय प्रश्न :

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में कुरिया के चरित्र चित्रण को स्पष्ट कीजिए?

२. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की स्त्री पात्र कमली के चरित्र-चित्रण को अपने शब्दों में लिखिए?

१०.६ बोध प्रश्न :

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में चित्रित प्रमुख पात्र और गौण पात्र का विस्तार से चरित्र - चित्रण कीजिए?

२. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में गोविंद गुरू का चरित्र किस तरह से उभरकर आया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए?

१०.७ संदर्भ ग्रंथ:

१. धूणी तपे तीर - हरिराम मीणा

२. सृजन संवाद – सं. ब्रजेश

३. युद्धरत आम आदमी – सं. रमणिका गुप्ता

४. आदिवासी साहित्य : स्वरूप एवं विश्लेषण - डॉ. शेख शहेनाज़ बेगम अहेमद

❄❄❄❄❄❄❄

११

'धूणी तपे तीर' में चित्रित आदिवासी जीवन और समस्या

इकाई की रूपरेखा

११.० इकाई का उद्देश्य

११.१ प्रस्तावना

११.२ 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में चित्रित आदिवासी जीवन और समस्या

    ११.२.१ सामाजिक जीवन और समस्या

    ११.२.२ आर्थिक जीवन और समस्या

    ११.२.३ राजकीय जीवन और समस्या

    ११.२.४ धार्मिक जीवन और समस्या

    ११.२.५ सांस्कृतिक जीवन और समस्या

११.३ सारांश

११.४ वैकल्पिक प्रश्न

११.५ लघुत्तरीय प्रश्न

११.६ बोध प्रश्न

११.७ संदर्भ सूची

११.० इकाई का उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे -

- 'धूणी तपे तीर' की समस्याओं से छात्रों को परिचित करना हैं।
- 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में चित्रित आदिवासी जीवन से संबंधित समस्याओं का विस्तार से छात्र अध्ययन करेंगे।
- 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में आदिवासियों की स्थिति को छात्र समझ सकेंगे।

११.१ प्रस्तावना :

आदिवासी लेखक हरिराम मीणा द्वारा लिखित 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में १९ वीं और २० वीं शताब्दी में आदिवासियों का जीवन और उनके जीवन से जुड़ी समस्याओं की झलक दिखाई देती है। इसमें राजस्थान का दक्षिणांचल, सीमावर्ती गुजरात और मध्यप्रांत का पश्चिमी

क्षेत्र के निवासी मीणा और भील आदिवासी जीवन और समस्याओं को दर्शाया है। इसी के साथ उपन्यास में ग्रामीण अंचल और आदिवासी समाज तथा परिवेश को लेकर प्रमुखतः सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक आदि जीवन से संबधित विविध समस्याओं का चित्रण किया है।

११.२ 'धूणी तपे तीर' में चित्रित आदिवासी जीवन और समस्या :

११.२.१. सामाजिक जीवन और समस्या :

सामाजिक समस्याएँ मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है। संसार का कोई भी मनुष्य कभी भी सामाजिक समस्याओं से पूर्णतः मुक्त नहीं रहा है और न भविष्य में रहेगा। सामाजिक समस्याएँ मनुष्य के द्वारा निर्मित होती हैं और उनका हल भी सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा सम्भव होता है। 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में लेखक हरिराम मीणा ने सामाजिक जीवन और समस्याओं का चित्रण किया है। उपन्यास में भील और मीणा आदिवासियों की समाज व्यवस्था परम्परागत रही है। इस व्यवस्था के अनुसार गाँव का सबसे अधिक सन्मानित व्यक्ति गमेती तथा मुखिया होता है। सामान्यतः आदिवासियों में यह मुखिया पद वंशानुगत रहता है। गमेती यह चाहता है कि "राजा का बेटा राजा, मुखिया का बेटा मुखिया, गमेती का बेटा गमेती।" गमेती अपने बेटे को गमेती ही बनाना चाहता था। परंतु गोपी गमेती का एकमात्र बेटा सम्पसभा में शामिल होता है। मुखिया का सहायक तड़वी होता है, जो लगान वसूलेने का काम करता है। इसके व्यतिरिक्त गाँव में भोपा, पुजारा आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति होते है। गाँव में होने वाले छोटे-बड़े झगड़ों का निपटारा गाँव की पंचायत करती है। आदिवासी लोगों के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते है। आदिवासियों की खेती बारीश होने से बर्बाद हो जाती है। उनके सामने जीवनयापन को आगे बढ़ाने वाले साधन एवं खेती नष्ट होती है। इसी हालात में जागीरदार आदिवासियों को बेगार में काम करवाते है तो उनकी हालत और बिगड़ जाती हैं। "तीन थावर बीत गये.....रात-दिन हाड़ तोड़ते हुए। कुत्ते की नाई एकाध टुकड़ा फैंक दिया तो क्या.....पेट तो कुन्नाता ही रहा।.....अब बड़ा पाप करूंगा। भूत बनूंगा भूत। जिनकी उधार और बेगारी की दी है राम जी ने। होश संभालते ही राज के पावों में पटक दिया ऊपर वाले ने। इस देवबाबा ने भी सुध नहीं ली। इसे तो क्या कहूं...... यह तो हमारा पुरखा है। ..... इसने भी ऐसी ही जिनगी काटी होगी। भूखा सताया मर गया होगा.....यह भी। यह क्या न्हाल करेगा। फिर भी हमारा.... पुरखा है ना। मैं इसके थान पर नहीं चढूंगा।" आदिवासी बेगार को लेकर परेशान हो जाते है। उनकी फसल बर्बाद हो जाने से भील और मीणा आदिवासियों को जीवन में संघर्ष करना पड़ता है।

गोविन्द गुरू आदिवासी समाज को सुधारना चाहता है। उनके ऊपर हो रहे अन्याय के खिलाप आवाज़ को देसी रियासत के राजा-महाराजा और अंग्रेज तक पहुंचाने का प्रयास करता है। लेकिन दूसरी तरफ से रियासतों द्वारा लेवी, वनौपज, कृषी, उपज से लगान एवं वसुली आदि से आदिवासी लोग त्रस्त हो जाते है। गाँव का मुखिया समस्या लेकर महाराणा के पास जाते है तो समस्याओं का निवारण न करते हुए मुखिया को भगाया जाता है। गोविंद गुरू के प्रवचन के द्वारा हजारों आदिवासी जागृत होकर महाराणा के विरूद्ध विद्रोह के लिए उतरते है। विद्रोह को महाराणा संम्भाल नहीं पाता है, तो उस विद्रोह को संभालने के लिए अंग्रेज उसमें शामिल होते हैं। अंग्रेज देसी रियासतों के महाराणाओं को अधीन रखकर आदिवासियों के शोषण की रणनीति को अपनाते हैं और जबरदस्ती सें बेगार करने के लिए मजबूर करते हैं। दूसरी तरफ

से ठाकुर दलपतसिंह आदिवासियों को जबरदस्ती से काम करवाता है। कहता है "हर परिवार से अच्छी मेहनत कर सकने वाला एक आदमी इस काम में शामिल होगा।" वांगड़ क्षेत्र के अंचल में अकाल पड़ता है तो अनेक आदिवासियों की मौत होती हैं। लोगों को खाने के लिए अन्न नहीं मिलता है। रियासत के आदमियों द्वारा मंजूरी लेकर ऊपर से पैसे देने पड़ते थे। यह आदिवासियों के लिए घोर संकट का दौर चला रहता है। आदिवासी लोगों को अन्न के लिए तरसना पड़ता है। "हम कहीं इधर उधर काम-धंधा करके बाल-बच्चों का पेट भरें या भूखे बैठ बेगार करें।" गोविन्द गुरू के नेतृत्व में 'सम्प-सभा' द्वारा समाज में परिवर्तन एवं जागरती का काम किया जाता है। लेकिन रियासत और अंग्रेजों की गठजोड़ी की सत्ता में फसकर आदिवासियों का भाग्य ओर जकड़ जाता है। गोविंद गुरू की सीख के कारण आदिवासी रियासतों की साजिश को समझने लगे। इसीकारण 'सम्प-सभा' में अनेक आदिवासी जुड़ जाते है।

आदिवासी समाज में बुरी आदते और झगड़े-फसाद होते हैं और बर्बादी के सिवाय उनके हाथों में कुछ नहीं आता हैं। समाज को सुधारने का कार्य गोविन्द गुरू करता है। देसी रियासत और अंग्रेजों के द्वारा दारू की दुकाने खुलवाते है, तब गोविंद गुरू उसका विरोध करते है कि "हमारा अव्वल काम यह रहेगा कि फिरंगियों द्वारा दारू के ठेकों की जो दुकानें रियासती अहलकारों से मिलकर खुलवाई जा रही हैं, हम मिलकर सब जगह इसका विरोध करें। हमारा यह विरोध अहिंसक होगा।" सम्प-सभा के माध्यम से गाँव के ठेकों को बंद किया जाता है और सामाजिक स्तर को सुधारने के प्रयास किया जाता है। पुरणमासी के मेले में सम्प-सभा के सभी भगत और आदिवासी आते है, तब गोविन्द गुरू प्रसन्नचित मुद्रा में दिखाई देते हैं। इस मेले में आदिवासी समुह परम्परागत नृत्य के साथ पेट भरने के लिए करतब करते हैं। "भई, करतब दिखाते दिखाते जो लड़खड़ गया तो इस पापी पेट का क्या होगा। परिवार भूखा मर जायेगा। फिर कुंवारी बेटी के हाथ भी पीले करने हैं।" इस वार्तालाप से आदिवासी लोगों की भूख अधिक गहरा बना देती हैं।

ईड़र रियासत में ठाकुर आदिवासियों के ऊपर मनमर्जी से अत्याचार करता है, इसी कारण कई आदिवासी लोग संपसभा में शामिल हो जाते है। ठाकुर के अत्याचार के कारण लक्ष्मणपुरा गांव का एक मात्र आदिवासी सम्प-सभा का भगत बनता हैं। आदिवासी सम्प-सभा के बैठक में जाते है तो ठाकुर आदिवासियों को दड़वाह की जमीन से बेदखल करता हैं। पंचायत के निर्णय से आदिवासियों के बीच में दो गट तयार होते हैं। अधिकांश आदिवासी सम्प-सभा में शामिल हो जाते हैं। "आदिवासियों ने सामूहिक रूप से यह फैसला किया कि जब गोविन्द गुरू पालपट्टा जागीर क्षेत्र के आदिवासियों की समस्याओं पर ठाकुर से बात कहने वाले हैं तो क्यों ना अपनी समस्याओं को लेकर उनसे सम्पर्क साधा जाय।" आदिवासी लोग अपने भविष्य को लेकर आशा और निराशा के साथ सम्प-सभा में जुड़ जाते है। उसके बाद आदिवासी भगत की हत्या होती है। इसीकारण गोविन्द गुरू अपनी गतिविधियों को ओर तेज करते हुए उसके ऊपर ठोस उपाय करने का प्रयास करता हैं।

उपन्यास में देश के महाराजाओं और अंग्रेजों का चेहरा आदिवासियों के लिए घातक बना था। धूणी धामों को रियासती द्वारा अपवित्र करने का सिलसिला जारी रहता है। धूणियों को अपवित्र करने से भगत और आदिवासी समाज के लोग गुस्से में आते हैं। निर्दोष लोगों का अपराधिक प्रवृत्ति में और जयराम पेशा कानून के तहद भगत एवं अन्य लोगों को परेशान किया जाता हैं।

रियासती द्वारा गोविन्द गुरू के कार्य और सम्प-सभा के भगतों पर नजर रखी जाती हैं। रियासत के लोग और अंग्रेज़ गोविन्द गुरू के शिक्षा के विरूद्ध प्रचार करके समाज में आतंक फैलाना प्रारंभ करते हैं। 'सम्प-सभा' के निशानों को मिटा देते हैं। अंत में गोविन्द गुरू और आदिवासी समाज अपनी रक्षा के लिए मानगढ़ पठार का आसरा लेते हैं। हित व रक्षा के लिए गोविन्द गुरू तीन सदस्यीय कमिटी को संदेश देकर सामन्तशाही और अंग्रेजों के फौज के यहाँ भेज देते हैं। अंग्रेजों के अड़ियल स्वभाव से गोविन्द गुरू तमाम आदिवासियों को सम्बोधित करते हैं कि "भूरेटिया हमारी मांगे नहीं मान रहे हैं और हमें मारने की धमकी दे रहे हैं। उनकी धमकियों से हमें डरना नहीं है। उनकी बन्दूकों की नली से गोलियों की जगह पानी निकलेगा। इसलिए सभी निश्चिंत रहें और मुकाबले के लिए डटे रहें।" इस तरह से गोविंद गुरू देशी रियासत और अंग्रेज के विरुद्ध मुकाबले के लिए तैयार करता हैं।

११.२.२. आर्थिक जीवन और समस्या :

आदिवासी समाज की आर्थिक स्थिति ऐतिहासिक काल में जैसी थी, वैसी आज भी रही है। किसी भी समाज के संगठन एवं उन्नति का आधार उसकी अर्थ व्यवस्था पर निर्भर करती हैं। समय के अनुसार आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होता रहता है। आर्थिक स्थिति आज के मनुष्य की विवशता का प्रमुख कारण है और व्यक्तिगत सुख की खोज में अर्थ प्राप्ति भी एक महत्वपूर्ण इकाई बनी हुई है। इस उपन्यास में भील और मीणा आदिवासियों का जीवन और उनकी आर्थिक समस्या छोटे-बड़े रूप में उभरकर सामने आयी हैं। उपन्यास में ऐतिहासिक परिवेश होने से राजे-महाराजे एवं अंग्रेजों के द्वारा आदिवासियों के लिए आर्थिक स्थिति को दर्शाया है। राजे-महाराजे आदिवासियों से कृषि कर, आबकारी, व्यापार, देसी रियासतों की दखलंदाजी ज्यादा होने से भील और मीणा आदिवासियों की आर्थिक स्थिति बेहद कमज़ोर रही है। विषेशतः उनके आय का प्रमुख स्रोत कृषि है। उसके अलावा आर्थिक व्यवस्था के स्रोत वनोपज, मजदूरी और पशुपालन आदि रहा है। आदिवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि अर्थात खेती ऐतिहासिक काल से है। यह वंश परम्परागत व्यवसाय होने से आदिवासी लोगों की प्रमुख मदार इसी पर रही हैं। आदिवासी लोगों की खेती में ओला पड़ने खेती बरबाद हो जाती है। इसलिए आदिवासी रियासत के जागीदार के यहाँ बेगार में काम करते है। यह काम करने के बाद थोड़ा आराम के लिए दारू की नशा करना जीवन का हिस्सा रहा है। उनकी मानसिक स्थिति ठीक न होने से कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लेखक कहता है कि "देख लूंगा हरामियों को..... कूंए-खादड़ में गिरकर मर जाऊंगा..... भूत बनूंगा......भूत! फिर एक-एक की टेंटी मरोड़ूंगा.....। उनके जीव-जायतों को भी नहीं छोड़ूंगा......। तीन थावर बीत गये...... रात-दिन हाड़ तोडंते हूए। कुँए की नाई एकाध टुकड़ा फैंक दिया तो क्या........ पेट तो कुन्नता ही रहा।" रियासत एवं जागीरदार के पास बेगार में काम करने से आदिवासियों को अपना जीवनयापन करना मुश्किल होता है।

भील और मीणा आदिवासियों के पूँजी से रियासत के महाराणा अंग्रेजों की महाराणी विक्टोरिया की स्वर्ण जयन्ती को धूमधाम से मनाते है। इस अवसर पर अंग्रेजों के साथ मधुर सम्बन्ध रखने के लिए महाराणा राज कोष से भरपूर धन खर्च करता हैं। ऊपर से अधिक धन-दौलत उन्हें बहाल भी करता हैं। मधुर सम्बन्ध बरकराकर रखने के लिए महाराणा मनमर्जी से कारभार चलाते रहे, इसी का फायदा उठाकर अंग्रेज धीरे-धीरे सत्ता के साथ-साथ जल, जंगल और जमीन आदिवासियों से छीन लेती है। साथ ही वनोपज इकट्ठी करने पर पाबंदी लगने से

भील और मीणा आदिवासियों को सामना करना पड़ता है। "आदिवासियों के लिए सबसे बड़ी समस्या वनोपज पर सरकारी पाबंदी थी। वनोपज पर पाबंदी की नीति को रियासती सरकारें कड़ाई से लागू किए हुए थी। संपसभा के लिए यह बड़ी चुनौती थी। गोविंद गुरू के लिए निश्चित रूप से यह चिंता का विषय था।" इस प्रकार की समस्या उन्हें तोड़ कर रख देती है। ऐसे ही उपन्यास में चित्रित पात्र मेमा आर्थिक स्थिति से गुजरता हुआ दिखाई देता है। उसके मां-बाप बचपन में ही गुजर चुके थे, इसलिए वह अपने काका के पास रहकर जीवनयापन करने लगा। यह मेमा किसी हद तक उनकी सेवा करता रहा, लेकिन काका काले मन का था और हमेशा दारू के नशे में रहता है। इसी के संदर्भ में लेखक कहते है कि "लाऔलाद हरिणिया ने मेमा से खूब काम कराया। मेमा भी भूत की नाई घर-बाहर का काम करता गया। अकाल की मार पड़ी। तीन-तीन मिनखों का पेट वह अकेला कहां से भरता।" उनके पास न तो धन था, न दौलत और न खेती थी। अकाल के समय में उनके सामने आर्थिक समस्या निर्माण होती है। फिर भी आदिवासी इस अकाल में "भूखे पेट, अधनंगे व दुर्बल शरीरों वाले इन लोगों के पास और कुछ नहीं, मगर बुलंद हौसला था, मंजिल तक पहुंच सकने का पक्का इरादा था, आंखो में बेहतरीन दिनों की उम्मीद की चमक थी।" इसी चमक के आधार पर जीवयापन करते है।

भील और मीणा आदिवासियों के लिए रियासत और अंग्रेजों का चेहरा घातक बनता जाता हैं। निर्दोष लोगों को अपराधिक प्रवृत्ति में और जयराम पेशा कानून के तहत भगत एवं अन्य लोगों को परेशान किया जाता हैं। इसी के साथ बेगार की प्रथा भी प्रचलित थी। "वर्षों पहले बनायी गयी वनोपज पर पाबंदी की नीति को कठोरता से क्रियान्वित करने के कारण आदिवासी धीरे-धीरे कृषि-कर्म की ओर बढ़ने के लिए मजबूर हो गये थे। बीसवीं सदी के पहले दशक में सभी रियासतों में भूमि-बंदोबस्त का काफी काम सरकार द्वारा निबटा दिया गया था। इसके तहत खेती के लिए कुछ भूमि आदिवासियों को भी दी गयी थी लेकिन लगान की शर्तें बहुत भारी कर दी गयी विशेष रूप से रबी की अच्छी पैदावार को देखते हुए। इसलिए मेहनत का जितना लाभ उन्हें मिलना चाहिए था, उतना उन्हें नहीं मिला।" इस प्रथा के तहत रियासत और जागीरदार आदिवासियों को अनगिनत मजदूरी करवाते है। "इक-दूजे के काम में हाथ बाँटने के लिए मेहनत करने में कोई हर्ज नहीं है। मेहताना के बदले काम करना बुरा नहीं। यह तो हमें करना ही होता है। बिना कुछ लिये-दिये बेगार करना तो एक तरह से गुलामी है।" इसी तरह से रियासत व अंग्रेजों द्वारा भील और मीणा आदिवासियों के ऊपर लगातार आर्थिक बोझ बढ़ाते रहे और नए-नये कानून बनाकर देशी रियासतों में उनकी दखलदांजी मजबूत होती गई।

११.२.३. राजनीतिक जीवन और समस्या:

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में राजनितिक जीवन के भांति राजनीतिक समस्याओं का स्वरूप भी देखने को मिलता है। यह उपन्यास रियासत के राजा, महाराणा, महारावल, जागीरदार और अंग्रेजों के राजनीतिक दबाव के रूप में एवं सत्ताधारियों की कूटनीतिक चालों और दाव-पेंचो से भरी राजनीति का व्यापक फलक प्रस्तुत करता है। देश में स्वातंत्र पूर्व से आदिवासियों का अस्तित्व रहा है। इसी संदर्भ में लेखक कहते है "तुम्हें पता नहीं कि इस पूरे आदिवासी इलाके में पुराने ज़माने में हमारे राजा-महाराजा हुआ करते थे। कोई दूसरा हम पर राज नहीं कर सकता था। बेणेसर धाम के मेले में एक साधू ने बताया था कि डूंगर भील ने डूंगरपुर बसाया था। बांस्या भील के नाम पर बांसवाड़ा नाम पड़ा है। इसी तरह बूंदा मीणा के नाम पर बूंदी और कोट्या भील के नाम पर कोटा शहर बसे।" इसी तरह प्राचीनकाल से आदिवासियों की

शासन व्यवस्था स्वतंत्र रही है। आदिवासियों का नायक गोविन्द गुरू लोगों के बीच में समाज सुधार की बाते एवं लोगों को जागृत करने का कार्य करता है तो रियासत के राजा, महाराजा के द्वारा दबाव डाला जाता है। गाँव के मुखिया एवं गमेती को ही अपने दायित्व में रियासत रखती है। गोविन्द गुरू जागीर के मुख्यालय गढी गाँव के यहा प्रवचन देते है तो गाँव के मुखिया को संदेह निर्माण होता है। आदिवासी लोग कहते है कि "बेगार हम रोज के रोज थोड़े ही करते हैं। यह तो जब राज का कोई काम पड़ता है या हमारा ओसरा आता है तभी करते हैं।" आदिवासी लोगों को राज के दबाव एवं कूटनीतिक चाल से ही काम करना पड़ता था। उदयपूर दरबार में आदिवासी मुखिया गाँव की समस्या लेकर महाराणा के पास जाते है, महाराणा द्वारा राजनीतिक चाल से आदिवासी इलाकों में रेल निर्माण का कार्य लिया जाता है आदिवासियों की जमीन से रेल निकाली जाती है। महाराणा कहता है कि "धरती पर राजा ईश्वर तुल्य होता है। रियाया का रखवाला वही होता है। जब तक रियाया के माथे पर राजा का हाथ है तब तक रियाया सुरक्षित है। उसके बदले में रियाया राजा के प्रति अपनी निष्ठा बनाये रखती है। पगड्ंडी की तरह सर के बीच में से बालों को काटने से उस पर राजा का रथ नहीं चलता। यह तो राजा के प्रति प्रजा की निष्ठा का प्रतीक है। यह भी पुरानी परम्परा है।" महाराणा आदिवासी मुखिया को वास्तविक अर्थ न समझाकर राजनितिक स्तर पर दबाव निर्माण करता है। उसके बाद आदिवासी जनता राज काज की कार्यपद्धति को समझती हुए विद्रोह करते है। महाराणा और विद्रोही तथा आदिवासियों के बीच में समझौता होता है तो अंग्रेज़ कहते है कि "यह तो महाराणा ने हद कर दी। उसने जरूरत से ज्यादा अपने साथियों पर विश्वास किया। समझौते के मजमून से लगता है कि आदिवासियों ने अपनी सारी तुकी-बेतुकी मांगे दबाव देकर मनवा ली।" तुरन्त अंग्रेज हस्तक्षेप करके नया समझौता तैयार करती है और आदिवासियों को स्वीकार करने के लिए मजबूर करती हैं।

भील और मीणा आदिवासियों के गुरु गोविंद गुरू को महारावल गिरफ्तार करते है तो बड़ी समस्या बनती हैं। अन्तः उन्हें विद्रोह होने के ड़र से रिहा कर दिया जाता है। आखिरकार गोविंद गुरू को महारावल रियासत छोड़कर जाने के लिए मजबूर करते है। छप्पन्या के अकाल में रियासत के कारिंदे मदद का अधिक हिस्सा अपने पास रखते थे। आदिवासियों के गाँव खाली होने लगते है, रियासतों द्वारा आदिवासियों को परेशान किया जाता है। उपन्यास में चित्रित पात्र सेठ मेहता का व्यक्तित्व एक चालाक, धूर्त व्यक्ति के रूप में सामने आता है। मन में अलग राजनीतिक कुटनीति होने से वह रियासत में अलग-अलग तरह से बाते करता हैं। संकट के समय गोविन्द गुरू से बातचीत करके सत्ताधारियों की कुटनीतिक चालों को अवगत कराते हुए अलग तरह की वाणी का प्रयोग करता है। "संत शिरोमणि, मेरे हृदय में आपके लिए बहुत बड़ा सम्मान है। मुझे क्षमा करना। जो मैं कह रहा हू वह मेरे व्यक्तिगत विचार नहीं है। दरअसल, गत दिनों दरबार में कौंसिल की बैठक हुई। महारावल, सहायक रजीडेंट और कौंसिल के अन्य सदस्यों के मन में यह धारणा बैठ गयी है कि सम्प-सभा के कुछ कार्यकर्ता राज की नीतियों का खुलकर विरोध करने लगे हैं और इस विरोध के लिए वे जगह-जगह आदिवासियों को उकसा रहे हैं.... गोविंद गुरू की शह पर यह सब कुछ हो रहा है जो राज-विरोधी गतिविधि है।" पालपा का ठाकुर मनमर्जी से आदिवासियों पर भार डालता है। सम्प-सभा के भगतों से वह बात ही नहीं करता है केवल मुखिया से ही बात करने को राजी होता है। यह ठाकुर भगतों से न बातचीत करके गोविन्द गुरू और 'सम्प - सभा' पर दबाव बढ़ाना चाहता था। लक्ष्मणपूरा के आदिवासी युवक रोजड़ा गाव के बैठक में जाते है इसलिए आदिवासियों

को दड़वाह की जमीन से बेदखल करते है। इससे आदिवासियों को सबसे बड़ा झटका लगता है और दड़वाह की जमीन पटेल समुदाय को दी जाती है। और ठाकूर पटेलों को साथ में लेकर सम्प-सभा के भगत की हत्या करते हैं। गोविन्द गुरू और आदिवासियों को बहुत बड़ा गहरा धक्का लगता हैं। विद्रोह होने के ड़र से ठाकुर महारावल के पास संदेश भेजकर कहता है कि "गोविंद बनजारा के एक खास भगत का कत्ल हुआ है। इसीलिए वे कोतवाल को जांच के लिए तुरंत भेजें ताकि हत्यारों का पता लगाया जा सके। इसमें शीघ्रता नहीं हुई तो आदिवासी हिंसा पर उतर सकते है।" कोतवाल वहाँ पहुँच कर हत्यारों को पकड़ने का आश्वासन देता है। गोविन्द गुरू अपने गतिविधियों को अधिक तेज करते हुए आरपार की लड़ाई करने का फैसला करता है। धीरे-धीरे यह आन्दोलन राजनीतिक रूप धारण करता है। जो ईडर रियासत की नीतियों और आदिवासियों के प्रति उसके दृष्टिकोण के खिलाफ रहता है।

अंग्रेज़ सम्राट जार्ज पंचम के सम्मान के लिए दिल्ली दरबार का आयोजन करते हैं। इस आयोजन के लिए देसी रियासती के महाराणाओं को भी आमंत्रित किया जाता है। इसमें देश के अन्य राजाओं के आलावा मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह को भी आमंत्रित किया था। लेकिन उसे आधे रास्ते में केसरीसिंह बारहठ द्वारा लिखा हुआ 'चेतावणी रा चूंगट्या' दोहा मिल जाता हैं। इस दोहे से उसका मन विचलित होकर बेचैन होता है। "अगर इन दोहों को मैं उदयपुर में ही पढ़ लेता तो वहां से रवाना ही नहीं होता। अब तो दिल्ली के लिए चल दिया हूं। दिल्ली की दिल्ली में देखेंगे।" महाराणा प्रताप की प्रतिष्ठा बरकराकर रखने के लिए महाराणा प्रयास करते हैं। वह स्वाभिमानी व्यक्ति था। उसको राज-कार्य में अनावश्यक अंग्रेजों का हस्तक्षेप नहीं चाहिए था और दूसरी तरफ बिना बात अंग्रेजों से सम्बन्ध बिगाड़ना नहीं चाहता था।

गोविन्द गुरू ने अपने नेतृत्व का प्रमुख केंन्द्र मानगढ़ पठार बनाकर धूणी धामों में ही आवास बना लिया था। यह उनका राजनीतिक दृष्टि से सुरक्षित ठिकाणा बना हुआ था। आदिवासी दुख और दरिद्रता के बावजूद आन्दोलन से आशा और उत्साह के साथ जुड़ते रहे। गोविन्द गुरू विरोध पत्र बनाकर रियासतों के पास भेजता है लेकिन किसी भी तरह जवाब नहीं आता हैं। यह देखकर गोविन्द गुरू भगतों के साथ चर्चा करते हुए कहते है कि "हमारी अर्जी का राज पर कोई असर नहीं हुआ। यह हमारी बेइज्जती है। मुझ जैसे साधू की बात पर गौर नहीं करने से मुझे दुख पहूंचा है। फिर भी हमें धीरज से काम लेना है। हम राज की आदिवासी-विरोधी नीतियों का सामूहिक विरोध करते हैं। हमारा विरोध आदिवासियों में जागरती पैदा कर अन्याय को सहन नहीं करने तक सीमित रहना चाहिए। इस काम में कहीं कोई अशांति, हिंसा या उपद्रव पैदा न किया जाय, यह आप सभी भाइयों को ध्यान में रखना होगा।" आदिवासियों के लिए सामंतशाही और उपनिवेशवादी ताकतों का चेहरा क्रूर बनता जा रहा था। भील और मीणा आदिवासियों को पुरानी अवस्था पर लौटने के लिए वे मजबुर करने लगे। अतः में इस प्रकार से राजनीतिक जीवन और समस्या का चित्रण उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है।

११.२.४. धार्मिक जीवन और समस्या:

प्रस्तुत उपन्यास में भील और मीणा आदिवासियों का धार्मिक जीवन और उनकी व्यवस्था परम्परागत रही है। लेखक हरिराम मीणा ने उपन्यास में प्रमुखतः भील और मीणा आदिवासियों का चित्रण करते हुए धार्मिक जीवन और समस्या का चित्रण है। उपन्यास में चित्रित धार्मिक मान्यताओं के अनुसार आदिवासियों की देवी देवताओं पर असीम आस्था

दिखाई देती है। उपन्यास में भील और मीणा आदिवासियों की प्रकृति से सम्बन्धित कई देवता आते है परन्तु उपन्यास में लेखक ने हिरकुल्या देव को दर्शाया है। "हिरकुलिया देवता का थान। दो-ढाई फीट ऊँचा, आठ-दस फीट लम्बा-चौड़ा चबूतरा था, जो पत्थरों का बना था। हिरकुल्या देव की मूर्ति के नाम पर एक पत्थर था जिसे गाढ़ रखा था और यह मूर्ति छोटे से तिकोना मंड के नीचे रोपी हुई थी।" इसी के साथ यह आदिवासी देवी-देवताओं के शरण भी जाते है। उनके ऊपर कोई संकट आये तो देवी-देवताओं को याद करते है। उपन्यास में ओलावृष्टि पड़ती है तो आदिवासियों की फसल बर्बाद हो जाती है तब आदिवासी देवी-देवताओं को कोशते है।

"ओ रे नीली छतरी वाले दगाबाज भगवान, तूने यह क्या कर दिया?"

"ओ रे, बाबा महादेव !

ओ री, माता पार्वती !!

ओ रे, माला बाबजी !!!

यह क्या गजब ढा दिया?"

गोविन्द गुरू आदिवासियों में समाज सुधारक के रूप में कार्य करता है। उन्होंने नये धर्म की स्थापना की थी। किंतु उनकी धार्मिक मान्यताओं में आदिवासियों की परम्परागत धार्मिक मान्यताओं में अंतर था। उन्होंने धार्मिक मान्यताओं को आत्मसात नहीं किया था और आदिवासियों के बीच आदिवासी बनकर जीवनयापन करते है। उसने हर तरह के कार्य किए मगर आदिवासी धर्म के बारे में "गोविंद गुरू के मन में पके हुए धार्मिक संस्कारों के कारण उनकी दृष्टि में सब से बड़ा काम था धूणी-धामों की स्थापना करना। वे आदिवासियों के बीच कितने भी घूमे-फिरे हों, उनके भौतिक दुख-दर्दो का उन्हें कितना भी निकट का अनुभव रहा हो, आदिवासी परम्परा और मनोविज्ञान का उन्होंने कितना भी ज्ञान अर्जित किया हो, लेकिन धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं व आस्थाओं के स्तर पर आदिवासी मूल-धर्म को उन्होंने आत्मसात् नहीं किया।" गोविंद गुरु आदिवासियों से जुड़े रहने के बावजूद भी धर्म की समस्या उलझ कर रह जाती है।

गोविंद गुरू की समाज सुधार वाली बातें आदिवासियों को समझ में नहीं आते है। कुरिया भगत को धर्म से ज्यादा धूमाल की बातों पर ज्यादा विश्वास हैं। उसका मानना है कि धर्म अध्यात्म और नैतिकता की बातों से आदिवासी समाज की तकलीफ दूर नहीं होगी। इसलिए वे कहते है "गोविंद गुरू.... वह धर्म की बात ज्यादा करता है। धूमाल की बात नहीं करता। बिना धूमाल मचाए हमारी तकलीफ राज के कानों तक नहीं पहुँचेगी।" आदिवासी धर्म नहीं धूमाल करना चाहते हैं, क्योंकि उनके कष्ट के दो कारण है राम और राज। तब वे धर्म कैसे चाह सकते थे।

गोविन्द गुरू का प्रभाव आदिवासी अंचलों में बढ़ जाता है, इसलिए आदिवासी उसे नये धर्म के प्रवर्तक में पूजते है। गोविंद गुरू का जैन या किसी धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं है। "उसका स्वंय का धर्म है, जिसके मूल सिद्धांत धूणी, हवन और सदाचरण है जिसमें शांति व अहिंसा प्रमुख तत्व हैं।.........गोविंद गुरू द्वारा प्रवर्तित नई धार्मिक आस्था राजपूताना, मध्य भारत और गुजरात के आदिवासी अंचलों में जंगल की आग तरह फैल रही है।" उसको देसी

रियासत के राजा और अंग्रेज़ भी स्वीकार करते हैं। उसे तोड़ने का काम अर्थात धूणियों को अपवित्र अंग्रेजों द्वारा किया जाता है।

उपन्यास में कलजी के बेटे के सफल उपचार के बाद गोविन्द गुरू की चमत्कारी बाबा के रूप में ख्याति होती हैं। गोविंद गुरू को एक चमत्कारी बाबा माना गया तो 'सम्प-सभा' के जागरती का क्या होगा। लोग उसे कहते हैं "हम जानते ही नहीं, यह तो पहले से ही चमत्कारी संत हैं। इन्होंने उदयपुर प्रवास के दौरान महाराणा को असाध्य रोग से मुक्त किया था।" लक्ष्मणपुरा गाँव का एक मात्र आदिवासी व्यक्ति सम्प-सभा का भगत बनता है। वह गाँव में जागरती का कार्य करता था। गाँव में जागीरदार और पटेल समुदाय सम्प-सभा को विरोध करते थे। जागीर क्षेत्र में सम्प-सभा का प्रचार बढ़ने से भगत की हत्या होती है। उसने "कभी किसी का बुरा नहीं किया। धर्म के रास्ते पर चलने वाले आदमी की किसी से क्या रंजिश होगी।" आदिवासी आपस में विचार-विमर्श करते है। सम्प-सभा के गठन के बाद आदिवासियों में जागरती फैलने लगी थी। हर इलाकों में धूणी-धामों की स्थापना की गई। धूणी-धामों के प्रति आदिवासियों में धार्मिक भावना जागृत हुई थी। धूणियों को नुकसान पहुंचाने से गोविन्द गुरू को चिंता सताती है कि "राज की कारिंदों की हरकतों से पैदा हुई चिंता और दुसरी तरफ उन्हें आशंका थी कि धार्मिक भावनाओं के भड़क जाने से आदिवासी हिंसा पर न उतर आयें।" लेकिन दुसरी तरफ रियासतों द्वारा आदिवासियों को भड़काने का काम किया जाता है। "उसका जो नया धर्म है वह वास्तव में आदिवासियों का परम्परागत धर्म है ही नहीं। आदिवासी लोग तो शंकर भगवान, पार्वती माई और लोक देवताओं को पूजते आये थे। स्वंय को गुरू कहलवाने वाले गोविंद बनजारा ने निराकर ईश्वर का अपना धर्म पैदा किया। यह आदिवासियों के मौलिक धार्मिक विचारों के विपरीत हैं। वह स्वंय दुसरी जात का है। वह इन आदिवासियों का क्या भला करेगा।" इस तरह की बातें इलाके में फैलाकर आदिवासी लोगों को धर्म के नाम पर उलझाते रहते है। इस तरह से उपन्यास में धार्मिक समस्या उभरकर आती हुई दिखाई देती है जो आदिवासियों को एक सूत्र में बँधने के लिए मजबुर करती हैं। आदिवासी अपने धर्म और हक्क की लड़ाई के लिए मानगढ़ पठार का आसरा लेते हैं। इस तरह से उपन्यास में भील और मीणा आदिवासियों के धार्मिक जीवन और समस्याओं को चित्रित किया है।

११.२.५. सांस्कृतिक जीवन और समस्या :

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक हरिराम मीणा ने आदिवासी समाज का जीवन और उनका ग्रामीण अंचल के वास्तव्य का यथार्थ के साथ चित्रण किया है। पुरे उपन्यास में आदिवासियों सारा चित्रण अंचल मे ही किया है। इससें आदिवासियों का जीवन ओर फुलता हुआ सामने आता हैं। उनके सांस्कृतिक त्योहार, मेले, उत्सव, लोकगीत, राहणीमान, उनकी भाषा आदि को उपन्यास में चित्रित किया है। आदिवासी समाज में त्योहार एक अनिवार्य हिस्सा बना हुआ हैं। सब एक जूट होकर त्योहार की तैयारी करते है। आदिवासी होली के लिए एकत्रित होकर तैयारी करते है। कोई जंगल से थम्म लेकर आते है तो कोई अन्य तैयारी करते है इसका अद्भुत चित्रण किया है। "थम्म मजबूती से खड़ा कर दिया। थम्म के ऊपरी हिस्से पर लाल व सफेद रंग के कपड़े बांधे और थोड़ी सुखी घास भी। मौजूद सभी लोगों के ललाट पर हल्दी की तिलक लगाया। तिलक लगाने से पहले थम्म के पास घी का दीपक जला दिया था।" होली के अवसर पर सब छोटे बच्चे, औरतें अपने झोपड़ियों के दरवाजों से देखते है। यह सब आदिवासियों के बुजुर्गों आदमी के द्वारा उसकी विधि की जाती है। गोविन्द गुरू अपने भगतों और रक्षादल के

सदस्यों को होली के लिए गांव भेज देता हैं। होली का पुंजन एवं अग्नि की क्रिया भगत के देखरेख में कि जाती हैं। यहां आदिवासी युवक और युवति होली के परीक्रमा करते हुए होली के गीत गाते हैं।

"होली बाई वांहो रो रे

होली बाई वांहो रो रे

होली बाई आज के काल

होली बाई बांहो रो रे.........."

गीत व संगीत के साथ युवक-युवतियां गेर नृत्य करते हैं। सभी युवक-युवतियां इक दुजे का हाथ पकड़ कर खूब आनंद उठाते हैं।

आदिवासियों का जीवन ग्रामीण में गहरे सुत्रों से पकड़ा हुआ रहता हैं। उनका जीवन एक नैसर्गिक सहज-सरल और ईमानदारी से जीने की अमुल्य धार उनके पास रहती हैं। उनको बहुत सारी जानकारी और अनुभव रहने के बावजुद जीवन जटिल बनता हैं। गहरा अनुभव होने से गांव की धरती, जंगल और पहाड़ों की जानकारी एवं जंगली जानवरों व पखेरूओं के व्यवहार का अनूभव, वनस्पतियों एवं जड़ी बूटियों का ज्ञान रहता हैं। लेकिन संकट आने से कहते है कि "ओ रे नीली छतरी वाले दंगाबाज भगवान, तुने यह क्या कर दिया?" आदिवासी लोक देवताओं को मानते हैं। उसके साथ ही भगवान शंकर और पार्वती की पूजा करते हैं।

गोविन्द गुरू के नेतृत्व में आदिवासियों के जत्थों के बीच में सुरज की पहली किरण फुटती है। सभी रियासतों के आदिवासी मेले के लिए मानगढ़ पहुंच जाते हैं। इस मेले में हजारों की संख्या में आये आदिवासियों को देखकर गोविन्द गुरू आनंदीत होते हैं। सच्चिदानंद कहते है कि "बाबा नागार्जुन के उपन्यास पढ़कर जिस प्रकार कोई पाठक बिना बिहार प्रदेश, विशेष रूप से मिथिला क्षेत्र का भ्रमण किए वहां की संस्कृति से परिचित हो जाता है उसी प्रकार ‘धूणी तपे तीर’ पढ़कर कोई भी पाठक राजस्थान विशेष रूप से उदयपुर, डुँगरपुर, बांसवाड़ा और कुशलगढ़ के भील और मीणा आदिवासियों की संस्कृति से परिचित हुए बिना नहीं रहेगा।" इस मेले में आये हुए लोगों का चित्रण लेखक करता है कि "स्त्रियों ने हाथों में चांदी के गजरे और चूड़े, नारियल के कासले, लाख की चूड़ियां, कुकड़ विलास (गिलट) के भोरिये अथवा कातरिये, लाख की कामली, काकणी, चांदी की घूघरीवाली बंगड़ी, और चांदी की कासली पहन रखी थी। अपने बाजू में चांदी का बाजूबंद, लाख का चौड़ा चूड़ा, अंगुली में चांदी की अंगूठी और चांदी या गिलट की बीटी पहने हुए थी। कइयों ने चांदी की घूघरी वाला हथफूल हाथों में पहन रखा था। सिर पर चांदी का बोरला पहने और राखड़ी गुंथे हुए थी।........युवतियों ने अपनी चोली में चांदी का हेरावाला ऊंदिया अथवा बटन लगा रखे थे। सधवा स्त्रियों और कुंवारी युवतियों ने लाल लूगड़ा, लाल चूनरी, राती कापड़ी, राता घाघरा और लाल छिटका की ओढ़नी पहन रखी थी। विधवा महिलाओं ने बाजू के आभूषणों, बोर तथा पांव की कड़ली के अलावा सब प्रकार के गहने पहन रखे थे। पुरूषों ने अपने हाथों में चांदी के कड़े, बाजू में चांदी की भोरिया, कमर में चांदी की कन्दोरा, कान में सोने या चांदी की मुरकी, भभरकड़ी और झेले तथा गले में आहड़ी पहन रखी थी। कइयों ने अपनी बंड़ी में पतरे या चांदी की ऊंदिया अथवा बटन लगा रखे थे।" मेले में वेश भूषा और आभूषण ही नहीं, लेखक ने

आदिवासी नृत्यों और वाद्य का एक लम्बा चिट्ठा प्रस्तुत किया है। "हाथजोड़िया, पगपासणियाना, जालणियाना, उड़णियाना, फदुकचाला, मूरिया, गैर, गवरी.....झांझ, मजीरा, खरताल, थाली, मटका, मांदड़, ढोलकी, बांसुरी जैसे वाद्य यन्त्रों की धुन वातावरण में गुज रही थी।.......गवरी नृत्य में केवल पुरूष भाग ले रहे थे। ऊड़णियाना नृत्य में केवल युवतियों समूहों में नाच गा रही थी। मूरिया नृत्य में युवक व युवतियां हाथ पकड़ कर सांग किए हुए दूल्हे व दुल्हन को घेरे हुए झूम रहे थे।" उपन्यास में ग्राम्य जीवन का चित्रण किया है जिसमें आदिवासियों का ग्राम्य जीवन जीवंत हो जाता हैं। आदिवासी जन जीवन एवं लोकसंस्कृति की छोटी-छोटी बातें भी रचनाकार की दृष्टि से ओझल नहीं होतीं। उस संस्कृति में चांद भी अपने परिवेश से जुड़ा दिखाई देता है "मुझे आज यह चांद बहुत अच्छा लग रहा हैं। धौली ज्वार की फूली हुई रोटी जैसा। खूब सिकी हुई रोटी की पपड़ी पर जो आकरे धब्बे पड़ जाते हैं वैसे ही चांद में धब्बे दिख रहे हैं।"

मानगढ़ पर्वत के तलहटी में बसे आमलिया गांव में धूणी स्थल के यहां दिवाली से पहले और बाद में आदिवासी लोक गीत गाते हैं। धूणी स्थल के यहां सम्प-सभा के भगत हीड़ा गीत की आलापनुमा शुरूआत करते हैं -

"हूं......ऐ......ही......ड़ो........

हूं......ऐ......ही......ड़ो........

हूं......ऐ......ही......ड़ो........

हूं......ऐ......ही......ड़ो........"

स्वर में आलापनुमा हीड़ा गीत गा-गाकर कथा आदिवासी समाज को सुनायी जाती हैं। इसका लेखक सटीकता से चित्रण करता हैं। आदिवासी लोग इस कथा को आगे बढ़ाने के लिए गीत की तान छेड़ते है और कथा आगे बढ़ती रहती हैं।

११.३ सारांश :

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में लेखक हरिराम मीणा ने आदिवासियों की संघर्ष गाथा को दर्शाया हैं। आदिवासियों के ऊपर देशी रियासत के महाराजा और उनके कांरिदे वर्चस्व रखते है। इसके साथ ही रियासतों द्वारा आदिवासियों पर कई जुल्म, अत्याचार किए जाते है। दूसरी तरफ से अंग्रेज़ भी रियासतों के साथ मिलकर आदिवासियों का खून चुस लेते हैं। अंग्रेंज रियासतों में जो कुछ नीति अवलंब करते है, उसकों अपने अधीन रखकर वर्चस्व निर्माण करती हैं और खाली झोली भरने लगती है। लेखक ने उपन्यास में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन के साथ समस्याओं का भी चित्रण करके उपन्यास को ओर मजबुत करने का प्रयास किया हैं। अतः हरिराम मीणा ने आदिवासी समाज का विस्तृत वर्णन करते हुए उसमें अन्याय, अत्याचार को उजागर किया है और पोलाद की तरह उसका विरोध करते हुए गोविन्द गुरू को दिखाया हैं। वह आदिवासियों के बीच में 'सम्प-सभा' व 'धूणी' के माध्यम से भील और मीणा आदिवासी लोगों को एकत्रित करते हुए अन्याय, अत्याचार, शोषण

आदि के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही आदिवासी समाज को एक नई दिशा की तरफ मोड़कर उनका उत्कर्ष करता हैं।

११.४ वैकल्पिक प्रश्न :

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में गांव का गमेती बेटे को क्या बनाना चाहता है?

(क) मुखिया (ख) राजा

(ग) गमेती (घ) सम्प सभा का सदस्य

२. आदिवासी सम्प सभा में शामिल के बाद ठाकुर कहां की जमीन से उन्हें बेदखल करता है?

(क) दड़वाह (ख) लक्ष्मणपुरा

(ग) सुरांता (घ) रोजड़ा

३. गोविंद गुरू की चमत्कारी बाबा के रूप में ख्याति कब होती है?

(क) कुरिया को संभालने के बाद (ख) कलजी के बेटे का उपचार करने से

(ग) धूणी-धामों की स्थापना से (घ) गांव में ज्ञान देने से

४. 'चेतावणी रा चूंगटया' दोहा किसने लिखा?

(क) महाराणा प्रताप (ख) महाराणा फतेहसिंह

(ग) केसरीसिंह बारहठ (घ) महाराणा विजयसिंह

५. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में धूणी स्थल के यहाँ कौनसा गीत गाया जाता है?

(क) हीडा गीत (ख) भील गीत

(ग) मीणा गीत (घ) रियासतों के गीत

११.५ लघुत्तरीय प्रश्न :

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में चित्रित सामाजिक जीवन को संक्षिप्त में स्पष्ट करें?

२. 'धूणी तपे तीर' में राजनीति किस तरह से उभरकर आयी है, उसे स्पष्ट कीजिए?

३. 'धूणी तपे तीर' में चित्रित धार्मिक जीवन को अपने शब्दों में लिखिए?

४. 'धूणी तपे तीर' में भील और मीणा की आर्थिक स्थिति संक्षिप्त में लिखिए?

११.६ बोध प्रश्न :

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में चित्रित जीवन को विस्तार से लिखिए?

२. 'धूणी तपे तीर' में आदिवासियों की समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डालिए?

११.७ संदर्भ सूची :

१. धूणी तपे तीर - हरिराम मीणा

२. सृजन संवाद - सं. ब्रजेश

३. आदिवासी दुनिया - हरीराम मीणा

४. आदिवासी समाज और साहित्य - सं. रामणिका गुप्ता

५. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी चेतना - डॉ. सविता चौधरी

❄❄❄❄❄❄❄

१२

'धूणी तपे तीर' की भाषा-शैली

इकाई की रूपरेखा

१२.० इकाई का उद्देश्य

१२.१ प्रस्तावना

१२.२ 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की भाषा - शैली

१२.३ सारांश

१२.४ वैकल्पिक प्रश्न

१२.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१२.६ बोध प्रश्न

१२.७ संदर्भ सूची

१२.० इकाई का उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे।

- 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की भाषा को छात्र जान सकेंगे।
- 'धूणी तपे तीर' में देशकाल एवं वातावरण, संवाद योजना को छात्र जान सकेंगे।
- 'धूणी तपे तीर' में शैली का किस प्रकार से प्रयोग किया है, उसको छात्र जानेंगे।
- उपन्यास में मुहावरें और लोकोक्तियाँ का लेखक ने किस प्रकार से प्रयोग किया है, उसको जानेंगे।

१२.१ प्रस्तावना

भाषा मनुष्य जीवन की महत्वपूर्ण सामाजिक उपलब्धि है। सामाजिक आदान-प्रदान के लिए अपने व्यक्तिगत अनुभवों एवं विचारों को समाज तक सम्प्रेषित करने के लिए मनुष्य ने भाषा का आविष्कार किया हैं। साहित्य की भाषा जनता की भाषा से अलग होती है, परन्तु जनता की भाषा ही वह अखण्ड़ स्त्रोत है जिससे साहित्यिक की भाषा पोषित एवं बलवती होती है। इस संदर्भ में प्रेमचंद कहते है "भाषा बोलचाल की भी होती है और लिखने की भी। बोलचाल की भाषा तो मीर, अम्मन और लल्लूलाल के ज़माने में भी मौजूद थी; पर उन्होंने जिस भाषा की दाग बेल डाली, वह लिखने की भाषा थी और वही साहित्य है। बोलचाल से हम अपने क़रीब के लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं - अपने हर्ष-शोक के भावों का चित्र खींचते हैं। साहित्यकार वही काम लेखनी द्वारा करता है।" औपन्यासिक तत्वों में भाषा

शैली का प्रमुख स्थान है। उपन्यास की आत्मा उसकी भाषा में ही निवास करती है। बिना भाषा उपन्यास की कल्पना करना ही असंभव है। भाषा की अशुद्धी और उसके अनगढ़ प्रयोगों से उपन्यास के भाव, अभिव्यक्ति अत्यंत क्षीण और दुर्बल हो जाती है। उपन्यास की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो कथाकार के भावों और विचारों को भली प्रकार से संप्रेषित कर सके। भाषा शैली के लिए मौलिकता अत्यंत आवश्यक है। हर उपन्यासकार की अभिव्यक्ति विधा या उसकी अभिव्यंजना शैली अलग होती है। वह एक नई लीक अपनाता है और कथ्य को उस लीक पर दौड़ाकर अपनी रचना को सशक्त और सुरूचिपूर्ण बनाता है। सहज, स्वाभाविक शब्दों, अलंकारो, कहावतों व मुहावरों के प्रयोग से भाषा की सार्थक अभिव्यक्ति होती है। इसमें जिस कथाकार की भाषा शैली व्यक्तित्व के अनुरूप होती है उसमें उतनी ही नवीनता और विशिष्टता होती है। अंतः भाषा शैली लेखक की निजी वस्तु होती है। उच्चतम भाषा शैली के लिए उसमें गति तथा प्रवाह भी आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि भाषा में सार्थक शब्दों का प्रयोग हो। वह सरल और सुबोध हो। शिल्प की दृष्टि से वही भाषा शैली सफल श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण होती है जो भावों, विचारों व अनुभूतियों का सफल निर्वहन करती है तथा पाठकों को रिझाती रहती है।

१२.२ 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की भाषा-शैली

हिंदी साहित्य के उपन्यास विधा में स्वाभाविकता लाने के लिए पात्रानुकूल भाषा अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होती है। व्यक्तिपरक पात्र अपने स्तर के अनुसार भाषा के प्रयोग का अधिकारी होता है। अतः लेखक वर्गगत्, विशेषताओं से युक्त पात्र, देशकाल, समाज और उसकी विचारधारा को दृष्टि में रखकर ही भाषा का प्रयोग करता है। एकाधिक भाषा प्रयोग से उपन्यास में रोचकता आती है, पर यह प्रयोग अत्यन्त सावधानी की अपेक्षा रखता है। साहित्यिक भाषा के प्रयोग से साहित्य निश्चित वर्ग के अध्यापन का विषय बनकर रह जाता है और उसकी जीवन्तता को घुन लग जाता है। अतः भाषा जन-जीवन से जुड़ी रहनी चाहिए ताकि पाठक उसे पढ़कर उसकी स्वाभाविकता में पूर्ण आस्था प्रकट कर सके। इसी के साथ वर्णन और चित्रण को अत्यधिक यथार्थ और विश्वसनीय बनाने के लिए उपन्यासों में क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग आवश्यक है। देशज् शब्दों का प्रयोग इस ढंग से किया जाए कि वह विशेष अर्थ की सृष्टि करने में सहायक सिद्ध हो। वस्तुतः उपन्यास में सरल भाषा के साथ-साथ क्षेत्रीय बोलियों के प्रयोग का भी विशेष महत्व है। भाषा शैली पर हरिराम मीणा जी का पुर्ण अधिकार हैं। उनके उपन्यास में भाषा के स्तर पर आंचलिकता के दर्शन होते हैं। भाषा पात्रों के अनुकूल चलती है। सारा आदिवासी अंचल जीवंत हो उठता है। उनके मेले त्योंहार, वेश भूषा, खान पान, नाच गान, सांस्कृतिक उपाख्यानों के साथ चित्रित होते हैं। भाषा लोकगीतों, लोक मुहावरों से सज्जित होकर ओर भी अर्थवान बन गई है।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में देशकाल एवं वातावरण को देखने से पता चलता है की उपन्यास की कथा इतिहास के अनुकूल लगती है। परंतु जिस तरह से औपन्यासिक कलाकृति को लेखक ने वातारण को निर्माण करना चाहिए था उस तरह से वातावरण निर्माण नहीं कर पाए है। काल की दृष्टि से उपन्यास की कथा को देखा जाये तो १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक समय की कथा प्रस्तुत की है। उपन्यासकार ने ऐतिहासिकता के साथ-साथ आदिवासियों के आँचलिक वातावरण का भी इसमें प्रचुर मात्रा

में प्रयोग किया है। इतिहास के साथ-साथ स्थानीय वातावरण और भील, मीणा जीवन को दर्शाया है। लोक संगीत, लोकगीत, लोक-कथाओं, लोक मान्यताओं, रीती-रिवाज, उत्सव आदि को आँचलिकता से जुड़ा है। इसमें क्षेत्रीय वातावरण निर्माण करने में लेखक सफल रहा है। जैसे कि भूत-प्रेत, जादू-टोना, डायनप्रथा आदि चित्रण से क्षेत्रीय वातावरण को सजीव बनाने का प्रयास लेखक ने किया है। और कथा के अंत में लेखक ने आदिवासी सियासत और अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह पुकारते है उसका भी वातावरण सजीव और प्रभावी दिखाई देता है।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में संवाद योजना को लेखक ने उभारा है। उसकी अपनी अलग विशिष्टता है। लेखक ने उपन्यास में चित्रित पात्रों की मनस्थिति, संस्कारों को व्यंजित करने के लिए संवादों से काफी हद तक मदद ली है। कथा के जहाँ-जहाँ संवाद संक्षिप्त रहे है, वहाँ पर कथा प्रभावाभिव्यंजक लगती है। परंतु कथा में ऐसे बहुत कम स्थल आते है। उपन्यास में संवाद कही-कही लम्बे-लम्बे दिखाई देते है। वे संवाद भाषणों, प्रवचनों, उपदेशों, पत्र के वर्णन से अभिव्यक्त हुए है। उपन्यास में लम्बे-लम्बे प्रवचनों और भाषणों को देखने से पता चलता है की कथा और चरित्र के विकास की गति क्षरित हुई है। लम्बे-लम्बे संवाद से उपन्यास की कथा में व्याघात उत्पन्न होता है। परंतु कही-कही कथा के संवाद पात्रों के अनुकूल और उनके स्वभाव तथा संस्कारों के अनुकूल संवादों की विविधता प्रशंसनीय रही है। कुल मिलकर यही कह सकते है की कथानक में संवाद या कथोपकथन में संवादों की सहायता ली गई है। उसी कारण उपन्यास की कथा औपन्यासिक कलाकृति में निखार बहुत कम स्थलों पर आ गया है। अंत में यही कह सकते है की उपन्यास में संवाद संक्षिप्त, स्वाभाविक और पात्रानुकूल दिखाई देते है।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास का शीर्षक से ज्ञात होता है कि धूणी तपे तीरों की तरह आदिवासी शत्रुओं पर धावा करते है। शीर्षक से उपन्यास प्रतीकात्मक और व्यंजनात्मक लगता है। कथा में अनेक छोटी-छोटी कथा उभरती हुई नज़र आती है और कहीं-कही कथा विलुप्त होती हुई दिखाई देती है। जैसे की उपन्यास में कई प्रकार की कथा दिखाई देती है - हिडा की कथा, सूरा बावड़ी, टंट्या भील, दिल्ली दरबार की कथा, महारानी विक्टोरिया हीरक जयंती महोत्सव, भीलों की उत्पत्ति कथा आदि कई प्रकार की कथा उपन्यास में चित्रित हुई है। लेखक हरिराम मीणा ने इसे खंड चित्रों में प्रस्तुत किया है। इसी के साथ उपन्यास में नाटकीय, फ्लैशबैक, पत्रात्मक और स्वप्न आदि का भी हरिराम मीणा सहारा लिया है। उपन्यास की कथा पूरी तरह से धीमी गति से विकसित होती है और मध्यभाग में ठहराव ज्यादा दिखाई देता है। परंतु कथा की अंत में गति भी दिखाई देती है और उसमें रोचकता भी दिखाई देती है। उपन्यासकार कथा वर्णन में घटित होनेवाली घटनाओं में एक प्रकार से सूचना देता हुआ नज़र आता है। कही-कही ईस्ट इंडिया कंपनी और रियासत के लम्बे-लम्बे वर्णन दिखाई देते है, उससे पाठक ऊब जाता है। उपन्यास को पढ़ने में पाठक को धैर्य रखना पढ़ता है। मेवाड़., डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ और कुशलगढ़ सहित ईडर और संतरामपुर रियासत तक की कथा केंद्र में रखी है। कथा का आरंभ साधारण ढंग से होता है। "कुरिया ने चकमक में से चिनगारी पैदा की। चिनगारी आग बनी। इसका मतलब पत्थरों में आग है। जो पत्थरों में आग है तो पहाड़ में आग है और जो पहाड़ में आग है तो जिन पहाड़ों में आदिवासी रहते हैं उन आदिवासियों के भीतर भी आग होनी चाहिये। उस आग को मैं जलाना चाहता हूँ।" इस तरह से कथा का आरंभ एक साधारण ढंग से होता है।

'धूणी तपे तीर' उपन्यास की भाषिक संरचना महत्वपूर्ण है। इस उपन्यास की कलाकृति की भाषा घटित हुई घटना के अनुरूप है । इसका रचाव एकदम साधा-सीधा और पात्रों के अनुकूल दर्शाया है। विषेशतः लेखक हरिराम मीणा जी ने उपन्यास में स्थानिय भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यास की भाषा बिम्बों, प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत की है इसी के साथ संकेतों का भी प्रयोग किया है। उसमें पात्रानुकूल भाषा की विविधता को दर्शाया है। अंग्रेज पात्र उपन्यास में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हुए नज़र आते है। बल्कि अन्य पात्र अपने देहात की परंपरागत चली आई हुई भाषा का प्रयोग करते है। इस प्रकार से भाषागत प्रयोगों में संगति का अभाव दिखाई देता है। उपन्यास में मुहावरों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। जैसे - उसने आव देखा न ताव, अपना उल्लू सीधा करना, गुस्से की आग सुलगाना, टेढ़ी नजरों से घूरना, हुकूम सरमाथे पर होना, हाथ पर हाथ दिये बैठे रहना, एक होकर रहना, मन में उल्टा-सीधा अंदेशा घटना, टेड़ी नजरों से देखना, मदत की गुहार लगाना, मौत के घाट उतार दिया, ढुंढ-ढुंढ कर दबोचना, बूंद-बूंद कर घड़ा भरना, आग में घी का काम करना, विस्मय के भाव उभरना, दो-टूक बात कहना, घर का जोगी जोग़ना, जैसा राजा वैसी प्रजा, घिग्गी बंध गयी, हिम्मत से लड़ना, अमर होना, ध्यान लगाते रहना, खर्राटे भरना, मन उखड़ना, असफल हो जाना, नींद उड़ जाना, कोई लेना देना नहीं होना, भूखा इन्सान कोई भी पाप कर सकता है, ऊंट के मुंह में जीरा ही साबित होना, गला रूंध गया, घाव को हरा कर देना, अपने मन का भेद खोलना, दिल सदमे में डूबना, अक्ल मारी जाना, अपना काम मन से करना, तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करना आदि । अर्थात उपन्यास में जगह-जगह पर कहावतें और लोकोक्तियों का प्रयोग भी हुआ है । जैसे - जोगी जोगना अर आन गाँव की सिद्ध, करम प्रधान जगत रूचि राखा, बिच्छू का कांटा रोवे अर साँप का काटा सोवे, बिरथा जगत हँसायी मत करो आदि । इसी के साथ उपन्यास में लेखक हरिराम मीणा जी ने स्थानिक शब्दों का प्रचुर मात्रा में अवसर के अनुसार प्रयोग किया है । जैसे - भगती, जागरती, मिनख, थावर, दरसन, लक्खण आदि कई शब्दों का प्रयोग किया है।

साहित्य में शैली से ही कथा संरचना का पता चलता हैं। कृतिकार की अनुभूतियाँ अधिक जीवंत और प्रभावशाली बनाने का माध्यम शैली है । अपनी रचना में कथा के सुत्रों को जोड़ते हुए उसे अग्रसर करने के लिए, प्रकरण को सजीव एवं चित्रात्मक बनाने के लिए एवं उसे विशिष्टता प्रदान करने के लिए लेखक आवश्यकता नुसार शैलियों का प्रयोग करता है। शैली के प्रयोग से साहित्यकार की अभिव्यक्ति सुंदर एवं पूर्ण बनती है। लेखक के अंर्तमन में भावों की जो लहरे उठती है, उनकी अभिव्यक्ति शैली द्वारा होती हैं। प्रत्येक रचनाकार की अपनी-अपनी अलग पद्धत होती हैं, वह जिस अनोखी पध्दति से अपनी कृति को रमणीय बनाता हैं, उस पध्दति को शैली कहा जाता हैं। शैली के दृष्टि से देखा जाए 'धूणी तपे तीर' में लेखक हरिराम मीणा ने कथानक को ओर रोचक बनाने के लिए कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। इसमें विशेषता वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, आँचलिक, पत्रात्मक, काव्यात्मक, विश्लेषणात्मक आदि कई शैलियों का प्रयोग है।

वर्णनात्मक शैली बहुत प्राचीन शैली हैं । हिन्दी साहित्य में यह प्रधान शैली के रूप में उभरकर आयी है । इस शैली द्वारा कथानक को संगठीत और विकसित करने का कार्य किया जाता है। अर्थात जिस शैली में किसी विषय का विस्तार से वर्णन किया जाता है उसे वर्णनात्मक शैली कहते है। इसमें पात्रों के बाहय तथा आंतरिक स्वरूप को अभिव्यक्ति करने के लिए लेखक इस शैली का प्रयोग करता हैं। उपन्यास में आदिवासी लोग होली उत्सव

मनाने के लिए जंगल से थम्म लेकर आते है । जंगल में बैठी रीछ़ड़ी को देखकर आदिवासी ड़रते है । इसका वर्णन करते हुए लेखक कहता है कि "हुआ यूं कि जब आमलिया की तलहटी में से हमने सेमल की डाल काट ली थी और उसे छांग कर चलने वाले थे कि पास की झाड़ियों की औट में अपने बेटे बच्चों के साथ रीछड़ी बैठी थी । वह अचानक डर गयी । हम पर धावा बोलती, उससे पहले हम पेड़ों पर चढ़ गये । वह रीछड़ी ड़ाल छांगते वक्त गोमना के हाथों पत्तों सहित एक टहनी को उसकी ओर फेंकने से चैंकी थी । गोमना को भी यह पता नहीं था कि झाड़ियों के पीछे कोई जिनावर है । रीछड़ी को गुस्सा होते देखते ही हम पेड़ों पर चढ गये थे । थोड़ी देर रीछड़ी इधर-उधर गुर्रायी और धरती पर पड़ी सेमल की डाल को सूंघती हुई लौट गयी । उसने अपने दोनों बच्चों को साथ लिया और पास के नाले में उतर गयी । गोमना अभी बच्चा है, उसे यह समझ नहीं कि जंगली जिनावर बिना बात किसी पर हमला नहीं करते ।" गोविंद गुरू का प्रभाव आदिवासी भागों में निरंतर बढ़ रहा था। आदिवासियों के लिए मार्गदर्शक, गुरू तथा सही रास्तों पर लाने के लिए वे एक मसीहा के रूप में सामने आता है। उपन्यास में सम्प सभा के गठन करने के बाद आदिवासी लोग इस गठन से जुड़ने लगे थे। दूसरी तरफ से रियासत और अंग्रेज़ की वजह से आदिवासी बेहाल हुए। उनकी लूटमार करने लगे। इससे भील और मीणा आदिवासियों का जीवन अत्यंत दयनीय बन गया। लेखक कहते है "मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्रों में हालात अत्यंत दयनीय है। आदिवासियों में भयंकर असंतोष फैला हुआ है। जगह-जगह उपद्रव, हिंसा व् लूट की घटनाएं हुई। प्रतापगढ़, डूंगरपुर, कुशलगढ़ व बांसवाड़ा में स्थिति नियंत्रण से बाहर हो चुकी है। " इस तरह से वर्णन उपन्यास में मिलता है।

हिन्दी उपन्यास में व्यंग्यात्मक शैली का महत्व अधिक है । इस शैली द्वारा उपन्यासकार ग्रामीण समाज की वर्गगत विषमताओं, पीढ़ी-संघर्ष आदि बातों का चित्रण करता हैं । इस प्रकार व्यंग सम्पुर्ण हिंदी साहित्य की एक महत्वपुर्ण प्रवृत्ति बन गई हैं । व्यंग्य सदा दूसरों को शिकार बनाता है तथा इसकी प्रवृत्ति सदा दूसरों की आलोचना करने की होती हैं । इस तरह से व्यंग्य एक ऐसी सोदेश्य रचना है, जिसमें किसी व्यक्ति या समाज की प्रचलित बुराइयों पर सुधार की भावना से कठोरता के साथ विरोध करते हुए प्रहार किया जाता है । लेखक ने परस्पर विरोधी शब्दों को रखकर ही उपन्यास में व्यंग्यात्मक शैली का निर्माण किया हैं । 'धूणी तपे तीर' में हरिराम मीणा ने आदिवासियों की मानसिकता पर प्रहार दिखाया हैं । इसलिए उपन्यास की भाषा में व्यंग्यात्मकता अधिक हैं । कुरिया बचपन में चकमक पत्थरों से आग निर्माण करता हैं । इसे देखकर गोविंदा कुछ कहना चाहता हैं, तब कुरिया व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार करते हुए कहता है "तू बड़ा सादू आदमी है जो तेरी बात कान लगाकर सुनूं ।" गोविन्दा दोस्तों के साथ हिरकुलिया बाबा की तरफ निकलता हैं । रास्तें में ही बिच्छू को कुरिया मार देता हैं तो गोविंदा इस तरह का कृत्य करने के लिए मना करता हैं । इतने में ही पाँच-सात कदम दुर से खरगोश को बिलाव जबड़ो में दबोचता हैं । इसके बारे में दोस्त पुछते है तो गोविन्दा कहता है कि "अब मैं कोई पंडित तो हूं नहीं, जो विधाता की रचना की पार पा सकूं ।" इस तरह से व्यंग्य की शैली में उपन्यासकार व्यक्त करता हैं । गोविन्द गुरू ने पहला सम्मेंलन लिया था । इस सम्मेंलन में समाज के सामने अपने विचार रखते है और कहते है "अगर हाथ पर हाथ दिये बैठे रहे तो हमारी सुध लेने वाला अम्बर से नहीं टपकेगा । हमें एकजुट होकर बुराइयों का विरोध करना होगा ।" गोविन्द गुरू की गिरफ्तारी के बाद कुरिया आदिवासी लोगों में गुरू को छुड़ाने की बात करता है तो गाँव का

गमेती अपने बेटे के मोह एवं दुख को व्यंग्यात्मक शैली कहता है "तू क्या जाने बीबी-बच्चों का मोह क्या होता है।...... मैं पांच-सात महीना पागलों की तरह इन घाटियों में किस कदर भटकता रहा था। जिस शेर ने मेरी औरत को खाया था, उसकी दहाड़ और मेरी पत्नी की अंतिम चीख आज भी मेरे कानों में गूंजती है और जब थावरा गायब हुआ था तो मैं दुनिया में अकेला रह गया था।"

उपन्यास में आदेश एवं प्रार्थना शैली के गुणों के समन्वय से भाषण एवं संबोधन शैली का निर्माण होता है। इस प्रकार की शैली में ओज एवं प्रसाद दोनों ही गुण रहते है। उपन्यास में हरिराम मीणा ने भाषण एवं संबोधनात्मक शैली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इसमें आवेश की मात्रा ही अधिक है, अतः इसमें भाषण शैली के संबोधन शैली के गुण अधिक रहते है। उपन्यास का नायक गोविन्द गुरू बचपन में दोस्तों को ज्ञान की बाते कहता है। यह ज्ञान की बाते गाँव का मुखिया सुनता है तो उसे भी उसमें उसे आनंद आता हैं, तब लेखक नायक के रूप में कहता है कि "जो भी हमारे पास है उसमें गुजारा करना तो अपनी जगह ठीक है लेकिन ये राज के आदमी हम पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं और जागीरदार हम से बिना मेहताना बेगार कराते हैं। इन बातों पर सोचने की बजाय हमारे आदमी दारू पीकर शरीर व माथा खराब करते हैं। अपनी औरतों व बच्चों को आये दिन तंग करते रहते है। यह बुरी आदत है। इनका विरोध हमें करना चाहिए ना? अगर ऐसी बातें न हो तो क्या हमारा जीवन सुधर नहीं जाएगा?" इस तरह की बाते करके गाँव के मुखिया को संबोधित करता है। नायक गोविन्दा दोस्तों के साथ गढ़ी गाँव की ओर जाता हैं। उस समय आदिवासी लागों की फसल ओलों से नष्ट हो गयी थी। आदिवासी लोग चितिंत दिखाई देते हैं, गोविन्दा आदिवासियों को धीर देते हुए संबोधित करता है कि "मुंह लटकाने से कुछ नहीं होगा। भगवान हमें बहुत कुछ देता है तो उसे लेने का भी हक होगा। जो कुछ खो जाता है उससे पैदा हुई खाली जगह को भरने की सीख सीखो। इस फसल के दाने तुम्हारे हाथ में नहीं आये। कोई बात नहीं। धीरज रखना होगा। जंगल में घास खूब है और दरख्तों में पत्तों की कमी नहीं। बैल-गाय-बकरियों को चारा खिलाने में कोई दिक्कत नहीं होगी। रहा सवाल तुम्हारे पेट का, तो इस बार जंगल में दूर तक सही, तुम गोंद इकट्ठा करना, कत्था इकट्ठा करना, शहद इकट्ठा करना, सुखी लकड़ी इकट्ठी करना और इस बार सबको बनिये को न बेचकर हाट में जाकर बेचोगे तो दो पैसे ज्यादा मिलेंगे और महुआ के दरख्त काम चलाऊ कुछ ना कुछ देते ही रहते हैं। भगवान पर भरोसा रखो। रोने-धोने से कुछ नहीं होता। मेहनत से अपने बाल बच्चों को पेट भरायी करो।"

किसी भी तरह के संवाद भाषा को सबल बनाते हैं। कथानक में नवीनता लाने का काम संवाद ही करते है। संवादो में अनेकरूपता तथा पात्रानुकूलता होने से पात्रों के चरित्र विश्लेषण में सुविधा रहती है। प्रस्तुत उपन्यास में हरिराम मीणा ने संवादात्मक शैली का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग किया है। उपन्यास का नायक गोविन्दा बचपन में मित्रों के साथ संवाद शैली से बात करते हुए कहता है कि "देख रहा है चकमक के पत्थरों में आग छुपी है। थोड़ा रगड़ना है, चिनगारी फुट उठती है। चिनगारी में आग.....। तो क्या पहली बार देख रहा है? इसमें क्या नई बात हैं!" यहाँ उपन्यासकार ने बहुत सटिकता से संवादात्मक शैली का रूप प्रस्तुत किया है। डुंगरपुर महारावल के प्रति ठाकुर शिकारगाह एवं मोर्चा निर्माण करने के लिए आदिवासियों को बेगार में काम पर लगवाता हैं। तब गाँव के गमेती एवं मुखिया ठाकुर से संवादात्मक शैली से कहते है कि "'मालिक एक सलाह है।'......'हां बोल, क्या

कहना चाहता है?'.....'वह यह कि कांगरवा गांव में तो बीस-पच्चीस ही घर है और यह बड़ा काम है। इसलिए मेरी अर्ज है कि पड़ौसी गांव वीरवाड़ा के लोगों को भी शामिल कर लिया जाय तो आपकी इच्छानुसार यह काम तेजी से ही सकेगा।'" महारावल गोविन्द गुरू को दरबार में बुलाकर उन्हें गाँव, धन दौलत और ठाकुर के अधिकार देने की बात करता हैं, तब उपन्यासकार कहता है कि "क्षमा करें महाराज, मैं साधू आदमी हूं ये गांव व जागीर तो ईश्वर ने आपको दी है। आप इन्हें सम्भालें। मेरा तो आदिवासियों में काम करने से मतलब है। मुझे उन्हीं की सेवा करने दें।" यहा गोविन्द गुरू के महात्मा का दर्शन होता है और आदिवासियों के प्रति लगाव से काम करने की प्रबल इच्छा सामने आती हुई दिखाई देती है। सम्प-सभा के गठन के बाद आदिवासी लोग सम्पसभा में भगत के रूप में सामील हो जाते हैं। आदिवासियों के बीच सुधार लाने के लिए इस गठन के माध्यम से भगतों को कई कार्य की जिम्मेदारी दी जाती हैं। संवादात्मक शैली में वक्तव्य प्रस्तुत होता है कि "इस काम के लिए झाड़कड़ा के थावरा को भी कोई जिम्मा सौंपा जाय, इस बारे में क्या कोई फैसला हमें नहीं लेना चाहिए? टंट्या मामा के साथ थावरा ने खूब काम किया है। वह अच्छा बन्दूकबाज है और छापामार लड़ाकू भीं - .....आप सब राजी हो तो रक्षा दलों के काम में थावरा को पूंजा का मुख्य सहयोगी बना दिया जावे। उसका अनुभव रक्षा दलों के काम आयेगा।" सम्प-सभा के माध्यम से आदिवासियों के बीच जागरती हो जाती है। उनके दिल में धूणियों के प्रति आस्था और धार्मिक भावना निर्माण होने से आदिवासी भड़कने की आशंका थी। धूणियों को नुकसान पहुँचाने का सिलसिला रियासतों व अंग्रेजों के द्वारा जारी था। इस धूणियों की रक्षा के लिए संवाद शैली में प्रस्तुत किया है कि "धूणी-धाम हमारी जागरती के केन्द्र हैं। उन स्थलों पर की जाने वाली तोड़-फोड़ की घटनाएँ चिंता-जनक है और खेदजनक भी। इस संबंध में हमें डुंगरपुर, बांसवाड़ा व ईड़र नरेशों से सीधी बात करनी चाहिए।" इस तरह से लेखक हरिराम मीणा ने 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में कई शैलियों के माध्यम से उपन्यास की भाषा और शैली को उपयुक्त पध्दति से उभारा है।

१२.३ सारांश

अंत में जिस प्रकार से साहित्य के स्वरूप की अभिव्यक्ति का माध्यम कथानक, पात्र और उसके चरित्र-चित्रण होता है। उसी प्रकार से साहित्य के स्वरूप की अभिव्यक्ति का माध्यम शिल्प होता है और उस माध्यम का स्वरूप भाषा शैली होती है। विचारों के अनुकूल भाषा और भाषा के अनुकूल साहित्यिक विधा का गठन ही उपन्यास का एक और प्रधान तत्व है। इसमें हरिराम मीणा ने आदिवासियों के जीवन के मौलिक रूप को दर्शाया गया है। उनकी भाषा समाज के अनुरूप ही सशक्त एवं सटीक के रूप में सामने आती है। लेखक की भाषा और उनके शिल्प की विधा पाठकों में कौतूहल जगाती है और उन्हें शब्दों की मार्मिकता का भी एहसास कराती है। अतः हरिराम मीणा की भाषा विचार, भाव के अनुरूप ही धारण करती हुई प्रतीत होती है। यही एक कुशल लेखक की सफलता है और इसमें हरिराम मीणा इस दृष्टि से सफल हुए है।

१२.४ वैकल्पिक प्रश्न

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की कथा किस शताब्दी की है?
(क) १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध (ख) १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध
(ग) २१ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध (घ) २० वीं शताब्दी के उत्तरार्ध

२. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की कथा में किस जातियों का वर्णन किया है?
(क) भील और मीणा (ख) मीणा और कबूतरी
(ग) भील और गौंड (घ) गौंड और बंजारा

३. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में संवाद संक्षिप्त होने से कथा है -
(क) अत्यंत दयनीय (ख) प्रभावाभिव्यंजक
(ग) रोचक (घ) इसमें से कोई नहीं

४. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास के शीर्षक से क्या बोध होता है?
(क) धूणी में शामिल होना (ख) धूणी को अलग करना
(ग) आग की तरह जलना (घ) धूणी तपे तीरों की तरह शत्रुओं पर धावा

१२.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में बिम्ब से भाषा को सँवारा गया है, उसे संक्षिप्त में स्पष्ट करें?

१२.६ बोध प्रश्न

१. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की भाषा प्रतीकात्मक एवं व्यंजनात्मक ज़्यादा है, उसे सोदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए?

२. 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की भाषा शैली पर विस्तार से प्रकाश डालिए?

१२.७ संदर्भ सूची

१. कुछ विचार – प्रेमचन्द
२. धूणी तपे तीर - हरिराम मीणा
३. हिंदी उपन्यासों का शिल्पगत विकास - डॉ. उषा सक्सेना
४. हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य - डॉ. प्रेम भटनागर
५. हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श - डॉ. पंडित बन्ने
६. क्रांतिकारी आदिवासी : आजादी के लिए आदिवासियों का संघर्ष – सं. केदार प्रसाद मीणा
७. आदिवासी लोकगीतों की संस्कृति - डॉ. राम रतन प्रसाद

❄❄❄❄❄❄❄